उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय हल्द्वानी

वैदिक सृष्टि विज्ञान में प्रमाणपत्र

CVC-20

प्राच्य एवं पाश्चात्य मत में ब्रह्माण्डविज्ञान

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी-263139

Toll Free : *1800 180 4025*

Operator : *05946-286000*

Admissions : *05946-286002*

Book Distribution Unit : *05946-286001*

Exam Section : *05946-286022*

Fax : *05946-264232*

Website : http://uou.ac.in

अध्ययन मण्डल

कुलपति { अध्यक्ष}
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी
प्रो0 देवीप्रसाद त्रिपाठी
कुलपति,उत्तराखण्ड संस्कृत विश्वविद्यालय हरिद्वार
प्रो0 विनय कुमार पाण्डेय
अध्यक्ष,ज्योतिष विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय,वाराणसी
प्रो0 रामराज उपाध्याय
अध्यक्ष, पौरोहित्य विभाग, श्रीलाल बहादुर शास्त्री रास्ट्रीय केन्द्रीय संस्कृत विश्व विद्यालय नई – दिल्ली

प्रो0 एच0 पी0 शुक्ल,संयोजक
निदेशक, मानविकी विद्याशाखा
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी
डॉ0 नन्दन कुमार तिवारी
असिस्टेन्ट प्रोफेसर एवं समन्वयक
ज्योतिष विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी
डॉ0प्रभाकर पुरोहित
असिस्टेन्ट प्रोफेसर, ज्योतिष विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

पाठ्यक्रम समन्वयक

डॉ 0 प्रभाकर पुरोहित
असिस्टेन्ट प्रोफेसर, ज्योतिष विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

सम्पादक

डॉ 0 प्रभाकर पुरोहित
असिस्टेन्ट प्रोफेसर, ज्योतिष विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

सह सम्पादन

डॉ 0 नीरज कुमार जोशी
असिस्टेन्ट प्रोफेसर,संस्कृत विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

इकाई लेखन	**खण्ड एवं इकाई संख्या**
डॉ0 शैलेन्द्र प्रसाद उनियाल, वेद विभागाध्यक्ष, केन्द्रीय संस्कृत विश्व विद्यालय, श्री रघुनाथ कीर्ति परिसर देवप्रयाग, पौड़ी गढ़वाल,उत्तराखंड	**खण्ड – 1 इकाई 1- 6**
डॉ0 नन्दन कुमार तिवारी, सहायक प्राध्यापक ज्योतिष विभाग, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी	**खण्ड -2 इकाई 1,2,3,4**
डॉ 0 प्रभाकर पुरोहित, असिस्टेन्ट प्रोफेसर ज्योतिष विभाग, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,	**खण्ड - 3 इकाई 1, 2, 3**
डॉ0 सुरेश शर्मा, ज्योतिष विभाग केंद्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय, श्री रघुनाथ कीर्ति परिसर देवप्रयाग, पौड़ी गढ़वाल,उत्तराखंड	**खण्ड – 3 इकाई 4**

प्रकाशक : उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी
कॉपीराइट @ उ0 मु0 वि0वि0
पुस्तक का शीर्षक -प्राच्य एवं पाश्चात्य मत में ब्रह्माण्डविज्ञान
प्रकाशन वर्ष : 2023
मुद्रक :

यह पुस्तक छात्र हित में शीघ्रता के कारण, प्रकाशित की गयी है । संशोधित व परिवर्द्धित संस्करण का प्रकाशन पाठ्यक्रम के पूर्ण लेखन व सम्पादन के पश्चात् किया जायेगा । इसका उपयोग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति के बिना अन्यत्र किसी भी रूप में नहीं किया जा सकता।

अनुक्रम

खण्ड 1. वैदिक ब्रह्माण्ड का परिचय	**पृष्ठ संख्या 01- 03**
इकाई 1- सृष्टि परिकल्पना	4-18
इकाई 2- सृष्टि की वैदिक अवधारणा	19-32
इकाई 3- सृष्टियोत्पत्ति में हिरण्यगर्भ की अवधारणा	33-47
इकाई -04 हिरण्यगर्भ का प्रसरण	48-62
इकाई 5- वैदिकसाहित्य में ब्रह्माण्डोत्पत्ति के सिद्धान्त	63-77
इकाई -06 सृष्टि संरचना का स्वरूप	78-99
खण्ड 2 . पौराणिक सृष्टि	**पृष्ठ संख्या 100**
इकाई -7 पुराणों में सृष्टि प्रक्रिया	101-126
इकाई -8 वेदांगों में सृष्टि प्रक्रिया	127-147
इकाई -9 स्मृति ग्रन्थों में सृष्टि प्रक्रिया	148-162
इकाई -10 स्मृति ग्रन्थों में सृष्टि प्रक्रिया	163-179
खण्ड 3. सृष्टि के दार्शनिक तत्व	**पृष्ठ संख्या 180**
इकाई -11 सांख्य दर्शन के अनुसार सृष्टि प्रक्रिया	181-190
इकाई -12 वेदान्त के अनुसार सृष्टि प्रक्रिया	191-199
इकाई -13 न्याय वैशेषिक के आधार पर सृष्टि प्रक्रिया	195-209
इकाई – 14 ज्योतिषीय सृष्टि प्रक्रिया	210-222

खण्ड-एक
वैदिक ब्रह्माण्ड का परिचय

इकाई 1- सृष्टि परिकल्पना

इकाई की रूपरेखा

1-1 प्रस्तावना

1-2 उद्देश्य

1-3 मुख्य भाग

1-3-1 उपखण्ड एक - सृष्टि काल

1-3-2 उपखण्ड दो - वेदों में सृष्टि की परिकल्पना

1-3-3 उपखण्ड तीन - पुराणों में सृष्टि की परिकल्पना

1-3-4 उपखण्ड चार - दर्शन शास्त्र में में सृष्टि की परिकल्पना

1-4 सारांश

1-5 पारिभाषिक शब्दावली

1-6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1-7 सन्दर्भ ग्रन्थों की सूची

1-8 साहायक उपयोगी सामग्री

1-9 निबन्धात्मक प्रश्न

1-1 प्रस्तावना -

वैदिक वांग्मय में सृष्टि के विषय पर कई स्थानों पर विचार किया गया है। ऋग्वेद, मुण्डकउपनिषद्, तैत्तिरीयउपनिषद्, प्रश्नोपनिषद्, छान्दोग्यापनिषद् तथा बृहदारण्यकउपनिषद् में इस विषय पर विस्तार से विचार किया गया है। महाभारत मनुस्मृति, महाभारत, पुराण, दर्शन, ज्योतिषादि ग्रन्थों में भी सृष्टि की अवधारणा का सविस्तार वर्णन प्राप्त होता है। सृष्टि की उत्पत्ति के विषय में विज्ञान का मानना यह है कि सृष्टि की उत्पत्ति Bing-bang (भयंकर विस्फोट) के साथ ही प्रारमभ हुई और परिवर्तन के कई चरणों से गुजरती हुई वर्तमान स्थिति में पहुँची है। ठपह ठंदह के साथ ही आकाश और समय का कार्य प्रारमभ हुआ। सृष्टि उत्पत्ति का क्रम इस प्रकार रहा- आकाश, ज्वलनशील वायु, अग्नि, जल और निहारिका का मण्डल। निहारिका मण्डल में ही सौर मण्डलों ने स्थान पाया। पृथ्वी की उत्पत्ति सूर्य से छिटक कर अलग होने के बाद धीरे-धीरे परिवर्तित होकर वर्तमान रूप में हुई। श्वास लेने योग्य वायु के बनने, पानी के पीने योग्य होने पर पानी के अन्दर सर्वप्रथम जलचरों को जीवन मिला। फिर क्रमशः जल-स्थलचर, स्थलचर और आकाशचर प्राणियों की उत्पत्ति हुई। सृष्टि उत्पत्ति के पूर्व क्या था? इस विषय में विज्ञान का कहना है कि Bing-bang के बाद ही सृष्टि नियम विकसित हुए हैं। सृष्टि की उत्पत्ति कैसे हुई? इससे पूर्व यह भी जानना आवश्यक है कि सृष्टि की उत्पत्ति का कार्य कब प्रारम्भ हुआ तथा सृष्टि का प्रारम्भ कब हुआ। इस इकार्द में आप सृष्ट्युत्पत्ति के काल तथा वेदों, वेदांगों, पुराणों, स्मृतिग्रन्थों तथा दर्शनशास्त्र में वर्णित सृष्टि की अवधारणा के विषय में अध्ययन करेंगे।

1-2 उद्देश्य —

इस इकाई के निम्नलिखित उद्देश्य है -

1- सृष्टि के अर्थ को बताने में समर्थ होंगे।

2- सृष्टि की उत्पत्ति का समय ता सकेंगे।

3- सृष्टि की वैदिक परिकल्पना की व्याख्या कर सकेंगे।

4- पुराणों में सृष्टि की परिकल्पना का वर्णन कर सकेंगे

5- दर्शन शास्त्र के अनुसार सृष्टि की परिल्पना का विवेचन करने में समर्थ होंगे।

1-3-1 सृष्टि काल —

सृष्टि का अर्थ है निर्माण रचना अथवा उत्पत्ति। अर्थात किसि वस्तु की उत्पत्ति अथवा निर्माण सृष्टि कहलाती है। जगत् की सृष्टि एक महत्वपूर्ण विषय है। सृष्टि की अवधारणा के विषय में ज्ञान प्राप्त करने पूर्व यह भी जानना आवश्यक है कि इस चराचर जगत् का निर्माण कार्य कब प्रारम्भ हुआ। इस विषय में सूचना का सन्दर्भ वेदों का नेत्र स्वरूप ज्योतिषशास्त्र है। ज्योतिषशास्त्र सृष्ट्यादि से लेकर प्रलय पर्यन्त काल की गणना की गई है। ज्योतिषशास्त्र के सिद्धान्त ग्रन्थों में कालमानाध्याय में कहा गया है कि सृष्टि की उत्पत्ति ब्रह्मा का दिन प्रारम्भ होने पर हुई। अर्थात ब्रह्मा का कल्प तुल्य दिन पूर्ण होने पर प्रलय होती है। तदनन्तर एक कल्प तुल्य रात्रि में वह विश्राम करते है। द्वितीय अहोरात्र प्रारम्भ होने पर वह संसार का निर्माण कार्य प्ररम्भ करते है।

इस प्रकार दो कल्प तुल्य ब्रह्मा का एक अहोरात्र होता है। एक कल्प में सन्धि सहित 14 मनु होते है। प्रत्येक मनु में 71 महायुग होते हैं। एक महायुग का मान 12000 दिव्य वर्ष होता है। (दिव्य वर्ष देवताओं से सम्बन्धित वर्ष होता है जिसमें 360 देवताओं के दिन होते है। देवताओं के एक दिन में 360 सौरदिन होते हैं। सूर्य का एक अंश तुल्य भोगकाल एक सौर दिन कहलाता है तथा 360 सौर दिन का एक सौरवर्ष जो देवताओं का एक दिन दिन अथवा दिव्यदिन है।)

एक महायुग में कृतयुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग तथा कलियुग नामक चारयुग सन्धि सहित होते है। चार हजार दिव्य वर्ष का एक कृगयुग कहा है। इस युग की जितने दिव्य वर्ष की अर्थात् 400 वर्ष की सन्ध्या होती है और उतने ही वर्षो की अर्थात् 400 वर्षो का सन्ध्यांश का समय होता है अर्थात कृतयुग का कुल मान 4800 दिव्यवर्ष है। त्रेता युग का मान 3000 दिव्यवर्ष तथा 300 वर्ष की संध्या 300 वर्ष संध्यांश कुल मान 3600 दिव्यवर्ष है। द्वापर युग का मान 2000 दिव्यवर्ष, 200 दिव्यवर्ष सन्धि एवं 200 दिव्यवर्ष संध्याश कुल मान 2400 दिव्य वर्ष तथा कलयुग का मान 1000 दिव्यवर्ष, सन्धि-संध्यांश 200 वर्ष कुल मान 1200 वर्ष है। इस प्रकार कुल मान 4800$3600$2400$1200=12000 दिव्यवर्ष एक महायुग का मान होता है। अर्थात -

सूर्य का एक अंश तुल्य भोगकाल	=	एक सौर दिन
360 सौर दिन	=	देवताओं का एक दिन (दिव्यदिन)
360 दिव्यदिन	=	1 दिव्य वर्ष।
12000 दिव्य वर्ष	=	1महायुग
71 महायुग	=	1 मनु
ससन्धि 14 मनु	=	1 कल्प = ब्रह्मा का दिन
2 कल्प	=	ब्रह्मा का एक अहोरात्र।

देव युगों को 1000 से गुण करने पर जो काल परिणाम निकलता है, वह ब्रह्म का एक दिन और उतने ही वर्षो की एक रात समझना चाहिए। यह ध्यान रहे कि एक देव वर्ष 360 मानव वर्षो के बराबर होता है। जो लोग उस एक हजार दिव्य युगों के परमात्मा के पवित्र दिन को और उतने की युगों की परमात्मा की रात्रि समझते हैं, वे ही वास्तव में दिन-रात = सृष्टि उत्पत्ति और प्रलय काल के विज्ञान के वेत्ता लोग हैं। इस आधार की सृष्टि की आयु = 12000 × 1000 देव वर्ष = 12000000 देव वर्ष 12000000×360 = 4320000000 मानव सौरवर्ष। अतः 12000000 देव वर्ष = 4320000000 मानव वर्ष पहले जो बारह हजार दिव्य वर्षो का एक दैव युग कहा है, इससे 71 (इकहत्तर) गुणित अर्थात् 12000×71 = 852000 दिव्य वर्षो का अथवा 852000×360= 306720000 वर्षो का एक मन्वन्तर का काल परिणाम गिना गया है। इस प्रकार वह महान् परमात्मा असंख्य मन्वन्तरों को, सृष्टि उत्पत्ति और प्रलय को बार-बार करता रहता है, अर्थात् सृष्टी प्रवाह से अनादि है। उक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि 4320000000 सौरवर्ष पूर्व ब्रह्मा का दिन प्रारम्भ हुआ तथा सृष्टि की रचना का कार्य प्रारम्भ हुआ।

सृष्टि की रचना का प्रारम्भ कब हुआ? इस विषय पर विचार करने के पश्चात इस विषय पर विचार करना आवश्यक है कि सृष्टि में मानव की उत्पत्ति कब हुई, क्योंकि मानव के उत्पन्न होने पर ही तो वेद का ज्ञान उसे प्राप्त हुआ है। इससे पूर्व की स्थिति अर्थात् सृष्टि उत्पन्न होने के प्रारम्भ से मानव के उत्पन्न होने तक के समय पर भी विचार करना परमावश्यक है। वास्तव में मनुष्य ने तो अपने उत्पन्न होने के बाद ही समय की गणना प्रारमभ की है। सृष्टि के उस समय की गणना वह कैसे करता, जब बन ही रही थी? वह कैसे जानता कि सृष्टि उत्पन्न होने की क्रिया के प्रारमभ होने से उसके पूर्ण होने तक सृष्टि निर्माण में कितना समय व्यतीत हुआ है? सूर्यसिद्धान्त में इस विषय पर विचार किया गया है। समस्त वैदिक वाघ्यमय के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि सृष्टि के रचयिता परब्रह्म हैं। वैदिक वाघ्मय में परब्रह्म को ही प्रजापति, विश्वकर्मा, हिरण्यगर्भ, विराट पुरूष आदि के नाम से सम्बोधित किया गया है। ज्योतिषशास्त्र के आर्ष ग्रन्थ सूर्यसिद्धान्त के कालमानाध्याय में वर्णन सृष्टि काल के विषय इस प्रकार से वर्णन आया है -

ग्रहक्ष-देव-दैत्यादि सृजतोक्षस्य चराचरस्य।

कृताद्रिवेदा दिव्याब्दाः शघ्ना वेधसो गताः।

अर्थात् ग्रह, नक्षत्र, देव, दैत्य आदि चर (जघैर्म जीव-जन्तु) अचर (स्थावर वृक्ष पर्वतादि) की रचना करने में ब्रह्मा को कल्पारम्भ से शत गुणित 474 दिव्य वर्ष अर्थात् $474 \times 100 = 47400$ दिव्य वर्ष बीत गए। एक दिव्यवर्ष होते है अर्थात $47400 \times 360 = 17064000$ सौर वर्ष। तथा $4320000000 - 17064000 = 4302936000$ सौरवर्ष। उक्त विवेचन से सिद्ध होता है कि सूर्यसिद्धान्त के काल से 4320000000 सौर वर्ष पूर्व सृष्टि की रचना प्रारम्भ हुई तथा 4302936000 सौरवर्ष पूर्व सृष्टि की सम्पूर्ण गतिविधियों का प्रारम्भ हुआ। अर्थात ग्रह, नक्षत्रें ने चलना प्रारम्भ किया तथा पृथ्वी पर चराचर का प्र्रारम्भ हुआ।

अतिलघूत्तरीय प्रश्न

1. एक कल्प में सन्धि सहित कितने मनु होते है ?
2. एक देव वर्ष कितने मानव वर्षो के बराबर होता है ?
3. एक महायुग में कितने युग सन्धि सहित होते है ?
4. कितने सौरवर्ष पूर्व ब्रह्मा का दिन प्रारम्भ हुआ ?
5. ग्रह, नक्षत्र, देव, दैत्य आदि चर-अचर की रचना करने में ब्रह्मा को कल्पारम्भ से कितने दिव्य वर्ष बीत गए?

1-3-2 वेदों में सृष्टि परिकल्पना -

सृष्टि परिकल्पना को लेकर सर्वप्रथम यह विचार उत्पन्न होता है कि यह दृश्य जगत् कहाँ से आया? इसको लाने वाला कौन है? इसका निर्माणकर्ता कौन है? इत्यादि अनेक प्रश्न उत्पन्न होते हैं। इसका समाधान क्या है? यह सृष्टि-क्रम अनन्त है और इसकी जिज्ञासाएँ भी अनन्त है। इस विषय से सम्बन्धित जिज्ञासाएँ वेदों में अनेक स्थानों पर दृष्टिगोचर होती है। विश्वकर्मा सूक्त में जिज्ञासा व्यक्त करतक हुए कहा गया है कि वह कौन सा वन है

तथा वन का कौन सा वृक्ष है जिसने आकाश तथा पृथ्वी को बनाया। इसी प्रकार ऋग्वेद के नासदीय सूक्त में सृष्टि की जिज्ञासा का वर्णन इस प्रकार आया है। यथा -

को अद्धा वेद क इह प्रवोचत् कुत अजाता कुत इयं विसृष्टिः।
अर्वाग्देवा अस्य विसर्जने ना अथा को वेद यत आवभूव।।
इयं विसृष्टिर्यत आवभूव यदि वा दधे यदि वा न।
या अस्याध्यक्षः परमे व्योमन् त्सो अंग वेद यदि वा न वेद।।

अर्थात् यह विविध सृष्टि किससे उत्पन्न हई, किसलिए हुई, इस प्रकृत तत्त्व को वस्तुतः कौन जानता है? अथवा इसके विषय में कौन कह सकता है? यह सृष्टि किास उपादान कारण से हुई है? किस निमित्त कारण से हुई है? देवता भी इस सृष्टि के अनन्तर उत्पन्न हुए। यह सृष्टि किससे उत्पन्न हुइ उसे कौन जानता है? यह विविध प्रकार की सृष्टियां कहां से हुई? किसने सृष्टि की तथा किसने नहीं? वेदों में सृष्टि की अवधारणा के निम्न सिद्धान्त प्राप्त होते है।

विराट पुरूष से सृष्टि की उत्पत्ति —

ऋग्वेद के पुरूष सूक्त में 16 मन्त्रें में जगत की सृष्टि कारण विराटपुरूष बताया गया है। सूत्तफ़ में वर्णित विराट् पुरुष ही इस ब्रह्माण्ड रूपी यज्ञ में स्वयं को अर्पित करके अनेक रूपों में प्रकट होता है और तदनन्तर सृष्टि की उत्पत्ति प्रारम्भ होती है। यह पुरुष विराट् परमेश्वर हजारों सिरों वाला, हजारों आँखों वाला और हजारों पैरों वाला है। वह भूमि के चारों और से व्याप्त करके दस अंगुल प्रमाण में ब्रह्माण्ड को पार करके स्थित है। अर्थात् वह परम पुरुष ब्रह्माण्ड को भीतर और बाहर से व्याप्त किए हुए है। यह सब कुछ दृश्यमान वर्तमान जगत् पुरुष ही है। जो कुछ हो चुका है, भूतकालीन और जो कुछ होगा अर्थात् भविष्यत् कालीन जगत् भी पुरूष ही है और वह पुरुष देवताओं का अथवा अमरत्व का स्वामी है। पुरुष अन्न अर्थात् प्राणियों के भोग्य पदार्थों के कारण बढ़ता है अर्थात् इस दृश्यमान जगत् रूप अवस्था को प्राप्त करता है।ष्इतनी इसकी महिमा है अर्थात् भूत-भविष्यत् वर्तमान कालत्रयवर्ती यह समग्र जगत् इसकी महिमा मात्र है। सम्पूर्ण प्राणी अर्थात् यह समग्र जगत् इसका केवल पाद (चतुर्थांश) है। इसके तीन पाद अर्थात् तृतीयांश अविनाशी रूप से द्युलोक में अर्थात् स्वप्रकाश रूप में अवस्थित रहते हैं। संसार से ऊपर तीन पादों वाला यह विराट् पुरुष इस जगत् से ऊपर उठा हुआ इस पुरुष के मुख से ब्राह्मण हुए, बाहुओं से क्षत्रिय हुए। इस पुरुष के जो दोनों उरु हैं उनसे वैश्य और पैरों से शूद्र प्रकट हुए। उनके मन से चन्द्रमा हुए, चक्षु से सूर्य हुए, कानों से वायु तथा प्राण हुए और मुख से अग्निदेव हुए। उस यज्ञ पुरुष की नाभि से अन्तरिक्ष लोक उत्पन्न हुआ, शिर से स्वर्ग प्रकट हुआ, पैरों से पृथ्वी और कानों से दिशाएं उत्पन्न हुई। इसी प्रकार उस पुरुष में ही ये सब लोक कल्पित हुए।

विश्वकर्मा से सृष्ट्युत्पत्ति —

ऋग्वेद के विश्वकर्मा सूक्त में विश्वकर्मा को सृष्ट्युत्पत्ति का कारण बतायया बया है। विश्वकर्मा ने सर्वथम जल को उत्पन्न किया तत्पश्चात जल में इधर-उधर चलने वाली द्यावापृथवी की रचना की। द्यावापृथवी के प्राचीन तथा

अन्त्य प्रदेशों को विश्वकर्मा ने सुदृढ़ किया। द्वितीय मन्त्र में कहा गया है कि, विश्वकर्मा बृहत् हैं तथा वो सब जानते हैं तथा सब कुछ देखते है। 82वे सूक्त में विश्वकर्मा का सर्वोच्चशक्ति के रूप में वर्णन किया गया है। इस सूक्त के अनुसार विश्वकर्मा अपनी संकल्पात्मक बुद्धि के सामर्थ्य से समस्त जगत् को धारण करने वाला है। उस बुद्धिमान ने हिरण्यगर्भ को उत्पन्न किया और तदनन्तर पूर्व से उत्तर परिणाम को प्राप्त होते हुए द्यौ और पृथिवी को जन्म दिया। इन दोनों के जब पर्यन्त भाग, बाहर के सीमा भाग स्थि हो गए तो पुनः उस बुद्धिमान ने द्यो और पृथिवी का विस्तार किया।

हिरण्यगर्भ अथवा प्रजापति से से सृष्ट्युत्पत्ति—

सृष्टि उत्पत्ति से पूर्व वह हिरण्यगर्भ उत्पन्न हुआ, उत्पन्न होते ही सभी प्राणियों का एकमात्र स्वामी हुआ, उसने पृथिवी और चुलोक को धारण किया। जो हिरण्यगर्भ आत्माओं को बल का देने वाला है, अमृतत्व और गृत्युत्व छाया के समान जिसके वशवर्ती हैं जो अपनी महिमा से अकेले ही श्वास लेते हुए तथा पलक झपकाते हुए विश्व का स्वामी हो गया, जो इस दो पैरों वाले मनुष्य तथा चार पैरों वाले गाय, घोड़ा आदि पशुओं का स्वामी हुआ। जिसकी महिमा से ये पर्वत हैं, नदियों के साथ समुद्रों को, जिसका कहते हैं, ये प्रधान दिशायें (पूर्व आदि चार दिशायें) और बाहु के समान कोण दिशायें (आग्नेय आदि चार कोण दिशायें) जिसकी महिमा को कहते हैं, हिरण्यगर्भ प्रजापति ने ही द्युलोक को ऊपर उठाया हुआ है और पृथिवी को स्थिर किया है, जिसने स्वर्ग लोक को ऊपर थामा हुआ है और सूर्य को ऊपर अन्तरिक्ष में थामा है, जो आकाश में जलों को बनाने वाला है। संसार की रक्षा करने के हेतु से निर्माण करने के लिए स्थिर किये गये और प्रकाशमान होते हुये द्युलोक और पृथिवी लोक को वह अपने मन से दे5ता है, उस प्रजापति को आधार बना कर सूर्य उदय होकर प्रकाशित होता है। जब प्रजापति रूप गर्भ को धारण करती हुई तथा अग्नि को उत्पन्न करती हुई विशाल जलराशि विश्व में आई, तब देवताओं का एक प्राणभूत वायु उत्पन्न हुआ।

ब्रह्मा से विश्व की उत्पत्ति—

वेदों के अनुसार ब्रह्म सृष्टि के रचयिता है। ऋग्वेद के सूत्तफ़ों में वर्णन किया गया है कि सृष्टि के आदि में न सत् था और असत् था, न आकाश था, न वायुमण्डल था और न दिन-रात थे। केवल ब्रह्म की ही सत्ता थी। ब्रह्म को किसी ने उत्पन्न नहीं किया, वह स्वयं उद्भूत (स्वयं उत्पन्न) है। ब्रह्मा अनादि है। ब्रह्मा में स्वयं संल्प शत्तिफ़ होती है। ब्रह्मा ने सृष्टि के सृजन का संकल्प किया। उनका यह स ल्प ही जाज्वल्यमान तप था, जो चतुर्दिक व्याप्त था। उस महाज्योति परमतत्त्व से ऋतं और सत्य की उत्पत्ति हुई। यथा-

ऋतं च सत्यं चाभिद्धात्तपसोध्यजायत।

ततो रा=यजायत ततः समुद्रो{र्णवः।।

अर्थात् उस जाज्वल्यमान परमतेज से ऋतं (ज्ञान) तथा सत्यं की उत्पत्ति हुई। उन परमाणुओं के स्थूल होने पर पदार्थ की रचना हुई। दिनरात्रि की रचना हुई तथा जल से परिपूर्ण समुद्र की उत्पत्ति हुई। इस प्रकार सृष्टि प्रक्रिया

का प्रारम्भ हुआ। ब्रह्म से सृष्टयुत्पत्ति की संकल्पना का वर्णन अन्य उपनिषदों, पुराणों तथा दर्शन शास्त्रादि में भी प्राप्त होता है।

लघूत्तरीय प्रश्न

1. ट्टग्वेद के पुरूष सूक्त में जगत की सृष्टि कारण किसे बताया गया है।
2. विराट पुरूष के किन अंगों से ब्राह्मण तथा क्षत्रिय उत्पन्न हुए।
3- विश्वकर्मा ने सर्वथम किस को उत्पन्न किया
4- हिरण्यगर्भ आत्माओं किसे बल का देने वाला है,
5- ब्रह्मा का संकल्प कैसा था।

1-3-3 पौराणिक सृष्टि परिकल्पना —

भारतीय चिन्तन परम्परा में पुराणो का विशिष्ट स्थान है। प्रायः सभी पुराणों में सृष्टि की अवधारणा का वर्णन प्राप्त होता है। विष्णु पुराण में पराशर जी कहते हैं कि फ् इस जगत् की उत्पत्ति का मूल कारण विष्णु हैं। उन्हीं में यह जगत् स्थित है। विष्णु ही इसकी स्थिति और लयकर्ता तथा विष्णु ही जगत् हैं। वह परब्रह्म, विकार-रहित, शुद्ध, अविनाशी परमात्मा, सर्वथा एकरस, भगवान वासुदेव हैं। वे सर्वत्र हैं एवं समस्त विश्व उन्हीं में विद्यमान है। ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव इन त्रिरूपों में विष्णु भगवान् जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और संहार करते हैं। एक रूप में प्रतीत होते हैं किन्तु अनेक रूपों वाले हैं। विकाररहित, शुद्धस्वरूप, नित्य, स्थूलसूक्ष्म, अव्यत्तफ़ (कारण), व्यत्तफ़ (कार्य) रूप हैं, किन्तु वास्तव में अत्यन्त निर्मल ज्ञानस्वरूप हैं।

पप्र पुराण के अनुसार जगत् के प्रलय के पूर्व कुछ भी नहीं था। सब कुछ करने वाली ब्रह्मसंज्ञक एक ज्योति नित्यमाया रहित, शान्तनिर्मल, नित्यनिर्मल आनन्दसागर अर्थात आनन्द से पूर्णतः परिपूर्ण तथा नितान्त स्वच्छ थी जिसकी मोक्ष की इच्छा करने वाले पुरुष सदा इच्छा किया करते हैं। वह ज्योतिर्ब्रह्म सर्वज्ञ है, ज्ञान स्वरूप वाला है तथा वही सृष्टि का मूल कारण है।

ब्रह्मवैवर्त पुराण में भी वर्णित है कि विश्व का अधिष्ठाता विराट् स्वरूप वाला स्थूल से भी स्थूलतम को धारण करने वाला है। महत्तत्त्व आदि रूप वाला सृजन की ओर उन्मुऽ होता हुआ अपनी ही कला द्वारा हृदय में नित्य सूक्ष्म को एकचित करके सृजन करने वाला परब्रह्म है। वही प्रकृति- ब्रह्मा-विष्णु और शिव आदि समस्त को प्रकट करने वाला है। वह परमब्रह्म स्वेच्छामय सनातन भगवान् सबका बीज स्वरूप है- सबका आधार और परापर है। ब्रह्मवैवर्त पुराण के अध्ययन से भी यही प्रतीत होता है कि सृष्टि की पूर्व अवस्था में जब विश्व शुन्यता से पूर्व जीव-जन्तुओं से रहित-निर्जल-घोर-वायु रहित अन्धकार से आवृत्त था उस समय निर्धातु शस्यों से वर्जित - बिना तृणों वाला ही था।

विष्णुपुराण के सदृश ही गरूड़पुराण में भी जगत् की सृष्टि, स्थिति एवं प्रलय- इन तीनों कार्यों को भगवान विष्णु की पुरातनी क्रीड़ा कहा है। नर, नारायण, वासुदेव, निरंजन परमात्मा तथा परब्रह्म भी भगवान विष्णु ही

है। इस जगत् जनिलयादि के कारण भी वे ही हैं। वही व्यत्तफ़ और अव्यत्तफ़ स्वरूप वाले हैं तथा पुरुष और काल रूप से अवस्थित है। व्यक्त विष्णु स्वरूप है तथा पुरूष तथा काल इन्हीं का अव्यक्त रूप है।

मत्स्यपुराण के अनुसार भी महाप्रलय व्यतीत होने के अनन्तर समस्त जगत् की स्थिति अन्धकार में घने तम से आच्छन्न थी, यथा- अन्धकार में सोए हुए चर वा अचर वस्तु की भाँति न तो पता लगने योग्य, न पहचानने योग्य और न ही कहीं कोई वस्तु जानने योग्य थी। निराकार, इन्द्रियों से परे, सूक्ष्म से अति सूक्ष्म, महान् से अत्यधिक महत्ता और अविनाशी अर्थात् अविनाश सत्ता वाले, जगत् में नारायण नाम से प्रसिद्ध, इस महाप्रलय के अनन्तर संसार में पुण्य कर्म के प्रभाव से घने तम का विनाश करते हुए चराचर जगत् के उत्पत्ति कारक स्वयं प्रादुर्भूत हुए।

नारदीय पुराण द्वारा भी समस्त जगत् उसी नारायण में व्याप्त है। नारायण ही परम-तत्त्व अथवा परमब्रह्म का स्वरूप है। नारायण अविनाशी अनन्त एवं सर्वव्यापी है। महाविष्णु, नारायण का अपर अभिधान है।

महर्षि वेदव्यास द्वारा रचित श्री मद्भागवत पुराण वैष्णव पुराणों में एक अद्वितीय महनीयता से मण्डित है। श्री मद्भागवत पुराण स्पष्ट शब्दों में अद्वैत तत्त्व का प्रतिपादन करता है। इस पुराण के द्वितीय स्कन्ध के नवम अध्याय का अध्ययन करें तो ज्ञात होता है कि परमतत्त्व भगवान् ब्रह्मा को चतुःश्लोकी भागवत का उपदेश करते हुए कहते हैं कि सर्वत्र 'अहम्श् अर्थात् मैं ही हूँ। उस परमतत्त्व का कथन है कि फ् सृष्टि की पूर्वकालीन अवस्था में मेरे अतिरित्तफ़ सत् अर्थात् कार्यात्मक स्थूल तथा असत् अर्थात् कारणात्मक सूक्ष्म कुछ भी न था। स्थूल और सूक्ष्म को अज्ञान कहने वाला कारण भी नहीं था। इन सब सत-असत् का कारणभूत प्रधान भी मुझमें ही अन्तर्मुऽ होकर लीन था। जहाँ यह सृष्टि नहीं है अर्थात् जब प्रलय में सब लीन हो जाते है तो केवल मेरी सत्ता होती है तथा में समस्त चराचरों का सृजन करता हू।

बहुविकल्पीय प्रश्न -

1. विष्णु पुराण के अनुसार इस जगत् की उत्पत्ति का मूल कारण कौन हैं -

(क) ब्रह्मा (ख) विष्णु

(ग) सूर्य (घ) महेश

2. ब्रह्मवैवर्त पुराण के अनुसार विश्व का अधिष्ठाता कौन है।

(क) परब्रह्मा (ख) विष्णु

(ग) सूर्य (घ) महेश

3. गरूड़ पुराण में भी जगत् की सृष्टि, स्थिति एवं प्रलय- इन तीनों कार्यों को किसकी की पुरातनी क्रीड़ा कहा है।

(क) परब्रह्मा (ख) विष्णु

(ग) सूर्य (घ) महेश

4. मत्स्य पुराण के अनुसार चराचर जगत् के उत्पत्ति कारक स्वरूप कौन प्रादुर्भूत हुए-

(क) परब्रह्मा (ख) विष्णु

(ग) सूर्य (घ) नारायण

5. मद्भागवत पुराण स्पष्ट शब्दों में किस तत्त्व का प्रतिपादन करता है -

(क) द्वैत (ख) अद्वैत

(ग) विशिष्टाद्वैत (घ) महाद्वौत

1-3-4 दर्शनशास्त्र में सृष्टि की परिकल्पना —

भारत में श्दर्शन उस विद्या को कहा जाता है जिसके द्वारा तत्व का ज्ञान हो सके। शतत्व दर्शनश् या श्दर्शनश् का अर्थ है तत्व का ज्ञान। मानव के दुखों की निवृति के लिए या तत्व ज्ञान कराने के लिए ही भारत में दर्शन का जन्म हुआ है भारतीयर्शन आस्तिक तथा नास्तिक दो भागों में विभक्त है। वेदोंकी सत्ता को स्वीकार करने वाले दर्शन आस्तिक दर्शन तथा वेदों के अस्तित्व को स्वीकार ना करने वाले दर्शन नास्तिक दर्शन कहलाते है। यह न्याय, वैशेशिक, साख्य, योग, मीमांसा तथा वेद ये छः दर्शन आस्तिक दर्शन की श्रेणी में, चार्वाक बौध तथा जैन नास्तिक दर्शन कहलाते है। प्रायः सभी दर्शनों में सृष्ट्युत्पत्ति के विषय में वर्णन किया गया है। यहां केवल आस्तिक दर्शन में सृष्ट्युित्पत्ति के विषय में विचार किया जा रहा है।

न्याय-वैशेषिक का जगत् विचार —

न्याय-वैशेषिक दर्शन विश्व की उत्पत्ति के सम्बन्ध में सृष्टिवाद के सिद्धान्त को अपनाता है। सांख्य को छोड़कर भारत के प्रत्येक दर्शन में सृष्टिवाद के सिद्धान्त को शिरोधार्य किया गया है। परन्तु वैशेषिक के सृष्टि सिद्धान्त की कुछ विशेषताएँ है, जो इसे अन्य सृष्टि सिद्धान्तों से अनूठा बना देती है। वैशेषिक के मतानुसार विश्व का निर्माण परमाणुओं से हुआ है। परमाणु चार प्रकार के हैं पृथ्वी के परमाणु, जल के परमाणु, वायु के परमाणु और अग्नि के परमाणु। चूँकि विश्व का निर्माण चार प्रकार के परमाणुओं से हुआ है। इसलिए वैशेषिक का सृष्टि-सम्बन्धी मत परमाणुवाद का सिद्धान्त कहा जाता है। परमाणु शाश्वत होते हैं। इनकी न सृष्टि होती है और न नाश होता है। निर्माण का अर्थ है, विभिन्न अवयवों का संयुत्तफ़ हो जाना, विनाश का अर्थ है विभिन्न अवयवों का बिऽर जाना। परमाणु निरवयव है, इसलिए निर्माण और विनाश से परे है।

सांख्य दर्शन में जगत विचार —

सांख्य दर्शन की मान्यता है कि संसार की हर वास्तविक वस्तु का उद्गम पुरूष और प्रकृति से हुआ है। पुरूष में स्वयं आत्मा का भाव है जबकि प्रकृति पदार्थ और सृजनात्मक शत्तिफ़ की जननी है। विश्व की आत्मायें संख्यातीत है जिसमें चेतना तो है पर गुणों का अभाव है। वही प्रकृति मात्र तीन गुणो के समन्वय से बनी है। इस त्रिगुण सिद्धान्त के अनुसार सत्व, राजस्व तथा तमस की उत्पत्ति होती है। सांख्य दर्शन में सृष्ट्युत्पत्ति का सूत्र निम्नलिखित है-

सत्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः प्रकृतेर्महान,

महतौहंकारौहंकारात् पंचतन्मात्रण्युभयमिनिन्द्रियं

तन्मात्रेभ्यः स्थूल भूतानि पुरूष इति पंचविंशतिर्गणः।।

प्रकृति मूल रूप से सत्व,रज तथा तमस की साम्यावस्था को कहते है। तीनो आवेश परस्पर एक दूसरे को निःशेष (दमनजतंसप्रम) कर रहे होते है। परमात्मा का तेज परमाणु (त्रित) की साम्यावस्था को भंग करता है और असाम्यावस्था आरंभ होती है। रचना-कार्य में यह प्रथम परिवर्तन है। इस अवस्था को महत् कहते है। यह प्रकृति का प्रथम परिणाम है। मन और बुध्दि इसी महत् से बनते हैं। इसमें परमाणु की तीन शत्तिफ़्या बर्हिमुऽ होने से आस-पास के परमाणुओ को आकर्षित करने लगती है। अब परमाणु के समूह बनने लगते है। तीन प्रकार के समूह देऽे जाते है। एक वे है जिनसे रजस् गुण शेष रह जाता है। यह तेजस अहंकार कहलाता है। इसे वर्तमान वैज्ञानिक भाषा में इलेक्टोन कहते है। दूसरा परमाणु-समूह वह है जिसमें सत्व गुण प्रधान होता है वह वैकारिक अहंकार कहलाता है। इसे वर्तमान वैज्ञानिक प्रोटोन कहते है। तीसरा परमाणु-समूह वह है जिसमें तमस् गुण प्रधान होता है इसे वर्तमान विज्ञान की भाषा में न्यूटोन कहते है। यह भूतादि अहंकार है। इन अहंकारों को वैदिक भाषा में आपः कहा जाता है। ये(अहंकार) प्रकृति का दूसरा परिणाम है। तदनन्तर इन अहंकारों से पाँच तन्मात्रएँ (रूप, रस) रस,गंध, स्पर्श और शब्द) पाँच महाभूत बनते है अर्थात् तीनों अहंकार जब एक समूह में आते है, तो वे परिमण्डल कहाते है। परिमण्डलों के समूह पाँच प्रकार के हैं। इनको महाभूत कहते हैं। इन पत्त्चमहाभूतों से समस्त चराचर सृष्टि का निर्माण होता है।

योग दर्शन में जगत् सम्बन्धी विचार —

योग-दर्शन में ईश्वर को विश्व का सृष्टिकर्ता, पालनकर्ता और संहारकर्ता नहीं माना गया है। विश्व की सृष्टि प्रकृति के विकास के फलस्वरूपही हुई है। यद्यपि ईश्वर विश्व का सृष्टा नहीं है, फिर भी वह विश्व की सृष्टि में सहायक होता है। विश्व की सृष्टि पुरुष और प्रकृति के संयोजन से ही आरम्भ होती है। पुरुष और प्रकृति दोनों एक-दूसरे से भिन्न एवं विरूद्ध कोटी के हैं। दोनों को संयुत्तफ़ करने के लिए ही योग-दर्शन में ईश्वर की मीमांसा हुई है। अतः ईश्वर विश्व का निमित्त कारण है, जबकि प्रकृति विश्व का उपादान कारण है। इस बात को विज्ञानभिक्षु और वाचस्पति मिश्र ने प्रमाणिकता दी है।

मीमांसा-दर्शन में जगत विचार—

उत्तरमीमांसा (वेदांत) अज्ञान से सृष्टि और आत्मज्ञान से सृष्टि का विनाश (मोक्ष) मानता है। अन्य दर्शनों में द्वयणुकादि क्रम से महाभूत पर्यन्त महासृष्टि और महाभूत से परमाणु पर्यन्त विनाश को महाप्रलय कहा है। अर्थात् संपूर्ण भाव कार्य द्वयणुकादि क्रम से उत्पन्न होते हैं और स्थूल से परमाणु पर्यंत जाकर नष्ट हो जाते हैं। पंच महाभूतों में पृथ्वी, जल, तेज और वायु के परमाणु नित्य हैं। आकाश स्वयं ही नित्य है, किंतु पूर्व मीमांसा के अनुसार दो प्रकार की सृष्टि और तीन प्रकार के प्रलय होते हैं, जिनमें महासृष्टि और ऽंड सृष्टि शब्द से दो सृष्टि कही गई है। ऐसे ही प्रलय, महाप्रलय और ऽंड प्रलय शब्द से तीन प्रलय कहे गए हैं। उनमें ऽंड सृष्टि और ऽंड प्रलय आजकल के समान ही माना गया है। उदाहरणार्थ किसी स्थल विशेष का भूकंप आदि से विनाश हो जाता है और कहीं पर नवीन वस्तु की सृष्टि हो जाती है। महासृष्टि में परमाणुओं से द्वयणुकादि द्वारा

पंचमहाभूत पर्यन्त नवग्रहादिकों की सृष्टि होती है। मत्स्यपुराणादि में भी ऽ◌ंड प्रलय के अंतर्गत विद्यमान पदार्थों की स्थिति का विवरण प्राप्त होता है, किंतु पूर्व मीमांसा महासृष्टि और महाप्रलय को स्वीकार नहीं करता। उसके अनुसार सभी पदार्थों के नाश में कोई भी प्रमाण उपलब्ध नहीं होता। अतः मीमांसा दर्शन ऽ◌ंड सृष्टि और ऽ◌ंड प्रलय को ही मानता है।

वेदान्त दर्शन में जगत् विचार —

वेदान्तदर्शन के अनुसार सृष्ट्युत्पत्ति में सर्वप्रथम ईश्वर से पाँच सूक्ष्म भूतों का अविभाव होता है। माया से आकाश उत्पन्न होता है। आकाश से वायु उत्पन्न होती है, वायु से अग्नि उत्पन्न होती है तथा अग्नि से जल उत्पन्न होता है। इस प्रकार आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी से सूक्ष्म भूतों का निर्माण होता है। पाँच स्थूल भूतों का निर्माण, पाँच सूक्ष्म भूतों का पाँच प्रकार के संयोग होने के फलस्वरूप होता है। जिस सूक्ष्म भूत को स्थूल भूत में परिवर्तित होना है, उनका आधा भाग (1/2) तथा अन्य चार सूक्ष्म तत्त्वों के आठवें हिस्से (1/8) के संयोजन से पाँच स्थूल भूतों का निर्माण होता है। पाँच सूक्ष्म भूतों से पाँच स्थूल भूतों का अविर्भाव का क्रम इस प्रकार होता है

स्थूल आकाश = 1/2- आकाश , 1/8- वायु, 1/8- अग्नि ,1/8- जल, 1/8- पृथ्वी।

स्थूल वायु= 1/2 वायु,1/8 आकाश ,1/8 अग्नि ,1/8 जल ,1/8 पृथ्वी।

स्थूल अग्नि = 1/2 अग्नि ,1/8 आकाश ,1/8 वायु , 1/8 जल , 1/8 पृथ्वी।

स्थूल जल = 1/2 जल ,1/8 आकाश ,1/8 वायु ,1/8 अग्नि , 1/8 पृथ्वी।

स्थूल पृथ्वी = 1/2 पृथ्वी ,1/8 अकाश ,1/8 वायु ,1/8 अग्नि ,1/8 जल।

इस क्रिया को पंचीकरण कहा जाता है। प्रलय का क्रम सृष्टि के क्रम से प्रतिकूल है। प्रलय के समय पृथ्वी का जल में, जल का अग्नि में, अग्नि का वायु में, वायु का आकाश में तथा आकाश का ईश्वर की माया में लय हो जाना है।

रिक्त स्थान की पूर्ति—

1- न्याय-वैशेषिक दर्शन विश्व की उत्पत्ति के सम्बन्ध में -----------------के सिद्धान्त को अपनाता है।

2- सांख्य दर्शन की मान्यता है कि संसार की हर वास्तविक वस्तु का उद्गम -------------- हुआ है।

3- योग-दर्शन में ----------------- को विश्व का सृष्टिकर्ता, पालनकर्ता और संहारकर्ता नहीं माना गया है।

9 मीमांसा ------------------------ से सृष्टि और------------------------- से सृष्टि का विनाश (मोक्ष) मानता है।

10 वेदान्तदर्शन के अनुसार सृष्ट्युत्पत्ति में सर्वप्रथम ईश्वर से -----------------सूक्ष्म भूतों का अविभाव होता है।

1-4 सारांश —

किसि वस्तु की उत्पत्ति अथवा निर्माण सृष्टि कहलाती है। चराचर जगत् का निर्माण कार्य कब प्रारम्भ हुआ यह एक अत्यन्त महत्वपूर्ण विषय है। ज्योतिषशास्त्र के सिद्धान्त ग्रन्थों में कहा गया है कि सृष्टि की उत्पत्ति ब्रह्मा का दिन प्रारम्भ होने पर हुई। सूर्यसिद्धान्त के सृष्टि के रचयिता परब्रह्म हैं तथा ग्रह, नक्षत्र, देव, दैत्य आदि चर-अचर की रचना करने में ब्रह्मा को कल्पारम्भ से 47400 दिव्य वर्ष बीत गए। वेदों में सृष्टि की अवधारणा के चार सिद्धान्त प्राप्त होते हैं - विराट पुरूष से सृष्टि की उत्पत्ति, विश्वकर्मा से सृष्ट्युत्पत्ति, हिरण्यगर्भ अथवा प्रजापति से से सृष्ट्युत्पत्ति तथा ब्रह्मा से विश्व की उत्पत्ति। पुराणों में भी सृष्टि की अवधारणा का वर्णन प्राप्त होता है। विष्णु पुराण के अनुसार इस जगत् की उत्पत्ति का मूल कारण विष्णु हैं। पद्म पुराण के अनुसार सब कुछ करने वाली ब्रह्मसंज्ञक एक ज्योति है। ब्रह्मवैवर्त पुराण के अनुसार विश्व का अधिष्ठाता विराट् स्वरूप वाला स्थूल से भी स्थूलतम को धारण करने वाला परमब्रह्म स्वेच्छामय सनातन भगवान् सबका बीज स्वरूप है गरूड़ पुराण में जगत् की सृष्टि, स्थिति एवं प्रलय- इन तीनों कार्यो को भगवान विष्णु की पुरातनी क्रीड़ा कहा है। मत्स्य पुराण के अनुसार जगत् के स्रष्टा नारायण है। नारदीय पुराण के अनुसार समस्त जगत् नारायण में व्याप्त है। दर्शन शास्त्र में भी सृष्टि प्रक्रिया का वर्णन प्रायः सभी आस्तिक तथा नास्तिक दर्शनशास्त्र में किया गया है। न्याय-वैशेषिक दर्शन विश्व की उत्पत्ति के सम्बन्ध में सृष्टिवाद के सिद्धान्त को अपनाता है। असके अनुसार विश्व का निर्माण चार प्रकार के परमाणुओं से हुआ है। सांख्य दर्शन की मान्यता है कि संसार की हर वास्तविक वस्तु का उद्गम पुरूष और प्रकृति से हुआ है। वेदान्तदर्शन के अनुसार सृष्ट्युत्पत्ति में सर्वप्रथम ईश्वर से पाँच सूक्ष्म भूतों का अविभाव होता है। इस प्रकार इस इकाई में आपने वेदों पुराणों तथा दर्शनशास्त्र में सृष्टि की परिकल्पना के विषय में विस्तार स अध्ययन किया।

1-5 पारिभाषिक शब्दावली—

लयकर्ता - अंत करने वाला

अविनाशी - जिसका कभी अंत ना हो

अव्यत्तफ़ - वाणी के द्वारा जिसका वर्णन न किया जा सके।

निर्जल - जल से रहित

निरंजन - दुर्गुण एवं दोष से रहित, निगुर्ण ब्रह्म

सृष्टिवाद - सृष्टि से सम्बन्धित सिद्धान्त

1-6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर—

अतिलघूत्तरीय प्रश्न—

1- 14

2- 2- 360

3- 3- चार

4- 4- 4320000000

5- 5- 47400

लघूत्तरीय प्रश्न —

1. ट्टग्वेद के पुरूष सूक्त में जगत की सृष्टि कारण विराटपुरूष बताया गया है।
2. विराट पुरूष के मुख से ब्राह्मण तथा भुजाओं सं क्षत्रिय उत्पन्न हुए।
3. विश्वकर्मा ने सर्वथम जल को उत्पन्न किया
4. हिरण्यगर्भ आत्माओं को बल का देने वाला है,
5. ब्रह्मा का संकल्प जाज्वल्यमान तप था, जो चतुर्दिक व्याप्त था।

बहुविकल्पीय प्रश्न —

1- (ख) 2ण् (क) 3ण् (ख) 4ण् (घ) 5ण् (ख)

रिक्त स्थान की पूर्ति —

1- सृष्टिवाद

2- पुरूष और प्रकृति से

3- ईश्वर

4- अज्ञानए आत्मज्ञान

5- पाँच

1-7 सन्दर्भ ग्रन्थों की सूची—

1- ट्टग्वेद, सयणाचार्यकृत-भाष्यसंवलिता, अनुवादक पण्डित रामगोविन्द त्रिवेदी, चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी, 2016

2- अथर्ववेद, सयणाचार्यकृत-भाष्यसंवलिता, अनुवादक पण्डित रामगोविन्द त्रिवेदी, चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी, 2016

3- उपनिषत्स×चयम्, अनुवादक आचार्य केशवलाल वा- शास्त्री, चौखम्बा संस्कृत प्रति"ान दिल्ली, 2015

4- शतपथ ब्राह्मण, सायणाचार्यकृत-भाष्य, नाग प्रकाशन ज्वाहरनगर दिल्ली, 1990

5- सूर्यसिद्धान्तः - आर्षग्रन्थः, टीकाकार कपिलेश्वरशास्त्री, चौखम्बा संस्कृत संस्थान वाराणसी-2004

6- मनुस्मृति - डा- गजानन शास्त्री, चौखम्बा सुरभारती प्रति"ान वाराणसी, 2002

7- ब्रह्मपुराण - गीताप्रैस गोरखरपुर, विक्रम संवत 2067

8- पद्म पुराण - गीताप्रैस गोरखरपुर, विक्रम संवत 2067

9- शिवपुराण - गीताप्रैस गोरखरपुर, विक्रम संवत 2065

10- श्रीमद्भागवतमहापुराण - गीताप्रैस गोरखरपुर, विक्रम संवत 2066

11- विष्णुपुराण - गीताप्रैस गोरखरपुर, विक्रम संवत 2069

12- मत्स्य पुराण गीताप्रैस गोरखरपुर, विक्रम संवत 2069

13- नारदीय पुराण गीताप्रैस गोरखरपुर, विक्रम संवत 2066

14- ब्रह्मवैवर्तपुराण गीताप्रैस गोरखरपुर, विक्रम संवत 2070

15- भारतीय दर्शन की रूपरेखा - प्रो- हरेन्द्र प्रसाद सिन्हा, मोतीलाल बनारसीदास दिल्ली, 1983

16- भारतीय दर्शन, डा- राधाकृष्णन्, राजपाल एण्ड सन्स दिल्ली -6, 1986

1-8 साहायक उपयोगी सामग्री—

1- ब्रह्माण्ड और सौर परिवार, प्रो- देवी प्रसाद त्रिपाठी, परिक्रमा प्रकाशन दिल्ली, 2006

2- सृष्ट्युत्पत्ति की वैदिक परिकल्पना, विष्णुकान्त शर्मा, प्रतिभा प्रकाशन दिल्ली, 2008

3- सृष्टि उत्पत्ति - रामनाथ गुप्ता, मीरा प्रकाशन, 2019

4- वेद-विज्ञान चिन्तन, प्रो- बृजबिहारी चौबे, कात्यायन वैदिक साहित्य प्रकाशन, होशियारपुर, 2005

5- वेद विज्ञान, स्वामी प्रत्यगात्मानन्द स्वामी, अनुवादिका डा- उर्मिला शर्मा, विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी, 2012

1-9 निबन्धात्मक प्रश्न—

1- सूर्यसिद्धान्त के अनुसार सृष्ट्युत्पत्ति के काल पर निबंध लिखिए।

2- वेदों में वर्णित सृष्टि परिकल्पना का विस्तार से वर्णन कीजिए।

3- पुराणों के अनुसार सृष्टि की परिकल्पना की विस्तृत व्याख्या कीजिए।

4- सांख्य तथा योग दर्शन के अनुसार सृष्टि की अवधारणा सविस्तार स्पष्ट कीजिए।

6- वेदान्त दर्शन में वर्णित सृष्टि की परिकल्पना का वर्णन कीजिए।

इकाई 2- सृष्टि की वैदिक अवधारणा

इकाई की रूपरेखा -

2-1 प्रस्तावना

2-2 उद्देश्य

2-3 मुख्य भाग

2-3-1 उपखण्ड एक - अदिति सूक्त में सृष्टि की अवधारणा

2-3-2 उपखण्ड दो - विश्वकर्मा सूक्त में सृष्टि की अवधारणा

2-3-3 उपखण्ड तीन - पुरूष सूक्त - में हिरण्यगर्भ की अवधारणा

2-3-4 उपखण्ड चार - प्रजापति सूक्त में हिरण्यगर्भ की अवधारणा

2-3-5 उपखण्ड पांच - नासदीय सूक्त में सृष्टि की अवधारणा

2-3-6 उपखण्ड छः - ऋत सूक्त में सृष्टि की अवधारणा

2-3-7 उपखण्ड सात - कालसूक्त में सृष्टि की अवधारणा

2-4 सारांश

2-5 पारिभाषिक शब्दावली

2-6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

2-7 सन्दर्भ ग्रन्थों की सूची

2-8 सहायक उपयोगी सामग्री

2-9 निबन्धात्मक प्रश्न

2-1 प्रस्तावना —

वेद शब्द 'विद्' धातु से करण वा अधिकरण में 'घञ्' प्रत्यय लगाने से बनता है। इस धातु के बहुत-से अर्थ हैं जैसे 'विद ज्ञाने', 'विद सत्तायाम्', 'विद विचारणे', 'विद्लृ लाभे, 'विद चेतनाख्याननिवासेषु' (१.अदादि, २.दिवादि, ३.रुधादि, ४.तुदादि, ५.चुरादिगण।) —अर्थात्जिनकेपठन, मनन और और निदिध्यासन से यथार्थ विद्या का विज्ञान होता है, जिनके कारण मनुष्य विद्या में निष्णात होता है, जिनसे सत्यासत्य, पापपुण्य, धर्माधर्म, तथा विधिनिषेध का विवेक समुद्भूत हो, जिनके द्वारा सब सुखों का लाभ होता है और जिनमें सकलविद्याएँ बीजरुप में विद्यमान रहती हैं — वे ग्रन्थ वेद कहलाते हैं। वेद ईश्वरीय ज्ञान है। यह ज्ञान सृष्टि के आरम्भ में मानवों के कल्याण साधन के लिए निःश्वसित हुआ। वेद वैदिक-संस्कृति के मूलाधिष्ठान हैं। वे शिक्षाओं के अक्षयनिधि और ज्ञान के रत्नाकर हैं। वेद संसाररूपी सागर से पार उतरने के लिए नौकारूप हैं। वेद में मनुष्यजीवन की सभी प्रमुख समस्याओं का समाधान है। अज्ञानान्धकार में पड़े हुए मनुष्यों के लिए वे प्रकाशस्तम्भ हैं, भूले भटके लोगों को वे सन्मार्ग दिखाते हैं। पथभ्रष्टों को कर्त्तव्य का ज्ञान प्रदान करते हैं,अध्यात्मपथ के पथिकों को प्रभु-प्राप्ति के साधनों का उपदेश देते हैं। सक्षेप में वेद अमूल्य रत्नों के भण्डार हैं। आचार्य सायण के अनुसार " इष्ट की प्राप्ति तथा अनिष्ट के निवारण का उपाय जो बतलाएं वे ग्रन्थराशि वेद कहलाते हैं।" महर्षि मनु के शब्दों में— " वेदोऽखिलोधर्ममूलम्" वेदधर्मकामूलहै।"सर्वज्ञानमयोहिसः" अर्थात्वेदसकलज्ञानसेभरपूरहै।वैदिकविज्ञान, राष्ट्रधर्म, समाज-व्यवस्था, पारिवारिक-जीवन, वर्णाश्रम-धर्म, सत्य, प्रेम, अहिंसा, त्याग आदि को दर्पण की भाँति दिखाता है।

सृष्टि का प्रारम्भ कब हुआ यह एक अत्यन्त महत्पूर्ण विषय है। वेद सम्पूर्ण ज्ञान विज्ञान के आदि स्रोत हैं। सृष्टि प्रक्रिया का वर्णन ऋग्वेद के अदिति सूक्त विश्वकर्मा सूक्त, पुरुष सूक्त, प्रजापति सूक्त, नासदीय सूक्त, ऋत सूक्त तथा अथर्ववेद के कालसूक्त आदि सूक्तों में प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त ब्राह्मणग्रन्थों तथा उपनिषदों में भी सृष्टि विषयक अनेक सन्दर्भ प्राप्त होते है। इस इकाई में आप वेदों में सृष्टि विषयक वैदिक अवधारणाओं के विषय में विस्तार से पढेंगे।

2-2 उद्देश्य -

इस इकाई के उद्देश्य ये हैं कि इस इकाई को पढ़ने के बाद अध्येता -

1- अदिति सूक्त के अनुसार सृष्टि प्रक्रिया का वर्णन कर सकेंगे।

2- विश्वकर्मा सूक्त के अनुसार सृष्टि प्रक्रिया को परिभाषित कर सकेंगे।

3- पुरुष सूक्त में वर्णित सृष्टि प्रक्रिया की व्याख्या करने में समर्थ होंगे।

4- नासदीय सूक्त के अनुसार सृष्टि प्रक्रिया का वर्णन कर सकेंगे।

5- प्रजापति सूक्त के अनुसार सृष्टि प्रक्रिया का वर्णन कर सकेंगे।

6- ऋतसूक्त के अनुसार सृष्टि प्रक्रिया का वर्णन कर सकेंगे।

7- कालसूक्त के अनुसार सृष्टि प्रक्रिया का वर्णन कर सकेंगे।

2-3-1 अदिति सूक्त—

अदिति सूक्त ऋग्वेदीय दशम मण्डल का 72वाँ सूक्त है। इस सूक्त की द्रष्ट्री अदिति दाक्षायणी है। यह प्राचेतस दक्ष प्रजापति तथा आसिकनी की कन्या तथा कश्यप प्रजापति की पत्नी थी। अदिति शब्द का अर्थ है- पूर्णता, रचनात्मकता, जो बन्धन रहित हो, तथा जो सीमा से रहित हो। इस सूक्त में अदिति को विश्व सृष्टि की मूर्ति के रूप में प्रतिपादित किया गया है। मन्त्र में कहा गया है कि अदिति ही द्यौ है, अदिति अन्तरिक्ष है, अदिति ही सब भूतों की माता और पिता है। वही पुत्र है, पञ्चजन भूत और भविष्य सब अदिति ही अदिति है। यथा—

अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षमदितिर्माता स पिता स पुत्रः।
विश्वेदेवा अदितिः पञ्चजना अदितिर्ज्जातमदितिर्जनित्वम्।।

इस मन्त्र में अदिति शब्द अनेक पदों से व्यवहृत होता है। सूक्त के 5वें मन्त्र में दक्ष को सूर्य कहा गया है औरसूक्त में अदिति को 'प्रकृति' कहा गया है। और इसी प्रकृति से सब पदार्थों की उत्पत्ति कही गई है। ठीक इस सूक्त की भाँति सांख्यदर्शन में भी सृष्टि की उत्पत्ति का मूल कारण प्रकृति को कहा है। सूक्त में दिव्य पदार्थों की सृष्टि प्रक्रिया में परब्रह्म परमेश्वर को उपादान कारण बनाया तथा अव्यक्त प्रकृति को निमित्त कारण। यही महान् ब्रह्माण्ड वा प्रकृति का स्वामी परमात्मा है और यही परमात्मा इन समस्त लोकों को लौहकार के सदृश अग्नि में डालता और संतप्त करता है। सर्वप्रथम हिरण्यगर्भ रूप परमात्मा अपने अग्निमय तेजस रूप से सबको तप्त करता है। अतएव वहीं से अनेक सूर्य तप्त रूप में उत्पन्न होते हैं, तदनन्तर सृष्टि की प्रागवस्था में सूर्यादि के प्रथम निर्माण वा प्रेरणाकाल में अव्यक्त प्रकृति से सत् अर्थात् व्यक्त जगत् उत्पन्न हुआ। इसके पश्चात् व्यापक दिशाएँ प्रकट हुई। तदनन्तर उसी से ऊपर की ओर फैलने वाले किरणों वाला इसी प्रकृति अर्थात् अदिति से ऊर्ध्व आकाश में गति करने वाले सूर्य- चन्द्रादि प्रकट हुए, अदिति से ही व्यापन युक्त गुण वाले पञ्च तत्त्वों (आकाश, वायु, जल, अग्नि, पृथिवी) की उत्पत्ति हुई। उस अखण्ड प्रकृति से ही दग्ध करने वाले अग्नि और बलोत्पादक वायु की उत्पत्ति हुई है। सूर्य रूप अग्निमय पिण्ड से खण्ड न होने वाली दृढ यह पृथिवी उत्पन्न हुई। अखण्ड प्रकृति से अग्नि और वायु की उत्पत्ति बताई गई है और एक अन्य सन्दर्भ में इस ऋचा के अनुवाद में कहा गया है कि अदिति दक्ष की माता है अर्थात् अदिति से ही दक्ष की उत्पत्ति हुई है और यह अदिति उस दक्ष से परे है अर्थात् अखण्ड रूप में विद्यमान है। सूक्त के ही अन्य मन्त्र में कहा गया है कि अदिति सूर्य की दुहिता के समान है और (अदिति को मन्त्र में पृथिवी भी कहा गया है) वह दृढ पृथिवी अग्नि रूप से उत्पन्न हुई है। उसके पश्चात् सुख-ऐश्वर्य में रमण करने वाले, अमृत अविनाशी जीवन से बंधे हुए अनेक जीवगण उत्पन्न हुए।

व्यापक अखण्ड प्रकृति से आठ तत्त्व उत्पन्न हुए, जो बहुत से लोकों की रक्षा करते हैं। अर्थात् उत्पादनोन्मुख प्रकृति से महत्, अहंकार, पञ्च तन्मात्र अर्थात् सूक्ष्म भूत वह व्यापक अखण्ड प्रकृति सात ग्रहों के रूप में इन ग्रहों को प्राप्त हुई। उसने सूर्य को इन सातों से दूर फेंका। इनमें आठवाँ मार्तण्ड सूर्य है, उसको दूर ऊपर फेंका जो

उदित होता है। सातों पुत्रों के साथ वह अविनाशिनी शक्ति पूर्वकाल में आती है और तत्पश्चात् उत्पन्न होने तथा फिर मृत्यु के लिए तुझसे ही हे प्रकृते ! मृत जड़ तत्त्व के बने अण्ड वा जीवित देह उत्पन्न होते हैं।

अति लघूत्तरीय प्रश्न—

1- अदिति सूक्त ऋग्वेदीय दशम मण्डल का कौन सा सूक्त है?

2- अदिति सूक्त में किसे विश्व सृष्टि की मूर्ति के रूप में प्रतिपादित किया गया है?

3- किस प्रकृति से अग्नि और वायु की उत्पत्ति बताई गई है?

4- व्यापक अखण्ड प्रकृति से कितने तत्त्व उत्पन्न हुए?

5- दृढ पृथ्वी किस रूप से उत्पन्न हुई है?

2-3-2 विश्वकर्मा सूक्त—

विश्वकर्मा सूक्त ऋग्वेद के दशम मण्डल का 81वां तथा 82 वां सूक्त है। सूक्त में कहा गया है कि विश्वकर्मा ने समस्त जगत् को यज्ञीय हविष्य के रूप में अग्नि को समर्पित कर दिया। तदनन्तर विश्वकर्मा स्वयमेव अग्नि में प्रविष्ट हो गया। वही दृश्यादृश्य जगत् का निर्माणकर्त्ता था। अतः स्पष्ट हो जाता है कि विश्वकर्मा ने द्विविध शरीर धारण किया था। एक शरीर को अग्नि में याज्ञिक हवि के रूप समर्पित किया और दूसरे शरीर से जगत् की संरचना की। तृतीय मन्त्र में कहा गया है कि विश्वकर्मा की आँखें, मुख, बाहु तथा चरण चारों और है। अपनी भुजाओं तथा पदों के प्रेरण से वह आकाश तथा पृथ्वी को उत्पन्न करते है। 82वे सूक्त के प्रथम मन्त्र में कहा गया है कि शरीर के उत्पादयिता तथा अनुपम धीर विश्वकर्मा ने सर्वप्रथम जल को उत्पन्न किया तत्पश्चात जल में इधर-उधर चलने वाली द्यावापृथवी की रचना की। द्यावापृथवी के प्राचीन तथा अन्त्य प्रदेशों को विश्वकर्मा ने सुदृढ़ किया। द्वितीय मन्त्र में कहा गया है कि, विश्वकर्मा बृहत् हैं तथा वो सब जानते हैं तथा सब कुछ देखते हैं। 82वें सूक्त में विश्वकर्मा का सर्वोच्चशक्ति के रूप में वर्णन किया गया है। इस सूक्त के अनुसार विश्वकर्मा अपनी संकल्पात्मक बुद्धि के सामर्थ्य से समस्त जगत् को धारण करने वाला है। उस बुद्धिमान ने हिरण्यगर्भ को उत्पन्न किया और तदनन्तर पूर्व से उत्तर परिणाम को प्राप्त होते हुए द्यौ और पृथिवी को जन्म दिया। इन दोनों के जब पर्यन्त भाग, बाहर के सीमा भाग स्थिर हो गए तो पुनः उस बुद्धिमान ने द्यौ और पृथिवी का विस्तार किया अर्थात् उसमें अनेक विकृतियाँ की। सूक्त में विश्वकर्मा की स्तुति बड़े ही सुन्दर ढंग से प्रस्तुत की गई है। विश्वकर्मा को सृष्टि के संहारकर्त्ता और सृष्टि के स्रष्टा उभी रूपों में हमारे सम्मुख प्रस्तुत किया गया है। ब्राह्मण ग्रन्थों में विश्वकर्मा का तादात्म्य प्रजापति के साथ स्थापित किया गया है।

उपर्युक्त कथन से यह भी स्पष्ट होता है कि अन्य विकृतियों से पूर्व हिरण्यगर्भ की उत्पत्ति हुई और उस गर्भाण्ड से द्यौ और पृथिवी लोकों की उत्पत्ति होती है। इन दोनों लोकों को स्थिर करने के अनन्तर वह बुद्धिमान अन्य विकृतियाँ करके उन लोकों को विस्तृत करता है। लघूत्तरीय प्रश्न—

1- विश्वकर्मा के दो प्रकार के शरीर ने क्या कार्य किया ?

2- विश्वकर्मा ने सर्वथम किस को उत्पन्न किया ?

3- विश्वकर्मा सूक्त किस वेद के किस मण्डल का कौन सा सूक्त है।

4- ब्राह्मण ग्रन्थों में विश्वकर्मा का तादात्म्य किस के साथ स्थापित किया गया है।

5- विश्वकर्मा आकाश तथा पृथ्वी को कैसे उत्पन्न करते है।

2-3-3 पुरुष सूक्त —

पुरुष सूक्त ऋग्वेद के दशममण्डल का 90वॉं सूक्त है। इस सूक्त के ऋषि नारायण तथा देवता पुरुष है। इस सूक्त में 16 मन्त्रें के माध्यम से जगत की सृष्टि एवं सृष्ट का विकास का कारण विराटपुरुष बताया गया है। वैदिक ऋषि सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के सृष्टिक्रम को यज्ञ के रुप में स्वीकार करते हैं। उनके मतानुसार सूक्त में वर्णित विराट् पुरुष ही इस ब्रह्माण्ड रूपी यज्ञ में स्वयं को अर्पित करके अनेक रूपों में प्रकट होता है , तदनन्तर सृष्टि की उत्पत्ति प्रारम्भ होती है। पुरुष के भव्य स्वरूप का वर्णन सूक्त के प्रारम्भिक चार मन्त्रों में किया गया है। यहाँ मन्त्रों में बताया गया है। कि विराट् पुरुष परमेश्वर हजारों सिरों वाला, हजारों आँखो वाला और हजारों पैरों वाला है। वह भूमि के चारों और से व्याप्त करके दस अंगुल प्रमाण में ब्रह्माण्ड को पार करके स्थित है। अर्थात् वह परम पुरुष ब्रह्माण्ड को भीतर और बाहर से व्याप्त किए हुए है। यह सब कुछ दृश्यमान वर्तमान जगत् पुरुष ही है। जो कुछ हो चुका है, भूतकालीन और जो कुछ होगा अर्थात् भविष्यत् कालीन जगत् भी पुरुष ही है और वह पुरुष देवताओं का अथवा अमरत्व का स्वामी है। पुरुष अन्न अर्थात् प्राणियों के भोग्य पदार्थों के कारण बढ़ता है अर्थात् इस दृश्यमान जगत् रूप अवस्था को प्राप्त करता है। इतनी इसकी महिमा है अर्थात् भूत-भविष्यत् वर्तमान कालत्रयवर्ती यह समग्र जगत् इसकी महिमा मात्र है। सम्पूर्ण प्राणी अर्थात् यह समग्र जगत् इसका केवल पाद (चतुर्थांश) है। इसके तीन पाद अर्थात् तृतीयांश अविनाशी रुप से द्युलोक में अर्थात् स्वप्रकाश रुप में अवस्थित रहते हैं। संसार से ऊपर तीन पादों वाला यह विराट् पुरुष इस जगत् से ऊपर उठा हुआ है अर्थात् विश्व के गुण दोषों से रहित है। इसका एक पाद इस भौतिक जगत् के रुप में बार-बार होता है, अर्थात् सृष्टि की उत्पत्ति और प्रलय होते रहते हैं।

अग्रिम सूक्तों में सृष्टि प्रक्रिया का वर्णन करते हुए कहा गया है कि उसी आदि पुरुष महाविष्णु से विराट् हुआ। उस विराट् का अधिपुरुष वही है। वह अधिपुरुष उत्पन्न होकर अत्यन्त दीप्त प्रकाश वाला हुआ। उसने उत्पन्न होने के पश्चात् भूमि तथा शरीरादि उत्पन्न किये। उस पुरुष के शरीर में ही देवताओं ने हविष्य की भावना करके यज्ञ का विस्तार किया। उस यज्ञ में बसंत ऋतु घृत, ग्रीष्म ऋतु ईंधन और शरद ऋतु हवि हुई। उस सर्वहुत यज्ञ से प्रशस्त पोषक पदार्थ घृत आदि उत्पन्न हुआ। उस प्रजापति पुरुष ने वायु में उड़ने वाले पक्षी ग्राम में रहने वाले, वन में रहने वाले आदि पशुओं को उत्पन्न किया। उस सर्वहुत यज्ञ पुरुष से ऋग्वेद तथा सामवेद उत्पन्न हुए। उसी से छन्द उत्पन्न हुए , उसी से यजुर्वेद प्रकट हुआ। उसी यज्ञ पुरुष द्वारा घोड़े उत्पन्न हुए। जिनके ऊपर-नीचे दोनों ओर दांत हैं, ऐसे गर्दभ आदि पशु भी उत्पन्न हुए। उसी से गौएं तथा भेड़-बकरियां भी उत्पन्न हुईं। सृष्टि के पूर्व प्रकट हुए उस यज्ञ साधनभूत पुरुष को कुशाओं द्वारा प्रोक्षण करके उसी पुरुष के द्वारा देवता, साध्यगण तथा ऋषिगण आदि ने उस मानस यज्ञ का यजन किया। इस पुरुष के मुख से ब्राह्मण हुए, बाहुओं से

क्षत्रिय हुए। इस पुरुष के जो दोनों ऊरु हैं उनसे वैश्य और पैरों से शूद्र प्रकट हुए। उनके मन से चन्द्रमा हुए, चक्षु से सूर्य हुए, कानों से वायु तथा प्राण हुए और मुख से अग्निदेव हुए। उस यज्ञ पुरुष की नाभि से अन्तरिक्ष लोक उत्पन्न हुआ, शिर से स्वर्ग प्रकट हुआ, पैरों से पृथ्वी और कानों से दिशाएं उत्पन्न हुईं। इसी प्रकार उस पुरुष में ही ये सब लोक कल्पित हुए। जिस पुरुष पशु का यज्ञ में बंधन करके देवताओं ने यज्ञ किया, उस यज्ञ में सात छंद इसकी 7 परिधियां बनाई गई और इक्कीस (12 महीने, पांच ऋतुएं, एक आदित्य तथा तीन लोक) समिधाएं बनीं। देवगण यज्ञ के द्वारा उस यज्ञ पुरुष का यजन करते हैं। इन धर्मों का अस्तित्व प्रथम कल्पों में भी था। जिस स्वर्ग में पूर्व के साध्यगण देवगण रहते थे, उसी में उनके उपासक भी उपस्थित होते हैं।

रिक्त स्थान की पूर्ति —

1- पुरुष सूक्त के ऋषि तथा देवता--------------------- पुरुष है।

2- पुरुष विराट् परमेश्वर हजारों -------- वाला, हजारों -------वाला और हजारों-------------वाला है।

3- विराट पुरुष तीन पाद अर्थात् तृतीयांश ---------रुप से द्युलोक में अर्थात् स्वप्रकाश रुप में अवस्थित रहते हैं।

4- यज्ञ में बसंत ऋतु घृत, ग्रीष्म ऋतु ईंधन और--------------------------------- हवि हुई।

5- उनके मन से --------------हुए, चक्षु से सूर्य हुए, कानों से वायु तथा प्राण हुए आऔर मुख से अग्निदेव हुए।

2-3-4 प्रजापति सूक्त—

प्रजापति सूक्त ऋग्वेद के दशममण्डल का 121वां सूक्त है। सूक्त के ऋषि हिरण्यगर्भ प्रजापति है। सी भी मान्यता है। कि इस सूक्त का ऋषि प्रजापति का पुत्र हिरण्यगर्भ है। सूक्त के देवता प्रजापति है। जिन्हें सम्पूर्ण सूक्त में क संज्ञा से व्यहृत किया गया है। प्रजापति का शाब्दिक अर्थ- प्रजाओं का स्वामी होता है। सृष्टिकर्ता देव के रुप में प्रजा का अर्थ सम्पूर्ण तथा पति का अर्थ सृष्टा होगा। अतः प्रजापति में सृष्टि तथा सृष्टा दोनों ही अन्तर्भूत हैं। अतएव सूक्त की अन्तिम ऋचा में भी प्रजापति नाम उद्धृत है।

हिरण्यगर्भ सूक्त में दश ऋचाएँ हैं। हिरण्यगर्भ शब्द सूक्त की प्रथम ऋचा का प्रथम पद है। आचार्य सायण ‘हिरण्यगर्भ’ पद का अर्थ प्रथत अर्थ किया है - ‘सुवर्णमय अण्डे को गर्भ में धारण करने वाला प्रजापति’ द्वितीय अर्थ किया है - ‘जिसके उदर में स्वर्णमय अण्डा गर्भ के समान स्थित है_ वह सूत्रात्मा हिरण्यगर्भ कहा जाता है।’

सूक्त की नौ ऋचाओं के चतुर्थ चरण में ‘कस्मै देवाय हविषा विधेम’ यह वाक्य है। अर्थात् सुख स्वरुप अथवा ‘क’ संज्ञक गुण सम्पन्न उस हिरण्यगर्भ का हम हवि द्वारा पूजन करते हैं। आचार्य सायण ने कस्मै शब्द के अनेक अर्थ इस प्रकार किए हैं - यथा- अनिति स्वरुप होने से प्रजापति के लिए, सृष्टि के लिए कामना से युत्तफ़, इच्छार्थ ‘कम् धातु से ‘ड’ प्रत्यय के योग से निष्पन्न सुख अर्थ वाला। अतः सुखस्वरुप होने से प्रजापति ‘क’ है।

सूक्त के प्रत्येक मन्त्र के प्रथम तीन चरणों में उस देवता या ऋषि के गुणों तथा उसके द्वारा किया गये कार्यों का वर्णन किया गया है यथा- सृष्टि उत्पत्ति से पूर्व वह हिरण्यगर्भ उत्पन्न हुआ, उत्पन्न होते ही सभी प्राणियों का एकमात्र स्वामी हुआ, उसने पृथिवी और चुलोक को धारण किया। जो हिरण्यगर्भ आत्माओं को बल का देने वाला है, अमृतत्व और गृत्युत्व छाया के समान जिसके वशवर्ती हैं जो अपनी महिमा से अकेले ही श्वास लेते हुए तथा पलक झपकाते हुए विश्व का स्वामी हो गया, जो इस दो पैरों वाले मनुष्य तथा चार पैरों वाले गाय, घोड़ा आदि पशुओं का स्वामी हुआ। जिसकी महिमा से ये पर्वत हैं, नदियों के साथ समुद्रों को, जिसका कहते हैं, ये प्रधान दिशायें (पूर्व आदि चार दिशायें) और बाहु के समान कोण दिशायें (आग्नेय आदि चार कोण दिशायें) जिसकी महिमा को कहते हैं, हिरण्यगर्भ प्रजापति ने ही द्युलोक को ऊपर उठाया हुआ है और पृथिवी को स्थिर किया है, जिसने स्वर्ग लोक को ऊपर थामा हुआ है और सूर्य को ऊपर अन्तरिक्ष में थामा है, जो आकाश में जलों को बनाने वाला है। संसार की रक्षा करने के हेतु से निर्माण करने के लिए स्थिर किये गये और प्रकाशमान होते हुये द्युलोक और पृथिवी लोक को वह अपने मन से देखता है, उस प्रजापति को आधार बना कर सूर्य उदय होकर प्रकाशित होता है। जब प्रजापति रुप गर्भ को धारण करती हुई तथा अग्नि को उत्पन्न करती हुई विशाल जलराशि विश्व में आई, तब देवताओं का एक प्राणभूत वायु उत्पन्न हुआ। वह सृष्टि - उत्पत्ति रुप यज्ञ को उत्पन्न करने वाले और सृष्टि -उत्पत्ति में दक्ष प्रजापति को धारण करने वाले जलों को अपनी महिमा से देखता है, और वही सभी देवताओं के मध्य में उनका स्वामी अद्वितीय देव है। वह पृथिवी को उत्पन्न करने वाला है और सत्य नियमों को धारण करते हुये उसने द्युलोक को उत्पन्न किया, उसने आनन्द प्रदान करने वाले महान् जलों को उत्पन्न किया। उसके अतिरिक्त अन्य कोई भी इन विद्यमान सम्पूर्ण उत्पन्न हुए पदार्थों को और उन सारे भूतकालीन पदार्थों को व्याप्त करने वाला नहीं है। क संज्ञक गुण सम्पन्न उस हिरण्यगर्भ का हम हवि द्वारा पूजन करते हैं।

बहुविकल्पीय प्रश्न -

1- प्रजापति सूक्त ऋग्वेद के दशममण्डल का है -

(क) 128वां सूक्त (ख) 121वां सूक्त

(ग) 125 वां सूक्त (घ) 122वां सूक्त

2- सूक्त की अन्तिम ऋचा में नाम उद्धृत है -

(क) प्रजापति (ख) सूर्य

(ग) इन्द्र (घ) नारद

3- सृष्टि उत्पत्ति से पूर्व उत्पन्न हुआ -

(क) प्रजापति (ख) 121वां सूक्त

(ग) इन्द्र (घ) हिरण्यगर्भ

4- आचार्य सायण ने 'हिरण्यगर्भ' पद का अर्थ किया है -

(क) 'सुवर्णमय अण्डे को सिर पर धारण करने वाला

(ख) 'सुवर्णमय अण्डे को गर्भ में धारण करने वाला

(ग) ब्रह्म को धारण करने वाला

(घ) सोने के अण्डे को वायु में धारण करने वाला

5- किस को आधार बना कर सूर्य उदय होकर प्रकाशित होता है।

(क) प्रजापति (ख) सूर्य

(ग) इन्द्र (घ) हिरण्यगर्भ

2-3-5 नासदीय सूक्त —

ऋग्वेद के मण्डल 10 सूक्त 129 को नासदीय-सूक्त कहते हैं। नासदीय सूक्त के रचयिता ऋषि प्रजापति परमेष्ठी हैं। इस सूक्त के देवता भाववृत्त है। यह सूक्त मुख्य रुप से इस तथ्य पर आधारित है कि ब्रह्मांड की रचना कैसे हुई। इस सूक्त में सृष्टि की उत्पत्ति होने से पूर्व आकाश की अन्धकाररुप स्थिति का वर्णन है। परमात्मा के सम्मुख सृष्टि का उपादान कारण द्रव्यभाव से वर्तमान था, आत्माएं भी साधारण और मुत्तफ़ अवस्था की बहुत थीं आदि ऐसे अनेक विषयों का वर्णन इस सूक्त में है। नासदीय का अर्थ है कि सृष्टि की रचना से पूर्व जगत् की स्थिति शून्यमय नितान्त अभावरुप नहीं थी, कुछ अवश्य था परन्तु जो था वह अप्रकट व प्रकाशित था। सूक्त में कुल 7 मन्त्र हैं। मन्त्रें में कहा गया है कि उस समय अर्थात् सृष्टि की उत्पत्ति से पहले प्रलय दशा में असत् अर्थात् अभावात्मक तत्त्व नहीं था। सत = भाव तत्त्व भी नहीं था, रजः = स्वर्गलोक मृत्युलोक और पाताल लोक नहीं थे, अन्तरिक्ष नहीं था और उससे परे जो कुछ है वह भी नहीं था, वह आवरण करने वाला तत्त्व कहाँ था और किसके संरक्षण में था। उस समय कठिनाई से प्रवेश करने योग्य गहरा क्या था, अर्थात् वे सब नहीं थे। उस प्रलय कालिक समय में मृत्यु नहीं थी और अमृत = मृत्यु का अभाव भी नहीं था। रात्री और दिन का ज्ञान भी नहीं था उस समय वह ब्रह्म तत्व ही केवल प्राण युत्तफ़, क्रिया से शून्य और माया के साथ जुड़ा हुआ एक रुप में विद्यमान था, उस माया सहित ब्रह्म से कुछ भी नहीं था और उस से परे भी कुछ नहीं था। सृष्टिके उत्पन्न होनेसे पहले अर्थात् प्रलय अवस्था में यह जगत् अन्धकार से आच्छादित था और यह जगत् तमस रुप मूल कारण में विद्यमान था, अज्ञात यह सम्पूर्ण जगत् जल रुप में था। अर्थात् उस समय कार्य और कारण दोंनों मिले हुए थे यह जगत् है वह व्यापक एवं निम्न स्तरीय अभाव रुप अज्ञान से आच्छादित था इसीलिए कारण के साथ कार्य एकरुप होकर यह जगत् ईश्वर के संकल्प और तप की महिमा से उत्पन्न हुआ। सृष्टि की उत्पत्ति होने के समय सब से पहले काम अर्थात् सृष्टि रचना करने की इच्छा शत्तिफ़ उत्पन्न हुयी, जो परमेश्वर के मन मे सबसे पहला बीज रुप कारण हुआ। भौतिक रुप से विद्यमान जगत् के बन्धन-कामरुप कारण को क्रान्तदर्शी ऋषियो ने अपने ज्ञान द्वारा भाव से विलक्षण अभाव मे खोज डाला। अविद्या, काम-संकल्प और सृष्टि बीज-कारण को सूर्य-किरणों के समान बहुत व्यापकता उनमें विद्यमान थी। इस प्रकार उत्पन्न जगत् में कुछ पदार्थ बीज रुप कर्म को धारण करने वाले जीव रुप में थे और कुछ तत्त्व आकाशादि महान रुप में प्रकृति रुप थे। कौन

इस बात को वास्तविक रुप से जानता है और कौन इस लोक में सृष्टि के उत्पन्न होने के विवरण को बता सकता है कि यह विविध प्रकार की सृष्टि किस उपादान कारण से और किस निमित्त कारण से सब ओर से उत्पन्न हुयी। देवता भी इस विविध प्रकार की सृष्टि उत्पन्न होने से बाद के हैं अतः ये देवगण भी अपने से पहले की बात के विषय में नहीं बता सकते इसलिए कौन मनुष्य जानता है जिस कारण यह सारा संसार उत्पन्न हुआ यह विविध प्रकार की सृष्टि जिस प्रकार के उपादान और निमित्त कारण से उत्पन्न हुयी इस का मुख्या कारण है ईश्वर के द्वारा इसे धारण करना। इसके अतिरित्तफ़ अन्य कोई धारण नहीं कर सकता। इस सृष्टि का जो स्वामी ईश्वर है, अपने प्रकाश या आनंद स्वरुप में प्रतिष्ठित है। वह आनंद स्वरुप परमात्मा ही इस विषय को जानता है उस के अतिरित्तफ़ (इस सृष्टि उत्पत्ति तत्व को) कोई नहीं जानता है। इस सूक्त मे कहा गया है कि यथा- सत-असत, चेतन तत्त्व जो अपनी धारण शत्तिफ़ द्वारा उस अवस्था में भी स्थित था, काम-ईक्षण जिसके द्वारा विविध प्रकार की सृष्टि प्रकट हुई है। अनादि पदार्थ जो सर्वप्रथम उत्पन्न हुए एवं इसके पश्चात् भोत्तफ़ा जीव आए एवं वही चेतन तत्त्व इस सृष्टि को उत्पन्न करके स्वयं ही इसका धारक बन गया । नासदीय सूक्त सत् तथा असत् दोनों सत्ताओं का निषेध करता है। सत् से अभिप्राय है कि यह नामरुपात्मक जगत् अपने अस्तित्व में नहीं था अथवा अस्तित्व से युत्तफ़ अर्थात् प्रत्यक्ष रुप में वर्णनीय नहीं था और असत् से अभिप्राय है कि यह नामरुपात्नक जगत् तो नहीं था, किन्तु यह नहीं कहा जा सकता के कुछ भी नहीं था, अगर कुछ नहीं था तो पुनः इस सृष्टि की रचना कैसे सम्भव हुई। कथन का भाव है कि मूलतत्त्व - परब्रह्म जिसका कोई प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं है, किन्तु वह उस समय भी विद्यमान था। असत् जगत् के मूलकारण का वाचक है और मूलकारण तत्त्व एकमात्र परब्रह्म है तथा सत् कार्यरुप जगत् का वाचक है।

सत्य/असत्य प्रश्न

1- ऋग्वेद के मण्डल 10 सूक्त 129 को नासदीय-सूक्त कहते हैं। सत्य/असत्य

2- इस सूक्त में सृष्टि की उत्पत्ति होने से पूर्व पृथ्वी की अन्धकाररुप स्थिति का वर्णन है। सत्य/असत्य

3- नासदीय का अर्थ है कि सृष्टि की रचना से पूर्व जगत् की स्थिति शून्यमय नितान्त अभावरुप नहीं थी, कुछ अवश्य था परन्तु जो था वह अप्रकट व प्रकाशित था। सत्य/असत्य

4- नासदीय सूक्त सत् तथा असत् दोनों सत्ताओं को स्वीकार करता है। सत्य/असत्य

5- असत् से अभिप्राय है कि यह नामरुपात्नक जगत् तो नहीं था। सत्य/असत्य

1-3-6 ऋत्त सूक्त—

ऋत्त सूक्त ऋग्वेद के दशम मण्डल का 190वॉं सूक्त है। ऋग्वेदीय दशम मण्डल के लघु सूत्तफ़ों में ऋत सूक्त का विशिष्ट स्थान है। इस सूक्त में सृष्टि-प्रक्रिया को बड़ी सूक्ष्मता के साथ प्रस्तुत किया गया है आचार्य यास्क के अनुसार ऋत का अर्थ उदक, सत्य, यज्ञ एवं रेतत् है। सूक्त का ऋषि मधुच्छन्दर का पुत्र अघमर्षण है और इसी कारण सूक्त को अघमर्षण सूक्त भी कहा गया है। और सूक्त का देवता भाववृत्तम है। इस सूक्त के तीन मन्त्र हैं

और तीनों मन्त्र अत्यन्त लोकप्रिय हैं। सूक्त में सृष्टि-उत्पत्ति का वर्णन सरल एवं स्पष्ट शब्दों में व्यत्तफ़ किया गया है।

सूक्त के प्रथम मन्त्र में कहा गया है कि तप से ऋत अर्थात् प्राकृतिक प्रवाह अर्थात् द्रव्य और सत्य अर्थात् नित्य तत्त्व सत्ता की उत्पत्ति हुई। तदनन्तर ऋत और सत्य से रात्रि उत्पन्न होती है। उस तप से यह जल से युक्त महान् समुद्र और सूक्ष्म जलों से व्याप्त आकाश प्रकट हुआ । अर्थात् उस से कणों के सागर में गति को धारण करने वाले मूल तत्त्व के विस्तार का उदय हुआ। मंत्र का भावार्थ है कि उस समय काल की शुन्य स्थिति थी, तप ने प्राकृतिक प्रवाह और सत्य स्वरुप प्रकृति को चारों ओर से प्रज्वलित किया। उसी से प्रलय रुपी रात्रि का अविर्भाव हुआ। अर्थात् प्रकृति के कणों में संक्षोभ हुआ। सूक्त के द्वितीय मन्त्र में जल से आपूरित समुद्र की उत्पत्ति का वर्णन है और इस अर्णय समुद्ध अर्थात् जलापूरित समुद्र से संवत्सर प्रकट होता है। संवत्सर के प्रकट होने के पश्चात् अहोरात्र की सृष्टि हुई अर्थात् दिन और रात्रि प्रकट हुए। संवत्सर रुप ईश्वर दिन तथा रात्रि को बनाने वाले हैं। निमेषादि से युक्त वह काल समस्त संसार के स्वामी हैं। सूक्त में रात्रि की उत्पत्ति दो बार बताई गई है- प्रथम गन्त्र में ऋत और सत्य से केवल रात्रि की उत्पत्ति का वर्णन है तथा द्वितीय मन्त्र में रात्रि के साथ-साथ दिन की उत्पत्ति का भी वर्णन प्राप्त होता है। तृतीय मंत्र में उल्लेख है कि उस कालरुप ईश्वर द्वारा सूर्य, चन्द्रमा द्युलोक, पृथ्वी, अन्तरिक्ष तथा स्वर्गलोक अर्थात् प्रकाश्य तथा अप्रकाश्य समस्त पदार्थों को पूर्व काल के अनुसार बनाया। इस प्रकार ऋत सूक्त में सृष्टि प्रकिया का कम शब्दों में अतीव सारगर्भित वर्णन किया गया है।

2-3-7 कालसूक्त —

अथर्ववेद के उन्नीसवे अध्याय का 53वां तथा 54वां सूक्त काल सूक्त है। सूक्त के देवता काल हैं। इस सूक्त के ऋषि ने काल को परब्रह्म माना है। सूक्त के प्रथम मन्त्र में काल के स्वरुप का वर्णन करते हुए कहा है कि -

कालो अश्वो वहति सप्तरश्मिः सहस्राक्षो अजरो भूरिरेताः।

तमारोहन्ति कवयो विपश्चितस्तस्य चका भुवनानि विश्वा।।

वह काल रुपी अश्व शुक्ल, नील पीत, रत्तफ़, हरित, कपिश, चित्र वर्ण सात प्रकार की किरणों वाला सूर्य के समान प्रकाशमान है (अर्थात् सूर्य की भी यह सात किरणें सात घोड़े हैं), सहस्रं नेत्रें वाला है तथा कभी वृद्धावस्था को प्राप्त न होने वाला है। द्वितीय मन्त्र में ही काल को सात पहियों वाला अर्थात् तीन काल (भूत, भविष्य, वर्तमान) और चार दिशाओं (पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण) वाला कहा गया है। कहा है कि वह ही प्रथम दिव्य पदार्थ है जिससे सभी सत्ताएँ उत्पन्न होती हैं। अर्थात् सब भुवनों को प्रकट करता है। काल ने ही स्वयं आकाश और पृथिवी को उत्पन्न किया और परमेश्वर के नियम से भूत और भविष्य भी उस काल के ही भीतर है। यह जगत् उस काल से ही उत्पन्न होकर प्रतिष्ठित है। बड़े ही रहस्यमय ढंग से काल की महिमा को सूर्य और पृथिवी के छिपने और छुपाने के उदाहरण द्वारा समझाया गया है कि काल के प्रभाव से ही परमात्मा प्रलय के पीछे सब पदार्थों को और नियमों को उत्पन्न करता है और प्रलय के समय में लय कर देता है जिस

प्रकार सूर्य जब पृथिवी के सन्मुख आता है तो दिखाई देता है, किन्तु जब पृथिवी की आड़ में होता है तो अदृश्य हो जाता है अर्थात् छिप जाता है। संसार का उपकार करने के लिए अर्थात् जगत् सृष्टि के लिए वायु, पृथिवी, आकाश आदि परमाणु काल के कारण ही संयोग पाकर साकार होते हैं अर्थात् यही परमाणु सृष्टि उत्पत्ति के कारण हैं और इनका संयोग काल के द्वारा ही सम्भव है। काल सूक्त के 53वें सूक्त के चतुर्थ मन्त्र और 54वें सूक्त के तृतीय मन्त्र में काल को सृष्टि का पिता और पुत्र कहा है, जो पिता के समान नित्य वर्तमान काल होने से पहिले और पुत्र के समान पीछे भी विद्यमान रहता है। अर्थात् काल रुपी पुत्र द्वारा ही बीता हुआ भूतकाल और होने वाला भविष्यत्काल पहिले उत्पन्न किया। काल के ही प्रभाव से सब आगे- पीछे की सृष्टि और वेदों का प्रादुर्भाव हुआ। इस प्रकार काल की गति बड़ी ही कल्पनातीत है। अतः सूक्त में बड़े ही रहस्यमयढंग से काल की तुलना सूर्य से अर्थात् सूर्य की सात किरणों-रुपी घोड़े से की गई है। अन्ततः काल ही चराचर प्राणियों को उत्पन्न करने वाला है और भूत, भविष्य, वर्तमान तीन प्रकार के कालों का आधार है और पृथिवी, स्वर्गादि विविध लोकों को सृजन करने वाला है।

2-4 सारांश—

भारतीय चिन्तन परम्परा में वेद सभी विद्याओं के मूलाणर है। वैदिक वाङ्मय में सृष्ट्युत्पत्ति के विषय में सर्वप्रथम वर्णन ऋग्वेद में आया है। ऋग्वेद के अदिति सूत्तफ़, विश्वकर्मा सूक्त, पुरुष सूक्त, प्रजापति सूक्त, नासदीस सूक्त, ऋत्त सूक्त तथा अथर्ववेद के कालसूक्त आदि सूक्तों में प्राप्त होता है। ऋग्वेद के अदिति सूक्त में सर्वप्रथम सृष्ट्युिक्पत्ति का वर्णन आया है। अदिति सूक्त में अदिति शब्द का अर्थ है- पूर्णता, रचनात्मकता, जो बन्धन रहित हो, तथा जो सीमा से रहित हो। इस सूक्त में अदिति को विश्व सृष्टि की मूर्ति के रुप में प्रतिपादित किया गया है। मन्त्र में कहा गया है कि अदिति ही द्यौ है, अदिति अन्तरिक्ष है, अदिति ही सब भूतों की माता और पिता है। वही पुत्र है, पञ्चजन भूत और भविष्य सब अदिति ही अदिति है। विश्वकर्मा सूक्त के अनुसार विश्वकर्मा ने समस्त जगत् को यज्ञीय हविष्य के रुप में अग्नि को समर्पित कर दिया। तदनन्तर विश्वकर्मा स्वयमेव अग्नि में प्रविष्ट हो गया। विश्वकर्मा ने सर्वथम जल को उत्पन्न किया तत्पश्चात जल में इधर-उधर चलने वाली द्यावापृथवी की रचना की। पुरुष सूक्त में वर्णन आया है कि वर्णित विराट् पुरुष ही इस ब्रह्माण्ड रुपी यज्ञ में स्वयं को अर्पित करके अनेक रुपों में प्रकट होता है और तदनन्तर सृष्टि की उत्पत्ति प्रारम्भ होती है। पुरुष के भव्य स्वरुप का वर्णन सूक्त के प्रारम्भिक चार मन्त्रें में किया गया है। सूक्तों में सृष्टि प्रक्रिया का वर्णन करते हुए कहा गया है कि उसी आदि पुरुष महाविष्णु से विराट् हुआ। उस विराट् का अधिपुरुष वही है। प्रजापति सूक्त सूक्त का ऋषि प्रजापति का पुत्र हिरण्यगर्भ है जिसका अर्थ है ‘सुवर्णमय अण्डे को गर्भ में धारण करने वाला प्रजापति’ हिरण्यगर्भ सूक्त में दश ऋचाएँ हैं। सृष्टि उत्पत्ति से पूर्व वह हिरण्यगर्भ उत्पन्न हुआ, उत्पन्न होते ही सभी प्राणियों का एकमात्र स्वामी हुआ, उसने पृथिवी और द्युलोक को धारण किया। नासदीय सूक्त के अनुसार सृष्टि की उत्पत्ति होने से पूर्व आकाश की अन्धकाररूप स्थिति का वर्णन है। सृष्टि की उत्पत्ति से पहले प्रलय दशा में असत् अर्थात् अभावात्मक तत्त्व नहीं था। सत् भी नहीं था, रज नहीं था तम

नहीं था स्वर्गलोक मृत्युलोक और पाताल लोक नहीं थे, अन्तरिक्ष नहीं था और उससे परे जो कुछ है वह भी नहीं था, वह आवरण करने वाला तत्त्व कहाँ था और किसके संरक्षण में था। उस समय कठिनाई से प्रवेश करने योग्य गहरा क्या था, अर्थात् वे सब नहीं थे। ऋत सूक्त के अनुसार तप से ऋत अर्थात् प्राकृतिक प्रवाह अर्थात् द्रव्य और सत्य अर्थात् नित्य तत्त्व सत्ता की उत्पत्ति हुई। तदनन्तर ऋत और सत्य से रात्रि उत्पन्न होती है। तप से यह जल से युक्त महान् समुद्र और सूक्ष्म जलों से व्याप्त आकाश प्रकट हुआ। जलापूरित समुद्र से संवत्सर प्रकट होता है। संवत्सर के प्रकट होने के पश्चात् अहोरात्र की सृष्टि हुई अर्थात् दिन और रात्रि प्रकट हुए। उस कालरुप ईश्वर द्वारा सूर्य, चन्द्रमा द्युलोक, पृथ्वी, अन्तरिक्ष तथा स्वर्गलोक अर्थात् प्रकाश्य तथा अप्रकाश्य समस्त पदार्थों को पूर्व काल के अनुसार बनाया। इस प्रकार ऋत सूक्त में सृष्टि प्रकिया का कम शब्दों में अतीव सारगर्भित वर्णन किया गया है। अथर्ववेद के काल सूक्त में भी सृष्टि की उत्पत्ति का वर्णन किया गया है। सूक्त के प्रथम मन्त्र में काल के स्वरूप का वर्णन करते हैं जो बड़े ही रहस्यमय ढंग से काल की तुलना सूर्य से अर्थात् सूर्य की सात किरणों-रुपी घोड़ों से की गई है। सूक्त के अनुसार अन्ततः काल ही चराचर प्राणियों को उत्पन्न करने वाला है और भूत, भविष्य, वर्तमान तीन प्रकार के कालों का आधार है और पृथिवी, स्वर्गादि विविध लोकों को सृजन करने वाला है।

2-5 पारिभाषिक शब्दावली—

अविनाशी - जिसका कभी अन्त ना हो

हविष्य - यज्ञ के समय अग्नि में डाले जाने वाले पदार्थों का मिश्रण।

संहारकर्त्ता - नाश करने वाला

गर्भाण्ड - गर्भ में स्थित अण्डा

परिधियां - सीमाएं

समिधाएं - यज्ञ के लिए जलाई जाने वाली लकड़ी

द्युलोक - आकाश

अहोरात्र - दिन तथा रात्रि

2-6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर -

अति लघूत्तरीय प्रश्न -

1- 72वाँ

2- अदिति को

3- अण्ड

4- आठ

5- अग्नि

लघूत्तरीय प्रश्न—

1- विश्वकर्मा ने द्विविध शरीर धारण किया था। एक शरीर को अग्नि में याज्ञिक हवि के रूप में समर्पित किया और दूसरे शरीर से जगत् की संरचना की।

2- विश्वकर्मा ने सर्वथम जल को उत्पन्न किया

3- विश्वकर्मा सूक्त ऋग्वेद के दशम मण्डल का 81वां तथा 82 वां सूक्त है।

4- ग्रन्थों में विश्वकर्मा का तादात्म्य प्रजापति के साथ स्थापित किया गया है।

5- विश्वकर्मा अपनी भुजाओं तथा पदों के प्रेरण से आकाश तथा पृथ्वी को उत्पन्न करते हैं।

रिक्त स्थान की पूर्ति —

1- नारायण

2- सिरों, आँखों, पैरों

3- अविनाशी

4- शरद ऋतु

5- चन्द्रमा

बहुविकल्पीय प्रश्न —

1- (ख)

2. (क)

3. (घ)

4. (ख)

5. (क)

सत्य/असत्य प्रश्न

1- सत्य

2- असत्य

3- सत्य

4- असत्य

5- सत्य

2-7 सन्दर्भ ग्रन्थों की सूची—

1- ऋग्वेद, सयणाचार्यकृत-भाष्यसंवलिता, अनुवादक पण्डित रामगोविन्द त्रिवेदी, चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी, 2016

2- अथर्ववेद, सयणाचार्यकृत-भाष्यसंवलिता, अनुवादक पण्डित रामगोविन्द त्रिवेदी, चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी, 2016

3- उपनिषत्संचयम्, अनुवादक आचार्य केशवलाल वा- शास्त्री, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान दिल्ली, 2015

4- शतपथ ब्राह्मण, सायणाचार्यकृत-भाष्य, नाग प्रकाशन ज्वाहरनगर दिल्ली, 1990

5- ब्रह्माण्ड और सौर परिवार, प्रो- देवी प्रसाद त्रिपाठी, परिक्रमा प्रकाशन दिल्ली, 2006

6- सृष्ट्युत्पत्ति की वैदिक परिकल्पना, विष्णुकान्त शर्मा, प्रतिभा प्रकाशन दिल्ली, 2008

1-8 साहायक उपयोगी सामग्री -

1- सृष्टि उत्पत्ति - रामनाथ गुप्ता, मीरा प्रकाशन, 2019

2- वेद-विज्ञान चिन्तन, प्रो- बृजबिहारी चौबे, कात्यायन वैदिक साहित्य प्रकाशन, होशियारपुर, 2005

3- वेद व विज्ञान, स्वामी प्रत्यगात्मानन्द स्वामी, अनुवादिका डा- उर्मिला शर्मा, विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी, 2012

2.8 निबन्धात्मक प्रश्न—

1- हिरण्यगर्भ सूक्त के अनुसार सृष्टि की अवधारणा का वर्णन विस्तार से कीजिए।

2- विश्वकर्मा सूक्त सृष्टि की अवधारणा की व्याख्या कीजिए।

3- पुरुष सूक्त में वर्णित सृष्टि की अवधारणा का विस्तृत वर्णन कीजिए।

4- नासदीय सूक्त के अनुसार सृष्टि की अवधारणा को विस्तार पूर्वक स्पष्ट कीजिए।

5- प्रजापति सूक्त के अनुसार सृष्टि की अवधारणा की व्याख्या कीजिए।

इकाई 3- सृष्टियोत्पत्ति में हिरण्यगर्भ की अवधारणा

इकाई की रूपरेखा -

3-1 प्रस्तावना

3-2 उद्देश्य

3-3 मुख्य भाग

3-3-1 उपखण्ड एक - हिरण्यगर्भ का स्वरूप

3-3-2 उपखण्ड दो - वेदों में हिरण्यगर्भ की अवधारणा

3-3-3 उपखण्ड तीन - ब्राह्मणग्रन्थों तथा उपनिषदों में हिरण्यगर्भ की अवधारणा

3-3-4 उपखण्ड चार पुराणों में हिरण्यगर्भ की अवधारणा

3-3-5 उपखण्ड पांच - अन्य वैदिक ग्रन्थों में हिरण्यगर्भ की अवधारणा

3-4 सारांश

3-5 पारिभाषिक शब्दावली

3-6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

3-7 सन्दर्भ ग्रन्थों की सूची

3-8 साहायक उपयोगी सामग्री

3-9 निबन्धात्मक प्रश्न

3-1 प्रस्तावना—

इस सृष्टि की उत्पति क्यों और कैसे हुई ? जगत् की स्थिति उसके विनाश आदि से संबंधित प्रश्नों पर व्याख्या करना इस जगत् या सृष्टि प्रक्रिया का उद्दे"य है। ऋग्वेद वर्णित नासदीय सूक्त, पुरूष सूक्त, प्रजापति सूक्त, हिरण्यगर्भ सूक्त इत्यादि सूक्तों में सृष्टि प्रक्रिया के विधान का वर्णन विस्तार से किया गया है। उपनिषद भी सृष्टि प्रक्रिया का वर्णन करते है। उपनिषदों में वर्णित प्रक्रिया से तो दर्शनों में वर्णित सृष्टि प्रक्रिया प्रभावित भी है। वृहदारण्यक उपनिषद् में बह्म ही सृष्टि का कर्ता माना गया है। इस प्रकार वेदान्त भी उपनिषदों से प्रभावित है।

वेदों में सृष्ट्युत्पत्ति के सन्दर्भ में हिरण्यगर्भ की संकल्पना की गई है। ऋग्वेद के दशम मण्डल के 121 वे सूक्त का नाम हिरण्यगर्भ सूक्त है जिसके में 10 मन्त्रें के द्वारा हिरण्यगर्भ की अवधारणा को विस्तार से प्रस्तुत किया गया है। इसके अतिरिक्त ऋग्वेद के अनेक सूक्तों में हिरण्यगर्भ से सृष्ट्युत्पत्ति का वर्णन आया है। पुराण, ज्योतिषशास्त्र, स्मृतिग्रन्थादि वेदोत्तर वाङ्मय में भी हिरण्यगर्भ से सृष्टि की उत्पत्ति बताई गई है। इस इकाई में आप वेदो, पुराणों, ज्यातीषीय ग्रन्थों तथा स्मृतिग्रन्थों में हिरण्यगर्भ की संकल्पना के विषय में विस्तार से ज्ञान प्राप्त करेंगे।

3-2 उद्देश्य—

1- इस इकाई को पढ़ने के बाद छात्र हिरण्यगर्भ शब्द को परिभाषित कर सकेंगे।

2- वेदों के अनुसार सृष्ट्युत्पत्ति के सन्दर्भ में हिरण्यगर्भ की अवधारणा का वर्णन कर सकेंगे।

3- ब्राह्मणग्रन्थों तथा उपनिषदों के अनुसार हिरण्यगर्भ की अवधारणा की व्याख्या करने में समर्थ होगे।

4- अन्य गन्थों में वर्णित हिरण्यगर्भ की अवधारणा के विषय में ज्ञान प्राप्त करेंगे।

5- सृष्ट्युत्पत्ति में हिरण्यगर्भ की भूमिका बताने में समर्थ होंगे।

3-3-1 हिरण्यगर्भ का स्वरूप —

हिरण्यगर्भ संस्कृत भाषा से लिया गया है जिसका अर्थ है स्वर्ण गर्भ या स्वर्ण अंड। अमरकोश के अनुसार, हिरण्यगर्भ का तात्पर्य है-‘ज्योतिर्मय पिण्ड’ जिस गर्भ में वह विद्यमान है। काव्यात्मक रूप से इसे सार्वभौमिक बीजाणु के रूप में भी अनुवादित किया गया है। वैदिक दर्शन के अनुसार यह वह स्रोत है जिसके द्वारा ब्रह्मांड की उत्पत्ति हुई।

भारतीय चिन्तनपरम्परा में वेद समस्त प्रकार के ज्ञान विज्ञान के आदि स्रोत हैं। ज्ञानविज्ञान का जो भी स्वरूप वर्तमान में उपलब्ध है, उसका मूल रूप वेदों में न्यूनाधिक रूप से अवश्य प्राप्त होता है। ऋग्वेद सनातन धर्म के सबसे आरम्भिक स्रोतों में से माना जाता है। यह संसार के उन सर्वप्रथम ग्रन्थों में से एक है जिसकी मान्यता आज तक समाज में बनी हुई है। यह एक प्रमुख हिन्दू ग्रंथ है जिसके दशम मण्डल के 121 वें सूक्त में 10 ऋचाओं में ‘हिरण्यगर्भ’ की संकल्पना का सर्वप्रथम उल्लेख किया गया है। ऋग्वेद में आपः (जल) को जीवन उत्पत्ति के मूल क्रियाशील प्रवाह के रूप में व्यक्त किया है, वही हिरण्यगर्भ रूप है। इस हिरण्यगर्भ रूप में ब्रह्म का संकल्प बीज पककर विश्व-रूप बनता है। इसी हिरण्यगर्भ से विराट पुरुष (आत्मा) एवं उसकी

इन्द्रियों की उत्पत्ति होती है और उसकी इन्द्रियों से देवताओं का सृजन होता है। यही जीवन का विकास-क्रम है।

उपनिषद इसे ब्रह्माण्ड की आत्मा या ब्रह्मा कहते हैं, तथा यह बताते हैं कि हिरण्यगर्भ लगभग एक वर्ष तक शून्यता और अंधकार में तैरता रहा और फिर दो हिस्सों में टूट गया। एक हिस्से ने स्वर्ग तो दूसरे हिस्से ने पृथ्वी का गठन किया। शास्त्रीय पौराणिक हिंदू धर्म में हिरण्यगर्भ शब्द का प्रयोग निर्माता- रचना करने वालाय् के लिये किया जाता है। हिरण्यगर्भ को ब्रह्म भी कहा जाता है क्योंकि यह एक सुनहरे अंडे से उत्पन्न हुआ। कुछ शास्त्रीय योग परंपराएं इसे योग प्रवर्तक के रूप में भी मानती हैं जिसके अनुसार यह ऋषि कपिल का एक नाम भी हो सकता है। मत्स्य पुराण के अनुसार महाप्रलय के बाद सब कुछ सुप्तावस्था में था अर्थात न तो कुछ गतिहीन था और न ही गतिशील, तब स्वयंभू (इंद्रियों से परे एक रूप) प्रकट हुआ जिसने प्रारम्भिक जल बनाया और उसमें सृष्टि के बीज को स्थापित किया। उसके बाद बीज एक सुनहरे गर्भ (हिरण्यगर्भ) में बदल गया तथा अंत में उसके 2 टुकड़े हुए जिससे जीवन की शुरुआत हुई। नारायण सूक्त के अनुसार जो कुछ भी दृश्यमान या अदृश्य है वह सब नारायण में ही विद्यमान है। सांख्य दर्शन के अनुसार पुरुष और प्रकृति के संयोजन से एक गर्भ या अंडा पैदा हुआ जिससे ब्रह्मांड की उत्पत्ति हुई। वह गर्भ 4 सिरों वाला ब्रह्मा था। ब्रह्मा ने दुनिया का निर्माण किया।

भागवत पुराण के अनुसार यह भगवान विष्णु का अवतार है। इसका उल्लेख ऋग्वेद के हिरण्यगर्भ सूक्त, में किया गया है जो ब्रह्मांड के एकल रचयिता के बारे में बताता है। सूक्त में इस रचयिता को प्रजापति कहा गया है। विश्वकर्मा सूक्त में भी इसका वर्णन किया गया है।

सामान्यतः हिरण्यगर्भ शब्द का प्रयोग जीवात्मा के लिए हुआ है जिसे ब्रह्मा जी भी कहा गया है। ब्रह्म और ब्रह्मा जी एक ही ब्रह्म के दो अलग अलग तत्त्व हैं। ब्रह्म अव्यक्त अवस्था के लिए प्रयुक्त होता है और ब्रह्माजी ब्रह्म की तैजस अवस्था है। ब्रह्म का तैजस स्वरूप ब्रह्मा जी हैं। हिरण्यगर्भ शब्द का अर्थ है सोने के अंडे के भीतर रहने वाला- सोने का अंडा क्या है और सोने के अंडे के भीतर रहने वाला कौन है? पूर्ण शुद्ध ज्ञान की शांतावस्था ही हिरण्य - सोने का अंडा है। उसके अंदर अभिमान करनेवाला चैतन्य ज्ञान ही उसका गर्भ है जिसे हिरण्यगर्भ कहते हैं। स्वर्ण आभा को पूर्ण शुद्ध ज्ञान का प्रतीक माना गया है जो शान्ति और आनन्द देता है जैसे प्रातः कालीन सूर्य की अरुणिमा- इसके साथ ही अरुणिमा सूर्य के उदित होने (जन्म) का संकेत है।

ब्रह्म की चार अवस्थाएँ हैं प्रथम अवस्था अव्यक्त है, जिसे कहा नहीं जा सकता, बताया नहीं जा सकता- दूसरी प्राज्ञ है जिसे पूर्ण विशुद्ध ज्ञान की शांतावस्था कहा जाता है। इसे हिरण्य कह सकते हैं। क्षीर सागर में नाग शय्या पर लेटे श्री हरि विष्णु इसी का चित्रण है। मनुष्य की सुषुप्ति इसका प्रतिरूप है। शैवों ने इसे ही शिव कहा है।

तीसरी अवस्था तैजस है जो हिरण्य में जन्म लेता है इसे हिरण्यगर्भ कहा है। यहाँ ब्रह्म ईश्वर कहलाता है। इसे ही ब्रह्मा जी कहा है। मनुष्य की स्वप्नावाथा इसका प्रतिरूप है। यही मनुष्य में जीवात्मा है। यह जगत के आरम्भ

में जन्म लेता है और जगत के अन्त के साथ लुप्त हो जाता है। ब्रह्म की चौथी अवस्था वैश्वानर है। मनुष्य की जाग्रत अवस्था इसका प्रतिरूप है। सम्पूर्ण सृष्टि का निर्माण विस्तार ब्रह्म का वैश्वानर स्वरूप है।

1- हिरण्यगर्भ का अर्थ क्या है?

2- हिरण्यगर्भ को ब्रह्माण्ड की आत्मा या ब्रह्मा कौन कहते हैं?

3- भागवत पुराण के अनुसार हिरण्यगर्भ किस का अवतार

4- सामान्यतः हिरण्यगर्भ शब्द का प्रयोग किस के लिए हुआ है?

5- ब्रह्म की कितनी अवस्थाएँ हैं?

3-3-2 वेदों में हिरण्यगर्भ की अवधारणा —

भारतीय चिन्तन परम्परा में वेद समस्त विद्याओं के आदि स्रोत है। विश्व के प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेद के दशम मण्डल के 121 वे सूक्त में 10 मन्त्रें के द्वारा हिरण्यगर्भ की अवधारणा को प्रस्तुत किया गया है। सूक्त के प्रथम मन्त्र में बताया गया है कि हिरण्यगर्भ सबसे पहले उत्पन्न हुआ। जैसे -

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम।।

अर्थात् हिरण्यगर्भ प्रजापति सबसे पूर्व उत्पन्न हुआ। उत्पन्न होते ही वह सारी सृष्टि का एकमात्र स्वामी बना। उसने इस पृथ्वी और आकाश को धारण कर लिया । हम ऐसे प्रजापति देव को हविष्यान्न द्वारा प्रसन्न करते हैं। इस सूक्त के अन्तिम मंत्र को छोड़कर अन्य मंत्रें का चौथा चरण एक जैसा ही है- ‘‘कस्मै देवाय हविषा विधेम’’ । इसमें विद्यमान ‘‘कस्मै’’ शब्द के अर्थ पाश्चात्य और भारतीय विद्वानों ने अलग अलग रूपसे कहे है। पाश्चात्य विद्वानों का मत है कि संस्कृत में ‘कः’ शब्द प्रश्नवाचक है और इसका अर्थ ‘कौन’ होता हैं, अतः इस पंक्ति का अर्थ होगा ‘हम किस देवता को हविष्यान्न द्वारा प्रसन्न करें?’ इसके विपरीत भारतीय परम्परा भिन्न प्रकार की है। सायणाचार्य ने ‘कः’ प्रजापति हिरण्यगर्भ आदि शब्दों को एक-दूसरे का पर्यायवाची शब्द माना इस मंत्र में विश्व की शाश्वत समस्याओं में से एक को समझाने का प्रयास किया गया है। प्रश्न यह उठता है कि प्रलय के पश्चात् जब पृथ्वी पर किसी भी प्राणी की सत्ता नहीं थी, तब सबसे पहले कौन पैदा हुआ? इस मंत्र में यह माना गया है कि समस्त प्राणियों की उत्पत्ति से पूर्व हिरण्मय अण्ड से गर्भभूत प्रजापति पैदा हुए। आज के वैज्ञानिको ने भी इसी मत का अनुसरण किया है। एक मत के अनुसार ब्रह्मांड में अकेला सूर्य ही चक्कर लगाता था, अचानक उसमें से एक ग्रह टूटकर अलग हुआ और वह भी उसके चारों और घूमने लगा। यह ग्रह हमारी पृथ्वी थी। सूर्य आग का गोला अर्थात् हिरण्मय (स्वर्ण के रंग के समान) अण्डाकार है। इससे निकली पृथ्वी ही प्रजापति है, जिसने सबसे पहले जन्म ग्रहण किया है। यही, प्रजापति समस्त उत्पन्न होने वाले पदार्थों का स्वामी बना और इसी ने पृथ्वी तथा आकाश को धारण किया। ऐसे प्रजापति को यहाँ हविष्यान्न से प्रसन्न करने का संकेत है।

सूक्त के अन्य मन्त्रें में कहा गया है कि हिरण्यगर्भ के विषय में कहा गया है कि, जो प्रजापति आत्मा का और बल का देने वाला है, जिसकी आज्ञा को समस्त संसार और देवता मानते हैं, अमरता और मृत्यु जिसकी छाया है, जो प्रजापति श्वास लेते हुए तथा पलक झपकते हुए प्राणियों वाले संसार का अपने महत्त्व से अकेले ही स्वामी हो गया, जो इस मनुष्य व पक्षी आदि दो पैरों वाले, पशु आदि चार पैरों वाले प्राणियों पर शासन करता है, ये हिमालय पर्वत जिसके महत्त्व को बताते हैं, नदी या पृथ्वी के सहित समुद्र जैसी महिमा को प्रकट करते हैं, जिसकी ये दिशाएँ और विदिशाएँ बाहुएँ है, जिसके द्वारा आकाश और उग्र पृथ्वी दृढ़ बनाई गई। जिसने स्वर्ग को स्थिर बनाया तथा सूर्य को आकाश में स्थापित किया। जिसने आकाश में जल उत्पन्न किया, प्रकाशमान आकाश और पृथ्वी, प्रजापति से प्राप्त की गई रक्षा द्वारा स्थिर होकर, जिस प्रजापति को अपने महत्त्व का कारण मानते हैं। जिसके सहारे पर सूर्य उदित होकर शोभा देता है, विस्तृत जल राशि अग्नि को उत्पन्न करती हुई और हिरण्यगर्भ को धारण करती हुई सारे विश्व में फैल गई, उससे देवी और मानुषी सृष्टि में अद्वितीय प्राणवायु रूप में यह उत्पन्न हुआ, हम उस प्रजापति देव को हविष्यान्न द्वारा प्रसन्न करते हैं। जिसने यज्ञ को उत्पन्न करने वाले, प्रजापति को धारण करने वाले जलों को अपने माहात्म्य से परिपूर्ण रूप में देखा, जो देवताओं का स्वयं अधीश्वर है, वह हिरण्यगर्भ प्रजापति हमारी हिंसा न करें जो पृथ्वी लोक को पैदा करने वाला है, सत्यधर्मा जिसने द्युलोक को उत्पन्न किया है, जिसने आनन्द प्रदान करने वाले महान जल राशि को उत्पन्न किया है, हम उस प्रजापति देव को हविष्यान्न द्वारा प्रसन्न करते हैं। हे प्रजापति ! आपके अतिरिक्त कोई दूसरा इन वर्तमान सभी उत्पन्न पदार्थों को व्याप्त नहीं कर सकता है। हम जिस कामना से युक्त होकर तुम्हें हवि प्रदान करते हैं, हमारी वह कामना पूर्ण हो तथा हम लोग धनों के स्वामी हो जायें।

रिक्त स्थान की पूर्ति—

1- ऋग्वेद के दशम मण्डल के ----------------- वे सूक्त में 10 मन्त्रें के द्वारा हिरण्यगर्भ की अवधारणा को प्रस्तुत किया गया है।

2- सायणाचार्य ने -----------------------प्रजापति हिरण्यगर्भ आदि शब्दों को एक-दूसरे का पर्यायवाची शब्द माना है।

3- ------------------------ने इस पृथ्वी और आकाश को धारण कर लिया।

4- समस्त प्राणियों की उत्पत्ति से पूर्व हिरण्मय अण्ड से गर्भभूत ---------------------पैदा हुए।

5- प्रजापति समस्त उत्पन्न होने वाले पदार्थों का स्वामी बना और इसी ने -----------------तथा--------------------------- को धारण किया।

1-3-3 ब्राह्मणग्रन्थों तथा उपनिषदों में हिरण्यगर्भ की अवधारणा —

ब्राह्मणग्रन्थ हिन्दू धर्म के पवित्रतम और सर्वोच्च धर्मग्रन्थ वेदों का गद्य में व्याख्या वाला खण्ड है। ब्राह्मणग्रन्थ वैदिक वाङ्मय का वरीयता के क्रम में दूसरा हिस्सा है जिसमें गद्य रूप में देवताओं की तथा यज्ञ की रहस्यमय

व्याख्या की गयी है और मन्त्रों पर भाष्य भी दिया गया है। इनकी भाषा वैदिक संस्कृत है। हर वेद का एक या एक से अधिक ब्राह्मणग्रन्थ है।

ब्राह्ममणग्रन्थों में हिरण्यगर्भ की अवधारणा का सन्दर्भ सर्वप्रथम शतपथब्राह्मण में प्राप्त होता है। शतपथब्राह्मण में हिरण्य का अर्थ ज्योति कहा गया है। यह अविनाशी ज्योति है? अर्थात् हिरण्यमय अखण्ड मूल तत्त्व रूप ज्योति है। प्रारम्भ में यह सृष्टि निश्चित ही जल के रूप में अणु के आकार का भूतावस्था में था। उनके द्वारा कामना की गयी। इसका किस प्रकार सृष्टि के रूप में विस्तार हुआ, तब तप के प्रभाव से दग्ध जल से हिरण्यमय रूपी अण्ड की उत्पत्ति हुई। कई वर्षों के अनन्तर उस अण्डे से एक पुरुष उत्पन्न हुआ, तभी से इस सृष्टि का विस्तार हुआ। जैसा कि शतपथ ब्राह्मण में कहा गया है - आपो ह वा इदमग्रे सलिलमेवास। ता अकामयन्त। कथं नु प्रजायेमहि इति। ता अश्राम्यमान्। तास्तपोऽतप्यन्तः। तासु तपस्तप्यमानासु हिरण्यमयाण्डं सम्बभूव। तदिदं यावत् सम्वत्सरस्य बेला यावत्। पर्यप्लवत। ततः सम्वत्सरे पुरुषः समभवत् सः प्रजापति।।

उपनिषद् भारतीय सभ्यता की अमूल्य धरोहर है। उपनिषद ही समस्त भारतीय दर्शनों के मूल स्रोत हैं। उपनिषद भारतीय आध्यात्मिक चिंतन के मूल आधार हैं। भारतीय आध्यात्मिक दर्शन के स्रोत हैं। वे ब्रह्मविद्या हैं। जिज्ञासाओं के ऋषियों द्वारा खोजे हुए उत्तर हैं। वे चिन्तनशील ऋषियों की ज्ञानचर्चाओं का सार हैं।

श्वेताश्वतरोपनिषद् में हिरण्यगर्भ शब्द का प्रयोग दो स्थानों पर हुआ है। तृतीय अध्याय के चतुर्थ मन्त्र में कहा गया है कि जो देवताओं की उत्पत्ति तथा ऐश्वर्यप्राप्ति का कारण है, जगत् का स्वामी है। सर्वज्ञ है। तथा जिसने हिरण्यगर्भ को उत्पन्न किया वह हमें शुद्ध बुद्धि प्रदान करें। इसी प्रकार चतुर्थ अध्याय के 12वे मन्त्र में इसी सन्दर्भ में वर्णन आया है कि जिसने सबसे पहले अपने आप से उत्पन्न हिरण्यगर्भ को देखा। इससे यह बात स्पष्ट होती है। कि ईश्वर ने आदिकाल में सर्वप्रथम हिरण्यगर्भ को उत्पन्न किया था। अतः हिरण्यगर्भ ईश्वर से भिन्न किसी भौतिक स्थिति का द्योतक था। स्मृति तथा उपनिषदों की हिरण्यगर्भ सम्बन्धी कल्पना का स्रोत ऋग्वेद में विद्यमान है।

एतरेयोपनिषद में इस सन्दर्भ में वर्णन आया है - 'तमभ्यतपत्तस्याभितप्तस्य मुखं निरभिद्यत यथाऽण्डं। मुखाद्वाग्वाचोऽग्निर्नासिके निरभिद्येतां नासिकाभ्यां प्राणः, प्राणाद्वायुरक्षिणी निरभिद्येतामक्षीभ्यां चक्षुश्चक्षुष आदित्यः कर्णौ निरभिद्येतां कर्णाभ्यां श्रोत्रं श्रोत्राद्दिशस्त्वनिरभिद्यत, त्वचो लोमानि लोमभ्य ओषधिवनस्पतयो हृदयं निरभिद्यत हृदयान्मनो, मनसश्चन्द्रमा_ नाभिर्निरभिद्यत नाभ्या अपानोऽपानान्मृत्युः, शिश्न निरभिद्यत शिश्नाद्रेतो रेतस आपः।' (ऐतरेय-उपनिषद्, 1-1-4)

अर्थात् उसको उन्होंने तपाया, उसके तप जाने पर उसका मुख खुल गया, जैसे अण्डा फटता है, वैसे फटकर मुख का निर्माण हुआ। मुख से वाणी निकली और वाणी से अग्नि प्रकट हुआ। दोनों नासिकाएँ खुल गयीं, नासिकाओं से प्राण और प्राण से वायु हुआ। दोनों आँखें उत्पन्न हुई, आँखों से चक्षु इन्द्रियाँ हुई और आँख से सूर्य हुआ। दोनों कान निकले, कानों से श्रोत्र इन्द्रिय हुआ और श्रोत्र से दिशाएं हुई। त्वचा हुई, त्वचा से लोम और लोमों से औषधियाँ और वनस्पतियाँ बनी। हृदय बना, हृदय से मन और मन से चन्द्रमा हुआ। नाभी बनी,

नाभी से अपान हुआ और अपान से मृत्यु हुआ। शिस्न उत्पन्न हुआ, शिस्न से रेत हुआ और रेत से जल उत्पन्न हुआ। ऐसा भी कहा जा सकता है कि मानों जैसे अण्डे के आकार का जल से एक पिण्ड निर्मित किया गया, और उसको तपाया गया, तदनन्तर वह फट गया, फटने पर उसमें अनेक छिद्र हुए, उन छिद्रों में से एक-एक इन्द्रिय की उत्पत्ति हुई। यथा मुख-नासिका-नेत्र-कर्ण-त्वचा- हृदय-नाभि-शिस्न। अतएव इन इन्द्रियों का वाणी-प्राण- दृष्टि- श्रवण-लोम-मन- अपान-रेत यह क्रम रहा। इन्हीं इन्द्रियों से एक-एक देवता का निर्माण हुआ। यथा- वाणी से अग्नि, प्राण से वायु, दृष्टि से सूर्य, श्रवण से दिशाएँ, लोम से वनस्पति और औषधी, मन से चन्द्रमा, अपान से मृत्यु, रेतः से जल आदि। ऐसा भी माना जा सकता है कि इन इन्द्रियों से उत्पन्न एक-एक देवता विश्व की शक्ति है और मानव शरीर में इन्हीं का अंशरूप है। जिस प्रकार विश्व को ब्रह्माण्ड कहा जाता है उसी प्रकार शरीर को पिण्ड कहा जाता है। शरीर के पाँच भौतिक अंश ब्रह्माण्ड के पञ्चभूतों के ही अंश हैं।

1. ब्राह्मणग्रन्थों में हिरण्यगर्भ की अवधारणा का सन्दर्भ सर्वप्रथम किस ब्राह्मण में प्राप्त होता है -

(क) महाब्राह्मण (ख) शतपथब्राह्मण

(ग) एतरेयब्राह्मण (घ) दैवतब्राह्मण

2. श्वेताश्वतरोपनिषद् में हिरण्यगर्भ शब्द का प्रयोग कितने स्थानों पर हुआ है।

(क) एक (ख) तीन

(ग) दो (घ) पांच

3- ईश्वर ने आदिकाल में सर्वप्रथम किस को उत्पन्न किया था।

(क) हिरण्यगर्भ (ख) सूर्य

(ग) ब्रह्मा (घ) इन्द्र

4- उपनिषदों की हिरण्यगर्भ सम्बन्धी कल्पना का स्रोत किस वेद में विद्यमान है।

(क) ऋग्वेद (ख) यजुर्वेद

(ग) सामवेद (घ) अथर्ववेद

5- शरीर के कितने भौतिक अंश ब्रह्माण्ड के पञ्चभूतों के ही अंश हैं।

(क) दो (ख) तीन

(ग) चार (घ) पाँच

3-3-3 पुराणों में हिरण्यगर्भ की अवधारणा —

पुराण हिन्दुओं के धर्म-सम्बन्धी आख्यान ग्रन्थ हैं। जिनमें संसार - ऋषियों - राजाओं के वृत्तान्त आदि हैं। ये वैदिक काल के बहुत समय बाद के ग्रन्थ हैंए जो स्मृति विभाग में आते हैं। भारतीय जीवन-धारा में जिन ग्रन्थों का महत्त्वपूर्ण स्थान है उनमें पुराण प्राचीन भक्ति-ग्रंथों के रूप में बहुत महत्त्वपूर्ण माने जाते हैं। अठारह पुराणों में अलग-अलग देवी-देवताओं को केन्द्र मानकर पाप और पुण्य, धर्म और अधर्म, कर्म और अकर्म की गाथाएँ कही गयी हैं। पुराणों में सृष्टि के आरम्भ से अन्त तक का विवरण दिया गया है।पुराण के पांच लक्षण है

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।

वंशानुचरितञ्चैव पुराणं पञ्चलक्षणम्॥

पुराणों के पाच लक्षणों में सर्ग अर्थात् सृष्टिविचार प्रथम लक्षण है पुराण प्रायः सभी पुराणों में सृष्ट्युत्पत्ति के विषय में वर्णन प्राप्त होता है। पुराणों में हिरण्यगर्भ को ब्रह्म तथा विष्णु के रूप में वर्णित किया गया है। ब्रह्मपुराण प्रथमाध्याय मे कहा गया है कि उस परम पुरुष का आश्रय पहले जल-राशि ही थी। इसलिये उसको 'नारायण' कहा गया है। जल में सोये हुये उस परम पुरूष की नाभि से एक सुवर्णमय अण्डा उत्पन्न हुआ, और उस सुवर्णमय अण्डे में क्रिया उत्पन्न होने पर ब्रह्मा जी की उत्पत्ति हुयी। प्रलय के बाद लम्बे समय के बाद नारायण ने सृष्टि के लिये अण्ड से अपने ही प्रारूप ब्रह्मा की उत्पत्ति की। ब्रह्मा जी की उत्पत्ति के पश्चात् श्री नारायण ने ब्रह्मा जी के द्वारा सृष्टि संरचना का कार्य किया। उस स्वर्णमय अण्ड से ब्रह्मा जी उत्पन्न हुये ऐसा सुना है। हिरण्यगर्भ भगवान् ने वर्षों तक वास करके उस उण्ड को स्वर्ग और पृथ्वी इन दो टुकड़ों में विभक्त कर दिया। परमात्मा ने उन दोनों टुकड़ों के मध्य भाग में आकाश बनाया और जल में डूबी हुई पृथिवी तथा दसों दिशाओं को धारण किया।

श्री पद्म पुराण में सृष्टि के विषय में बताया गया है कि ब्रह्म ही महतत्व से लेकर विशेष पर्यन्त विशाल ब्रह्माण्ड की सृष्टि करते हैं। पद्मपुराण सृष्टिखण्ड द्वितीयाध्याय में वर्णन आया है कि जो नित्य सदसत्स्वरूप, अव्यक्त एवं सबका कारण है। वह ब्रह्म ही महतत्त्व से लेकर विशेष पर्यन्त तक इस सम्पूर्ण विशाल ब्रह्माण्ड की रचना एवं सृष्टि करता है -अण्डे हिरण्मये पूर्वं ब्रह्मणः सूतिरुत्तमा। सृष्टि के समय सर्वप्रथम हिरण्यमय (तेजोमय) अण्ड में से श्री वेदमूर्ति ब्रह्मा जी का प्रादुर्भाव हुआ। वह अण्ड चारों ओर से जल से घिरा हुआ है, इसी जल से आवृत अण्ड से सम्पूर्ण लोकों की उत्पत्ति बतायी गयी है।

शिवपुराण में प्रणव से सृष्टि की उत्पत्ति बताई गई है। प्रणव के एक अक्षर अकार से जगत के बीजभूत अण्डजन्मा भगवान ब्रह्मा का बोध होता है, उसके दूसरे एक अक्षर उकार से परम कारण रूप श्री हरि का बोध होता है, और तीसरे एक अक्षर मकार से भगवान् नील-लोहित शिव का ज्ञान होता है, अकार सृष्टिकर्ता है, उकार मोह में डालने वाला है और मकार नित्य अनुग्रह करने वाला है। वह दिव्य अण्ड अनेक वर्षों तक जल में ही स्थित रहा। तदनन्तर एक हजार वर्ष के बाद उस जल में स्थित हुआ वह अण्ड अजन्मा ब्रह्मा जी की उत्पत्ति का स्थान था और साक्षात महेश्वर के आघात से ही फूटकर दो भागों में बँट गया था। उस अवस्था में उसका ऊपर स्थित हुआ सुवर्णमय कपाल बड़ी शोभा पाने लगा। वही घुलोक के रूप में प्रकट हुआ तथा जो उसका दूसरा नीचे वाला कपाल था, वही यह पाँच लक्षणों से युक्त पृथिवी है। उस अण्ड से चतुर्मुख ब्रह्मा उत्पन्न हुये, जिनकी 'क' संज्ञा है। वे समस्त लोकों के स्रष्टा है।

विषुपुराण में अनुसार पुरुषाधिष्ठित प्रकृति से आदि अण्डोत्पत्ति हुई। सर्गकाल के प्राप्त होने पर गुणों की साम्यावस्था प्रधान जब विष्णु के क्षेत्ररूप से अधिष्ठित हुआ तो उससे महत्तत्व की उत्पत्ति हुयी, जो कि तीन प्रकार होता है, इन तीनों से तीन अहंकार की उत्पत्ति होती है, और भूतादि अहंकार से, पाँच तन्मात्रायें शब्द

(आकाश), स्पर्श (वायु), रूप (तेज), रस(जल),तथा गन्ध (पृथिवी) की उत्पत्ति होती है। इसके पश्चात् दस इन्द्रियाँ तैजस अर्थात् अहंकार से उत्पन्न होते हैं। दस इन्द्रियाँ तैजस अर्थात् राजस अहंकार से और उनके अधिष्ठाता देवता वैकारिक अर्थात् सात्विक अहंकार से उत्पन्न हुये कहे जाते हैं। इस प्रकार इन्द्रियों के अधिष्ठाता दस देवता और ग्यारहवाँ मन वैकारिक है। त्वक, चक्षु, नासिका, मुख और श्रोत्र-ये पाँचों बुद्धि की सहायता से शब्दादि विषयों को ग्रहण करने वाली पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं। इनके कर्म, त्याग, शिल्प, गति और वचन बतलाये गये हैं। नाना प्रकार की शक्तियाँ पूर्णतया परस्पर मिले बिना संसार की रचना नहीं कर सकते हैं इसलिये एक-दूसरे के आश्रय रहने वाले और एक ही संघात की उत्पत्ति के लक्ष्य वाले महत्तत्व से लेकर विशेष पर्यन्त प्रकृति के इन सभी विकारों ने पुरुष से अधिष्ठित होने के कारण परस्पर मिलकर सर्वथा एक होकर प्रधान तत्व के अनुग्रह से अण्ड की उत्पत्ति की। जल के बुलबुले के समान क्रमशः भूतों से बढ़ा हुआ वह गोलाकार और जल पर स्थित महान अण्ड ब्रह्म (हिरण्यगर्भ) रूप विष्णु का अति उत्तम प्राकृत आधार हुआ। उसमें वे अव्यक्त-स्वरूप जगत्पति विष्णु व्यक्त हिरण्यगर्भरूप से स्वयं ही विराजमान हुये। यहाँ पर हिरण्यगर्भ स्वरूप श्री ब्रह्मा जी की उत्पत्ति को बताया गया है। जिनकी उत्पत्ति का कारण जल पर स्थित अण्ड हुआ। उन महात्मा हिरण्यगर्भ का सुमेरु उल्ब (गर्भ को ढकने वाली झिल्ली) अन्य पर्वत, जरायु (गर्भाशय) तथा समुद्र गर्भाशयस्थ रस था। विश्व की उत्पत्ति का कारण यही उल्ब, तथा अण्डज का एक-एक भाग हुआ जिससे सृष्टि का विकास सम्भव हुआ।

1- पुरोणों के पांच लक्षण कौन कौन से है?

2- पुराणों में हिरण्यगर्भ को किस रूप में वर्णित किया गया है।

3- शिवपुराण के अनुसार प्रणव के तीन अक्षरों से किस का बोध होता है?

4- विष्णुपुराण के अनुसार अण्डोत्पत्ति किस से हुई?

5- पाँच तन्मात्रयें कौन कौन सी हैं?

3-3-4 अन्य ग्रन्थों में हिरण्यगर्भ की अवधारणा —

मनुस्मृति में हिरण्यगर्भ - स्मृतिग्रन्थों में मनुस्मृति सर्वाधिक महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। भारत में वेदों के उपरान्त सर्वाधिक मान्यता और प्रचलन "मनुस्मृति" का ही है । इसमें चारों वर्णों, चारों आश्रमों, सोलह संस्कारों तथा सृष्टि उत्पत्ति के अतिरिक्त राज्य की व्यवस्थाएँ राजा के कर्तव्य, भांति-भांति के विवादों, सेना का प्रबन्ध आदि उन सभी विषयों पर परामर्श दिया गया है जो कि मानव मात्र के जीवन में घटित होने सम्भव हैं यह सब धर्म-व्यवस्था वेद पर आधारित है।

मनुस्मृति में सृष्ट्युत्पत्ति के सन्दर्भ में हिरण्यमयाण्ड की अवधारणा को स्वीकार किया गया है। मनुस्मृति के अनुसार ‘हिरण्मयाण्ड’ की उत्पत्ति का स्पष्ट एवं क्रमिक वर्णन इस प्रकार है-

सोऽभिध्याय शरीरात्स्वात्सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः।
अप एव ससर्जादौ तासु बीजमवासृजत्।।

तदण्डमभवद्धैमं सहस्रांशुसमप्रभम्।
तस्मिञ्जज्ञे स्वयं ब्रह्मा सर्वलोकपितामहः।।
तस्मिन्नण्डे स भगवानुषित्वा परिवत्सरम्।
स्वयमेवात्मनो ध्यानात्तदण्डमकरोद् द्विधा।।
ताभ्यां स शकलाभ्यां च दिवं भूमिं च निर्ममे।
मध्ये व्योम दिशश्चाष्टावपां स्थानं च शाश्वतम्।।

अर्थात् उस परमात्मा ने अनेक प्रकार की प्रजाओं की सृष्टि करने की इच्छा से ध्यानकर सबसे पहले जलों की ही सृष्टि की और उसमें शक्तिरूपी बीज को छोड़ा। वह बीज सहस्रों सूर्यो के समान प्रकाशवाला, सुवर्ण के समान शुद्ध अण्डा हो गया। उसमें सम्पूर्ण लोकों की सृष्टि करने वाले ब्रह्मा उत्पन्न हुए। ब्रह्मा ने उस अण्डे में एक वर्ष निवास कर अपने ध्यान के द्वारा उस अण्डे के दो टुकड़े कर दिये। ब्रह्मा ने उस अण्डे के उन दो टुकड़ो से स्वर्ग तथा पृथिवी की सृष्टि की और बीच में से आकाश, आठ दिशाओं तथा जल का आश्रय अर्थात् समुद्र की सृष्टि की।

ज्योतिषशास्त्र में हिरण्यगर्भ - भगवान् वेदपुरुष का नेत्र स्थानीय अंग ज्योतिषशास्त्र कालबोधक शास्त्र है। इस षास्त्र में सृष्टि की संरचना से लेकर प्रलय पर्यन्त काल की गणना की गई है। सृष्ट्यादि से प्रलय पर्यन्त कालगणना के प्रसङ्ग में अनेक ग्रन्थों में सृष्ट्युत्पत्ति विषयक वर्णन किया गया है। ज्योतिषीय ग्रन्थों में हिरण्यगर्भ का वर्णन सूर्यसिद्धान्त में प्राप्त होता है। सूर्यसिद्धान्त ज्योतिाषास्त्र का महत्वपूर्ण एवं आदि ग्रन्थ है। इसमें प्रतिपादित कालगणना एवं ग्रहों की गति-स्थिति इत्यादि के सिद्धान्तो के आधार पर ही परवर्ती आचार्यो ने अन्य सिद्धान्तग्रन्थों की रचना की है।

सूर्य सिद्धान्त के भूगोलाध्याय में सृष्टि विजयक विस्तृत विवेचन व निर्माण के विषय में कहा गया है कि वासुदेव परब्रह्म है। इनकी मूर्ति परम पुरुष हैं जो अव्यक्त निगुर्ण, शान्त तथा पच्चीस तत्वों से परे है। बाहर तथा भीतर सर्वत्र व्याप्त वासुदेव ने संकर्षण रूप से प्रकृति के अन्तर्गत प्रविष्ट होकर सर्वप्रथम जल की रचना की, इसके बाद उस जल में वीर्य बीज स्वरूप अपने तेज को स्थापित किया। जो चारों ओर से अन्धकार से घिरा हुआ होकर स्वर्णमय अंडा बन गया। फिर अण्ड के भीतर से सर्वप्रथम सनातन भगवान् अनिरुद्ध प्रकट हुये। इन्हीं को वेदों में हिरण्यगर्भ कहते हैं। सर्वप्रथम उत्पन्न होने के कारण इन्हें आदित्य तथा अण्ड से प्रसूत होने के कारण सूर्य कहा गया। सूर्य ने ही अहंकार स्वरूप ब्रह्मा को संसार की सृष्टि के लिए उत्पन्न किया। अहंकार मूर्ति रूपी ब्रह्मा ने सृष्टि रचना का मन में विचार किया। ब्रह्मा के मन से चन्द्रमा की उत्पत्ति हुई तथा नेत्रें से प्रकाशात्मा सूर्य की उत्पति हुई। उस ब्रह्मा के मन से आकाश, आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि जल तथा जल से पृथ्वी की क्रमशः उत्पत्ति हुई। एक-एक गुणों की वृद्धि से ये पांचों पञ्चमहाभूत कहे गये हैं।

सूर्य सिद्धान्त के पश्चात हिरण्यगर्भ की संकल्पना का वर्णन बृहत्संहिता में प्राप्त होता है। बृहत्संहिता ज्योतिषशास्त्र के महान् विद्वान् आचार्य वराहमिहिर द्वारा लिखित सुप्रसिद्ध संहिता ग्रन्थ है। बृहत्संहिता के शास्त्रोपनयनाध्याय में सृष्टि प्रक्रिया का वर्णन किया इस प्रकार किया है -

आसीत्तमः किलेदं तत्रपां तेजसेऽभवद्धैमे।
स्वर्भूशकले ब्रह्मा विश्वकृदण्डेऽर्कशशीनयनः।।

अर्थात यह सम्पूर्ण जगत् पहले अन्धकारमय था तथा जलमय था। अर्थात सर्वत्र केवल अन्धकार था तथा जल व्याप्त था। तत्पश्चात् अन्धकार के विषयभूत जल में तेज से परिपूर्ण एक सुवर्ण का अण्ड उत्पन्न हुआ। कालान्तर में वह स्वर्णमय अण्ड दो भागों में विभक्त हुआ। दो भागों में ऊपर वाला भाग स्वर्ग तथा अधः भाग पृथ्वी रूप हुआ। इन टुकडों में से सूर्य तथा चन्द्ररूप दो नेत्रों वाले ब्रह्माजी उत्पन्न हुए। इस प्रकार ब्रह्माजी ने समस्त चराचर की सृष्टि की। आचार्य वराहमिहिर का यह सिद्धान्त ऋग्वेद के हिरण्गर्भ सूक्त मे प्रतिपादित सिद्धान्त के अनुसार है।

महाभारत में हिरण्यगर्भ - महाभारत हिन्दुओं का एक प्रमुख काव्य ग्रंथ है, जो स्मृति के इतिहास वर्ग में आता है। इसे भारत भी कहा जाता है। यह काव्यग्रंथ भारत का अनुपम धार्मिक, पौराणिक, ऐतिहासिक और दार्शनिक ग्रंथ हैं। विश्व का सबसे लंबा यह साहित्यिक ग्रंथ और महाकाव्य हिन्दू धर्म के मुख्यतम ग्रंथों में से एक है। इस ग्रन्थ को हिन्दू धर्म में पंचम वेद माना जाता है। यद्यपि इसे साहित्य की सबसे अनुपम कृतियों में से एक माना जाता है, किन्तु आज भी यह ग्रंथ प्रत्येक भारतीय के लिये एक अनुकरणीय स्रोत है। यह कृति प्राचीन भारत के इतिहास की एक गाथा है। इसी में हिन्दू धर्म का पवित्रतम ग्रंथ भगवद्गीता सन्निहित है। पूरे महाभारत में लगभग १,१०,००० श्लोक हैं। महाभारत के शान्तिपर्व में सृष्ट्युत्पत्ति का वर्णन प्राप्त होता है।

शान्तिपर्व में ब्रह्माजी को सुवर्णमय अण्ड से उत्पन्न तथा सम्पूर्ण भूतों का उद्गम स्थान माना है। महर्षि व्यास वेदमूलक कल्पनाओं एवं धारणाओं का उपबृंहण करते हुए कहते हैं कि प्रजापति ब्रह्माजी उस सुवर्णमय अण्ड के भीतर एक वर्ष तक निवास करके बाहर निकल आये फिर उन्होने सम्पूर्ण पृथ्वी, आकाश तथा स्वर्गलोक को सष्टि के लिये विचार आरम्भ किया ब्रह्मा जी ने उस सुवर्णमय अण्ड के दोनों टुकड़ों के तथा स्वर्ग और भूतल के मध्य में आकाश की सृष्टि की।

सत्य/असत्य प्रश्न-

1- मनुसमृति में सृष्ट्युत्पत्ति के सन्दर्भ में हिरण्यमयाण्ड की अवधारणा को स्वीकार किया गया है। सत्य/असत्य

2- सूर्य सिद्धान्त के कालमानाध्याय में सृष्टि विजयक विस्तृत विवेचन प्राप्त होता है। सत्य/असत्य

3- बृहत्संहिता ज्योतिषशास्त्र के महान् विद्वान् आचार्य वराहमिहिर द्वारा लिखित सुप्रसिद्ध संहिता ग्रन्थ है। सत्य/असत्य

4- महाभारत के आदि पर्व में सृष्ट्युत्पत्ति का वर्णन प्राप्त होता है। सत्य/असत्य

5- महाभारत में सूर्य को सुवर्णमय अण्ड से उत्पन्न तथा सम्पूर्ण भूतों का उद्गम स्थान माना है। सत्य/असत्य

3-10 सारांश —

हिरण्यगर्भ का तात्पर्य है-'ज्योतिर्मय पिण्ड' जिस गर्भ में वह विद्यमान है। दशम मण्डल के 121 वें सूक्त में 10 ऋचाओं में 'हिरण्यगर्भ' की संकल्पना का सर्वप्रथम उल्लेख किया गया है। ऋग्वेद में आपः (जल) को जीवन उत्पत्ति के मूल क्रियाशील प्रवाह के रूप में व्यक्त किया है, वही हिरण्यगर्भ रूप है। इस हिरण्यगर्भ रूप में ब्रह्म का संकल्प बीज पककर विश्व-रूप बनता है। सूक्त के प्रथम मन्त्र में बताया गया है कि हिरण्यगर्भ सबसे पहले उत्पन्न हुआ। उत्पन्न होते ही वह सारी सृष्टि का एकमात्र स्वामी बना। उसने इस पृथ्वी और आकाश को धारण कर लिया। ब्राह्मणग्रन्थों में हिरण्यगर्भ की अवधारणा का सन्दर्भ सर्वप्रथम शतपथब्राह्मण में प्राप्त होता है। शतपथब्राह्मण में हिरण्य का अर्थ ज्योति कहा गया है। उपनिषद इसे ब्रह्माण्ड की आत्मा या ब्रह्मा कहते हैं, तथा यह बताते हैं कि हिरण्यगर्भ लगभग एक वर्ष तक शून्यता और अंधकार में तैरता रहा और फिर दो हिस्सों में टूट गया। एक हिस्से ने स्वर्ग तो दूसरे हिस्से ने पृथ्वी का गठन किया। श्वेताश्वतरोपनिषद् के अनुसार जो देवताओं की उत्पत्ति तथा ऐश्वर्यप्राप्ति का कारण है, जगत् का स्वामी है। सर्वज्ञ है। तथा जिसने हिरण्यगर्भ को उत्पन्न किया वह हमें शुद्ध बुद्धि प्रदान करें। इसी प्रकार चतुर्थ अध्याय के 12वे मन्त्र में इसी सन्दर्भ में वर्णन आया है कि जिसने सबसे पहले अपने आप से उत्पन्न हिरण्यगर्भ को देखा। एतरेयोपनिषद् में वर्णन आया है कि अण्डे के आकार का जल से एक पिण्ड निर्मित किया गया, और उसको तपाया गया, तदनन्तर वह फट गया तथा उससे सम्पुर्ण चराचर सृष्टि की रचना हुई। पुराणों में भी हिरण्यगर्भ की संकल्पना का वर्णन मिलता है। ब्रह्मपुराण मे कहा गया है कि उस परम पुरुष का आश्रय पहले जल-राशि ही थी। इसलिये उसको 'नारायण' कहा गया है। जल में सोये हुये उस परम पुरुष की नाभि से एक सुवर्णमय अण्डा उत्पन्न हुआ। पद्म पुराण के अनुसार सृष्टि के समय सर्वप्रथम हिरण्यमय (तेजोमय) अण्ड में से श्री वेदमूर्ति ब्रह्मा जी का प्रादुर्भाव हुआ। शिवपुराण में प्रणव से सृष्टि की उत्पत्ति बताई गई है। प्रणव के एक अक्षर अकार से जगत के बीजभूत अण्डजन्मा भगवान ब्रह्मा का बोध होता है। विष्णुपुराण के अनुसार पुरुषाधिष्ठित प्रकृति से आदि अण्डोत्पत्ति हुई। मनुस्मृति में सृष्ट्युत्पत्ति के सन्दर्भ में हिरण्यमयाण्ड की अवधारणा को स्वीकार किया गया है तथा ज्योतिषीय ग्रन्थों में हिरण्यगर्भ का वर्णन सूर्यसिद्धान्त में प्राप्त होता है। जिसका विस्तृत अध्ययन आपने इस इकाई में किया।

3-11 पारिभाषिक शब्दावली—

हिरण्यगर्भ - -'ज्योतिर्मय पिण्ड' जिस गर्भ में वह विद्यमान है।

सार्वभौमिक - सम्पूर्ण पृथ्वी पर फैला हुआ

सुप्तावस्था - सोई हुर्द अवस्था

गतिहीन - जिसमें गति ना हो

चैतन्य - चेतना में होने का भाव, जो सोचने समझने की स्थिति में हो।

अरुणिमा - लालिमा, लाली

वैश्वानर - अग्नि

शाश्वत - सदा रहने वाला

कपाल - मस्तक, खोपड़ी

सर्गकाल - रचना का समय

जरायु - गर्भाशय

उल्ब - गर्भ को ढकने वाली झिल्ली

3.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर—

अतिलघूत्तरीय प्रश्न -

1- स्वर्ण गर्भ या स्वर्ण अंड।

2- उपनिषद

3- विष्णु का

4- जीवात्मा

5- 4

रिक्त स्थान की पूर्ति

1- 121

2- ‘कः’

3- हिरण्यगर्भ

4- प्रजापति

5- पृथ्वी, आकाश

बहुविकल्पीय प्रश्न

1- (घ) 2ण् (क) 3ण् (क) 4ण् (ग) 5ण् (ख)

लघूत्तरीय प्रश्न

1- सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च !
वंशानुचरित चैव पुराणं पञ्चलक्षणम्।।

2- पुराणों में हिरण्यगर्भ को ब्रह्म तथा विष्णु के रूप में वर्णित किया गया है।

3- प्रणव के एक अक्षर अकार से जगत के बीजभूत अण्डजन्मा भगवान ब्रह्मा का बोध होता है, उसके दूसरे एक अक्षर उकार से परम कारण रूप श्री हरि का बोध होता है, और तीसरे एक अक्षर मकार से भगवान् नील-लोहित शिव का ज्ञान होता है।

4- विषुपुराण में अनुसार पुरुषाधिष्ठित प्रकृति से आदि अण्डोत्पत्ति हुई।

5- पाँच तन्मात्रायें शब्द (आकाश), स्पर्श (वायु), रूप (तेज), रस(जल),तथा गन्ध (पृथिवी)

सत्य/असत्य प्रश्न

1- सत्य

2- असत्य

3- सत्य

4- असत्य

5- असत्य

3-12 सन्दर्भ ग्रन्थों की सूची —

1- ऋग्वेद, सयणाचार्यकृत-भाष्यसंवलिता, अनुवादक पण्डित रामगोविन्द त्रिवेदी, चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी, 2016

2- अथर्ववेद, सयणाचार्यकृत-भाष्यसंवलिता, अनुवादक पण्डित रामगोविन्द त्रिवेदी, चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी, 2016

3- उपनिषत्सञ्चयम्, अनुवादक आचार्य केशवलाल वा- शास्त्री, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान दिल्ली, 2015

4- शतपथ ब्राह्मण, सायणाचार्यकृत-भाष्य, नाग प्रकाशन ज्वाहरनगर दिल्ली, 1990

5- सूर्यसिद्धान्तः - आर्षग्रन्थः, टीकाकार कपिलेश्वरशास्त्री, चौखम्बा संस्कृत संस्थान वाराणसी-2004

6- बृहत्संहिता - आचार्यवराहमिहिरविरचितः, प- अच्युतानन्द झा, चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी संस्करण - 2009।

7- मनुस्मृति - डा- गजानन शास्त्री, चौखम्बा सुरभारती प्रति"ान वाराणसी, 2002

8- ब्रह्मपुराण - गीताप्रेस गोरखरपुर,

9- पद्म पुराण - गीताप्रेस गोरखरपुर,

10- शिवपुराण - गीताप्रेस गोरखरपुर,

11- श्रीमद्भागवतमहापुराण - गीताप्रेस गोरखरपुर,

12- विष्णुपुराण - गीताप्रेस गोरखरपुर,

1-13 साहायक उपयोगी सामग्री —

1- ब्रह्माण्ड और सौर परिवार, प्रो- देवी प्रसाद त्रिपाठी, परिक्रमा प्रकाशन दिल्ली, 2006

2- सृष्ट्युत्पत्ति की वैदिक परिकल्पना, विष्णुकान्त शर्मा, प्रतिभा प्रकाशन दिल्ली, 2008

3- सृष्टि उत्पत्ति - रामनाथ गुप्ता, मीरा प्रकाशन, 2019

4- वेद-विज्ञान चिन्तन, प्रो- बृजबिहारी चौबे, कात्यायन वैदिक साहित्य प्रकाशन, होशियारपुर, 2005

5- वेद विज्ञान, स्वामी प्रत्यगात्मानन्द स्वामी, अनुवादिका डा- उर्मिला शर्मा, विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी, 2012

3-14 निबन्धात्मक प्रश्न—

1- वेदों तथा उपनिषदों के अनुसार हिरण्यगर्भ के स्वरूप का विस्तार से वर्णन कीजिए।

2- ऋग्वेदोक्त हिरण्यगर्भ सूक्त के अनुसार हिरण्यगर्भ की व्याख्या कीजिए।

3- ब्राह्मणग्रन्थों तथा उपनिषदों में हिरण्यगर्भ की अवधारणा का वर्णन कीजिए।

4- पुराणों में प्राप्त हिरण्यगर्भ के सन्दर्भों का उल्लेख कीजिए।

5- ज्योतिषशास्त्र में वर्णित हिरण्यगर्भ के आधार पर सृष्ट्युत्पत्ति का वर्णन कीजिए।

इकाई -04 हिरण्यगर्भ का प्रसरण

इकाई की रूपरेखा

4-1 प्रस्तावना

4-2 उद्देश्य

4-3 मुख्य भाग

4-3-1 उपखण्ड एक – ऋग्वेदीय हिरण्यगर्भ -सूक्त में तदीय प्रसरण

4-3-2 उपखण्ड दो - पुरुष सूक्त में हिरण्यगर्भ का प्रसरण

4-3-3 उपखण्ड तीन - हिरण्यगर्भ परमात्मा की चार अवस्थाएं

4-3-4 उपखण्ड चार - श्वेताश्वतरोपनिषद् में हरण्यगर्भ का प्रसरण

4-4 सारांश

4-5 पारिभाषिक शब्द

4-6 सन्दर्भ ग्रन्थों की सूची

4-7 सहायक उपयोगी सामग्री

4-8 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1. प्रस्तावना –

भारतीय वैदिक ज्ञान-विज्ञान परम्परा में हिरण्यगर्भ विषयक श्रवण, मनन तथा निदिध्यासन अर्थात् आचरण सम्बन्धी जिज्ञासा अनादि काल से ही मानव मस्तिष्क में गतिमान रही है। वेद, वेदाङ्ग, उपनिषद्, दर्शन तथा पुराण साहित्य में हिरण्यगर्भ के प्रसरणके संदर्भमें विचार प्राप्त होते हैं जो भारतीय मनीषाके सम्पूर्ण विकासको प्रदर्शित करते हैं। जिसका आप यहां पर विस्तरशः अध्ययन करेंगे। वैदिक ज्ञान-विज्ञान के अनुसार हिरण्यगर्भ शब्द की व्युत्पत्ति, अर्थ, परिभाषा, स्वरूप तथा हिरण्यगर्भके प्रसरण के बारे में जानेंगे यथा - पूरोदृश्यमान पदार्थ पृथ्वी जल, तेज, वायु, वृक्ष, नदी, नद,सर,सरोवर,समुद्र पर्वतादि। दूरस्थ- आकाश, सूर्य, चंद्र, तारागण, मेघ, दिशा, विदिशा तथा जरायुज, अण्डज,स्वेदज, उद्भिज्ज भेद से जो चार प्रकार का प्रसरण, भूगोल, खगोल, आकाशगंगादि को देखकर उनके गुण, धर्म, प्रयोजन क्या हैं? कब से हैं? इत्यादि प्रश्न मानव मानस पटल पर उदित होते हैं। तथा नवी गवेषणा के लिए उत्तरोत्तर प्रेरित करते हैं। संपूर्ण विश्व में अनेक मनीषियों के द्वारा विभिन्न सिद्धांत प्रतिपादित हुए हैं। वर्तमान में निरंतर शोध कार्य चल रहे हैं आगे भी ये शोध कार्य चलते रहेंगे वस्तुतः यह हिरण्यगर्भका प्रसरण संसार कहलाता है " संसरतीति संसार:" अर्थात् जिसका निर्बाध गति से प्रसरण चल रहा है वही संसार है। हम यहां पर उन कतिपय सिद्धांतों की विवेचना करेंगे जो सर्वमान्य एवं तर्क सम्मत हैं।

4.2 उद्देश्य -

इस इकाई के निम्नलिखित उद्देश्य हैं -

1- भारतीय प्राचीन ज्ञान विज्ञान परंपरा में सर्वप्रथम ऋग्वेदादि वैदिक वाङ्मय में निहित ज्ञान द्वारा हिरण्यगर्भ के प्रसरण का अवबोधन प्राप्त कर भारतीय आर्षचिन्तन को विश्व पटल पर प्रतिष्ठापित कर जनोपयोगी बना पायेंगे।

2- शिक्षा के माध्यम से विश्व-जनहित एवं विश्व-जनसुख के लिए प्रकाशित कर पायेंगे।

3- हिरण्यगर्भ का प्रसरण के स्वरूपकी वैदिक अवधारणा की व्याख्या कर सकेंगे।

4- पुराणों में हिरण्यगर्भ के प्रसरण का वर्णन कर सकेंगे

5- उपनिषद् के अनुसार हिरण्यगर्भ का प्रसरण के स्वरूप का विवेचन करने में समर्थ होंगे।

4.3. ऋग्वेदीय हिरण्यगर्भ - सूक्त में तदीय प्रसरण

ऋग्वेदीय दशम मण्डल के 121वें सूक्त को हिरण्यगर्भ सूक्त कहा जाता है इसके ऋषि प्रजापति पुत्र हिरण्यगर्भ देवता "क"अर्थात् सुखस्वरूप प्रजापति हैं जो त्रिष्टुप् छन्द में है। हिरण्य को अग्नि का रेतस् कहते हैं हिरण्यगर्भ अर्थात् स्वर्णगर्भ जो सृष्टि के आदि में स्वयंभू बृहद्-अण्डाकार तैजस तत्व है। इनको सृष्टि का प्रथम अग्नि तत्व कहते हैं । बृहद् सलिल में उत्पन्न हिरण्यगर्भ की गतित्रय का उल्लेख हुआ है प्रथम- सर्पण अर्थात् सलिल में ऊर्मियों के उत्पन्न होने की क्रिया। द्वितीय- प्रसर्पण अर्थात् आगे बढ़ने की क्रिया। तृतीय- परिसर्पण अर्थात्

चारों ओर बढ़ने की क्रिया। इसके बाद यह हिरण्यगर्भ भागद्वय में विभाजित होकर पृथ्वी और द्युलोक बना जो सृष्टि का मूल है मन्त्रदृक् ऋषि ने सृष्टि के आदि में स्थित उसी हिरण्यगर्भ के निमित्त जिज्ञासा व्यक्त की है

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेकासीत् ॥
स दाधार पृथ्वीं द्यामुतेमां कस्मै देवायहविषा विधेम ॥१॥
य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्यदेवाः ॥
यस्य छायामृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवायहविषा विधेम ॥२॥
यः प्राणतो निमिषतो महित्वैक इद्राजा जगतो बभूव॥
यः ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम॥३॥
यस्येमे हिमवन्तो महित्वा यस्य समुद्रं रसया सहाहुः॥
यस्येमाः प्रदिशो यस्य बाहू कस्मै देवाय हविषा विधेम॥४॥
येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढा येन स्वः स्तभितं येन नाकः॥
योऽ अंतरिक्षे रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥५॥
यं क्रन्दसी अवसा तस्तभाने अभ्यैक्षेतां मनसा रेजमाने॥
यत्राधि सूरऽ उदितो विभाति कस्मै देवाय हविषा विधेम॥६॥
आपो ह यद् बृहतीर्विश्वमायन् गर्भं दधाना जनयन्तीरग्निम्॥
ततो देवानां समवर्ततासुरेकः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥७॥
यश्चिदापो महिना पर्यपश्यद् दक्षं दधाना जनयन्तीर्यज्ञम्॥
यो देवेष्वधि देव एक आसीत कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥८॥
मा नो हिंसीज्जनिताः यः पृथिव्या यो वा दिव सत्यधर्मा जजान॥
यश्चापश्चन्द्रा बृहतीर्जजान कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥९॥
प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परि ता बभूव॥
यत् कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम्॥१०॥

सृष्टि उत्पत्ति से पूर्व वह हिरण्यगर्भ उत्पन्न हुआ, उत्पन्न होते ही सभी प्राणियों का एकमात्र स्वामी हुआ, उसने पृथिवी और द्युलोक को धारण किया। जो हिरण्यगर्भ आत्म बल और भौतिक शारीरिक बल देने वाला है, अमृतत्व और मृत्युत्व छाया के समान जिसके वशवर्ती हैं जो अपनी महिमा से अकेले ही श्वास लेते हुए तथा पलक झपकाते हुए विश्व का स्वामी हो गया, जो इस दो पैरों वाले मनुष्य तथा चार पैरों वाले गाय, घोड़ा आदि पशुओं का स्वामी हुआ। जिसकी महिमा से ये पर्वत हैं, नदियों के साथ समुद्र भी जिसकी महती महिमा का यशो गान करते हैं, ये प्रधान दिशायें (पूर्व आदि चार दिशायें) और बाहु के समान कोण दिशायें (आग्नेय आदि चार कोण दिशायें) जिसकी महिमा को कहते हैं, हिरण्यगर्भ प्रजापति ने ही द्युलोक को ऊपर उठाया हुआ है और पृथिवी को स्थिर किया है, जिसने स्वर्ग लोक को ऊपर थामा हुआ है और सूर्य को ऊपर अन्तरिक्ष में

थामा है, जो आकाश में जलों को बनाने वाला है। संसार की रक्षा करने के हेतु से निर्माण करने के लिए स्थिर किये गये और प्रकाशमान होते हुये द्युलोक और पृथिवी लोक को वह अपने मन से देखता है, उस प्रजापति को आधार बना कर सूर्य उदय होकर प्रकाशित होता है। जब प्रजापति रूप गर्भ को धारण करती हुई तथा अग्नि को उत्पन्न करती हुई विशाल जलराशि विश्व में प्रसरित हुई, तब देवताओं का एक प्राणभूत वायु का प्रसरण हुआ।

सूर्य के समान तेज जिनके भीतर है वह परमात्मा सृष्टि की उत्पत्ति से पहले वर्तमान थे और वे ही परमात्मा जगत के एकमात्र स्वामी हैं वही परमात्मा जो इस भूमि और दूर लोग के धारण करता है उन्हें ईश्वर के लिए हम हवि का समर्पण करते हैं जो परमात्मा आत्मशक्ति और शारीरिक बल के प्रदाता है जिनके उत्तम शिक्षाओं का देवगण पालन करते हैं जिनके आश्रय से मोक्ष सुख प्राप्त होता है तथा जिनकी भक्ति और आश्रय न करना मृत्यु के समान है उन देव को हम हवि प्रदान करते हैं जो परमात्मा अपने महान सामर्थ्य से जगत के समस्त प्राणियों एवं चराचर जगत के एकमात्र स्वामी हुए तथा जो इन दो पैर वाले मनुष्य पक्षी और चार पैर वाले जानवरों के भी स्वामी हैं उन आनंद स्वरूप परमेश्वर के लिए हम भक्ति पूर्वक हवि अर्पित करते हैं जिन परमात्मा की महान सामर्थ्य से यह बर्फ से ढके पर्वत बने हैं जिनकी शक्ति से यह विशाल समुद्र निर्मित हुए हैं और जिनकी सामर्थ्य से बाहों के समान यह दिशाएं उप दिशाएं फैली हुई हैं उन सुखस्वरूप प्रजा के पालन करता दिव्य गुणों से सबल परमात्मा के लिए हम हवि समर्पण करते हैं जिन्होंने 2 लोग को तेजस्वी तथा पृथ्वी को कठोर बनाया जिन्होंने प्रकाश को स्थिर किया जिन्होंने सुख और आनंद को प्रदान किया जो अंतरिक्ष में लोगों का निर्माण करते हैं उन आनंद स्वरूप परमात्मा के लिए हम हवि अर्पित करते हैं उनके स्थान पर अन्य किसी का पूजा करने योग्य नहीं है बल से स्थिर होते हुए परंतु वास्तव में चलाएं मान गतिमान का अपने वाले अथवा तेजस्वी दो लोग और पृथ्वी लोक मनशक्ति से जिनको देखते हैं और जिनमें उदित होता हुआ सूर्य विशेष रूप से प्रकाशित होता है आनंद में परमात्मा के लिए हम हवि अर्पित करते हैं निश्चय ही गर्भ को धारण करके अग्नि को प्रकट करता हुआ अपार जलसमूह जब संसार में प्रकट हुआ तब उस गर्भ से देवताओं का एक प्रारूप आत्मा प्रकट हुआ उसे जल से उत्पन्न देव के लिए हम हवि समर्पित करते हैं जिन परमात्मा ने सृष्टि जल का सृजन किया और जिनके द्वारा ही जल में सृजन शक्ति पैदा हुई तथा सृष्टि रूपी यज्ञ उत्पन्न हुआ अर्थात या एक दृष्टि उत्पन्न हुई उन्हें एकमात्र अभियंता को हम हवि द्वारा अपनी अर्चना अर्पित करते हैं इस पृथ्वी और नभ को उत्पन्न करने वाले परमेश्वर हमें दुख न दें जिन परमात्मा ने आह्लादप्रद जल को उत्पन्न किया उन्हीं देव को हम हवि द्वारा अपनी सपर्या समर्पित करते हैं हे प्रजा के पालन करता आपका सभी प्राणियों में प्रसरण है, दूसरा कोई इन में प्रसरित नहीं है अन्य किसी से अपनी कामनाओं के लिए प्रार्थना करना उपयुक्त नहीं है जिस कामना से हम आहुति प्रदान कर रहे हैं वह पूरी हो और हम दान निमित्त प्राप्त धनों के स्वामी हो जाएं।

अतिलघूत्तरीय प्रश्न

1. हिरण्यगर्भ का तात्पर्य क्या है?।

2. हिरण्यगर्भ सूक्त कहां से उद्धृत है?।

3. उसकी छाया क्या कहलाती है?।

4. "क" स्वरूप क्या है?।

5. देवता किसके शासन को मानते हैं?।

उत्तर:-1.तेजोमयपिण्ड।2.ऋग्वेद10/121।3.कृपा।4.सुखस्वरूप।5.हिरण्यगर्भ का।

4.3.2. पुरुष सूक्त में हिरण्यगर्भ का प्रसरण

ऋग्वेद के दशम मंडल में, शुक्लयजुर्वेद के 31वें अध्याय में एवं अथर्ववेद के 19वें काण्ड के छठे सूक्त में तैतिरीयसंहिता, शतपथब्राह्मण, तैतिरीय आरण्यक, आदिमें किञ्चन पाठान्तर के सहित प्रायेण यथावत पुरुष सूक्त का पाठ उपलब्ध होता है। मुद्गलोपनिषद् में दो मन्त्र आधिक हैं जबकि ऋग्वेदीय पुरुष सूक्त तथा यजुर्वेदीय पुरुष सूक्त में 16 ऋचाएं हैं, ऋग्वेदीय पुरुष सूक्त के नारायण ऋषि तथा पुरुष देवता हैं जिसमें जगत का प्रसरण एक यज्ञ पुरुष से दर्शाया गया है। यहां पर ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य तथा शूद्र चारों वर्णो का उल्लेख प्राप्त होता है। यहां पर परमात्मा की विशिष्ट महत्ता का वर्णन किया गया है वह सर्वश्रेष्ठ पुरुष के रूप में प्राप्त होते हैं,और यह सृष्टि उस विराट पुरुष का मात्र चौथा अंशका प्रसरण है अर्थात् इस विश्व के रूप में उनका एक पाद ही प्रसरित हुआ है इसलिए वे ही सम्पूर्ण जड़ एवं चेतनमय दोनों को व्याप्त करते हैं एवं तृतीय अंश जो अवशिष्ट है वह द्युलोक में अमृत स्वरूप में है। वह पुरुष सहस्र सिर पाँव आदि अवयव वाला है, वे इस सम्पूर्ण विश्व की समस्त भूमि को सब ओर से व्याप्त करके दश अंगुल अर्थात् अनंत योजन ऊपर स्थित होकर ब्रह्माण्ड को व्याप्त करते हुए उससे भी परे हैं। वर्त्तमान, भूत तथा जो आगे होने वाला है वह सब हिरण्यगर्भ का प्रसरण है, इसके अतिरिक्त देव तथा अन्न से जीने वाले सभी के अनुशास्ता हैं। यह भूत, भविष्य तथा वर्त्तमान से अनुबद्ध सकल संसार हिरण्यगर्भ का प्रसरित वैभव है, अपने इस विभूति प्रसरण से भी वह महान है, वह हिरण्यगर्भ एक पाद ऐश्वर्य से पृथ्वी, जल, तेज, वायु एवं आकाशात्मक सम्पूर्ण जगत् है, हिरण्यगर्भ का शेष त्रैपादिक ऐश्वर्य नित्य दिव्य लोक हैं। उन्हीं हिरण्यगर्भ से ब्रह्माण्ड का प्रसरण हुआ, वे हिरण्यगर्भ रूप द्वारा अत्यन्त प्रकाशमान हुए बाद में भूलोकादि तथा देव, मानव एवं तिर्यक् का प्रसरण किया। उस सर्वहुत यज्ञपुरुष से खाद्य एवं पेय उत्पन्न हुआ है, उसने गति प्रधान पशुओं को बनाया जो ग्रामीण अथवा जंगली हैं । उस सर्वहुत हिरण्यगर्भ से ऋग्, यजुः, साम, गायत्री आदि छन्द, अश्व, पशु, गौ, एवं भेड़ बकरियाँ उत्पन्न हुई। उसी से सूर्य, चंद्र, देव, मनुष्य, पशु, पक्षी आदि उत्पन्न होते हैं, देवताओं ने उसी पुरुष का मानसिक याग के रूप में वसंत ऋतु को घृत, ग्रीष्म को ईंधन तथा शरद ऋतु को हव्य बनाकर यजन किया। उस हिरण्यगर्भ की नाभि से अंतरिक्ष, सिर से द्युलोक, पद से पृथ्वी एवं कानों से दिशाएँ तथा अन्य लोक उत्पन्न हुए। देवों ने यज्ञ से हिरण्यगर्भ का यजन किया वे प्रसिद्ध धर्म जगत् रूप विकारों के धारक मुख्य थे। उन महान ऋषियों ने यज्ञ के द्वारा सुखस्वरूप स्वर्ग को प्राप्त किया, जहाँ पूर्व साध्य और देवता निवास करते हैं। वे सब उन महान हिरण्यगर्भ से निस्सृत एवं उनका प्रसरण ही हैं। शुक्लयजुर्वेदीय माध्यन्दिन संहिता में पुरुष सूक्त के 16 मन्त्रों के बाद 6

मन्त्रों का समूह उत्तर नारायण सूक्त कहलाता है जहाँ पर कहा गया है कि जलों से संगृहीत पृथिव्यादि के प्रसरण के लिए हिरण्यगर्भ रूप को धारण करता हुआ सूर्य के रूप में उदित होता है वही पूर्व काल में मरण धर्मा का आजान देवत्व अर्थात् जन्म से ही देवता बना। वह हिरण्यगर्भ आभ्यन्तर में विराजमान है तथा उत्पन्न न होने वाला होकर भी अनेक प्रकार से प्रसरित होता है संयमी पुरुष ही उसके साक्षात्कार करते हैं। सम्पूर्ण अतल, वितल, सुतल, तलातल, रसातल, महातल, पातालादि तथा भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, महर्लोक, जनोलोक, तपोलोक एवं सत्यलोक उसीमें अवस्थित हैं। उस हिरण्यगर्भ परमात्मा की स्तुति करते हुए नारायण ऋषि कहते हैं कि समृद्धि और सौंदर्य तुम्हारी पत्नी के रूप में हैं, दिवस तथा रात्रि तुम्हारे पार्श्व भाग अर्थात् अगल बगल है, अनन्त नक्षत्र तुम्हारे रूप हैं, द्यावा-पृथ्वी तुम्हारे मुख स्थानीय प्रसरण हैं।

लघूत्तरीय प्रश्न

1. पुरुष सूक्त में मुखरूप किसका माना गया है?।
2. बाहू संज्ञक कौन हैं?।
3. ऊरूसे किसका प्रसरण हुआ?।
4. चरणों से किसका प्रसरण माना गया है?।
5. प्रथम धर्म क्या थे?।

उत्तर:-1.ब्राहमण।2.क्षत्रिय।3.वैश्य4.शूद्र।5.यज्ञ।

4.3.3. हिरण्यगर्भ परमात्मा की चार अवस्थाएं

विश्व, तेजस, प्राज्ञ, तथा प्रत्यगात्मा, ये चार अभिमान हैं और नेत्रस्थान, कंठस्थान, हृदयस्थान और मूर्धा, में चार स्थान हैं ॥ २ ॥ स्थूलभोग, प्रविविक्तभोग, आनन्दभोग, प्रानन्दावभास भोग-ये चार भोग चारों देहों के कहे गये हैं। अकार, उकार, मकार और अर्धमात्रा, ये चार मात्राएं चारों देहों की हैं । तम, रज, सत्व, शुद्ध सत्व, ये चार गुण चारों देहों के हैं । क्रियाशक्ति, द्रव्यशक्ति, इच्छा- शक्ति, ज्ञानशकि,-ये चार शक्तियां चारों देहों की हैं । ऐसे ये बत्तीस तत्व, सूक्ष्म और स्थूल देहों के मिलकर पचास तत्व, सब मिल कर इक्यासी तत्व हुए। इनके सिवा अज्ञान (कारणदेह) और ज्ञान (महाकारणदेह) हैं। इस प्रकार से ये सब तत्व जान कर उन्हें मायिक समझना चाहिए और अपने को साक्षी मान कर इस रीति से उनका निरसन करना चाहिए ।साक्षी ज्ञान को कहते हैं, ज्ञान से अज्ञान को पहचानना चाहिए और देह के साथ ज्ञानाज्ञान का निरसन कर देना चाहिए । ब्रह्मांड में जिन देहों की कल्पना की गई है उन्हें विराट और हिरण्यगर्भ कहते हैं। आत्मज्ञान और विवेक से उनका भी निरसन हो जाता है । आत्मानात्म-विवेक और सारासार-विचार करने से, पंचभूतों की मायिक वार्ता का बोध हो जाता है । अस्थि,, मांस, त्वचा, नाड़ी और रोम, ये पाँचो पृथ्वी के गुणधर्म हैं । प्रत्यक्ष अपने शरीर में ही इन सब को खोज कर देख लेना चाहिए शुक्र, शोणित, लार, मूत्र और खेद, ये आप के पाँच भेद हैं । तत्वों को समझ कर इनको स्पष्ट कर लेना चाहिए क्षुधा, तृषा, आलस्य, निद्रा, मैथुन, ये पाँचो तेज के गुण हैं । इन तत्वों का निरूपण बारवार करना चाहिए चलन, कलन, प्रसरण, निरोधन और आकुंचन-में पाँचो गुण

वायु के हैं, ॥ १५ ॥ काम, क्रोध, शोक, मोह और भय, आकाश के गुण हैं। बिना विवरण किये यह कुछ समझ में नहीं आता ऐसा यह स्थूल शरीर पच्चीस तत्वों का विस्तार है । अब सूक्ष्म देह का विचार करते हैं अन्तःकरण, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, ये पांच भेद आकाश के हैं व्यान, समान, उदान, प्राण, अपान-ये पाँचो भेद वायु- तत्व के हैं श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, जिव्हा, घ्राण-ये पाँचो तेज के भेद हैं वाक्, पाणि, पाद, शिश्न, गुद, ये जल के भेद हैं। अब पृथ्वी के भेद बतलाते हैं शब्द, स्पर्श,रूप,रस तथा गन्ध हैं।

तैत्तिरीयोपनिषद—

षष्ठ अनुवाक - स य एषोऽन्तर्हदय आकाशः। तस्मिन्नयं पुरुषो मनोमयः। अमृतो हिरण्मयः।

इस अनुवाकमें चार बातें कही गयी हैं, उनका पूर्व अनुवाकमें बतलाये हए उपदेशसे अलग-अलग सम्बन्ध है और उस उपदेशकी पूर्तिके लिये ही यह आरम्भ किया गया है, ऐसा अनुमान होता है।

पूर्व अनुवाकमें मनके अधिष्ठातृ-देवता चन्द्रमाको इन्द्रियोंके अधिष्ठातृदेवताओंका प्रकाशक बताया गया है और उसकी ब्रह्मरूपसे उपासना करनेकी युक्ति समझायी गयी है; वे मनोमय परब्रह्म-सबके अन्तर्यामी पुरुष कहाँ हैं; उनकी उपलब्धि कहाँ होती है-यह बात इस अनुवाकके पहले अंशमें समझायी गयी है। अनुवाकके इस अंशका अभिप्राय यह है कि पहले बतलाया हुआ जो यह हृदयके भीतर अङ्गुष्ठमात्र परिमाणवाला आकाश है, उसीमें ये विशुद्ध प्रकाशस्वरूप अविनाशी मनोमय अन्तर्यामी परम पुरुष परमेश्वर विराजमान हैं; वहीं उनका साक्षात्कार हो जाता है, उन्हें पानेके लिये कहीं दूसरी जगह नहीं जाना पड़ता।

अन्तरेण तालुके। य एष स्तन इवावलम्बते। सेन्द्रयोनिः। यत्रासौ केशान्तो विवर्तते। व्यपोह्य शीर्षकपाले। भूरित्यग्नौ प्रतितिष्ठति। भुव इति वायौ। सुवरित्यादित्ये। मह इति ब्रह्मणि।

उन पर ब्रह्म परमेश्वर को अपने हृदय में प्रत्यक्ष देखने वाला महापुरुष इस शरीर का त्याग करके जब जाता है तब किस प्रकार किस मार्ग से बाहर निकल कर किस क्रम से भूर् भुवः और स्वः रूप समस्त लोकों में परिपूर्ण सबके आत्मरूप परमेश्वर में स्थित होता है यह बात इस अनुवाक के दूसरे अंश में समझाई गई है भाव यह है कि मनुष्यों के मुख में तारों के बीचों बीच जो एक स्तन के आकार का मांस पिंड लटक रहा है जिसे बोलचाल की भाषा में घाँटी कहते हैं उसके आगे केसों का मूल स्थान ब्रह्मरंध्र है वहां हृदय देश से निकलकर घाँटी भी के भीतर से होती हुई दोनों जबड़ों को भेदकर गई हुई जो सुषुम्ना नाम से प्रसिद्ध नाड़ी है वही उन इंद्र नाम से कहे जाने वाले परमेश्वर की प्राप्ति का द्वार है अंत काल में वह महापुरुष उस मार्ग से शरीर के बाहर निकल कर इस नाम से अभिहित अग्नि में स्थित होता है गीता में भी यही बात कही गई है कि ब्रह्मा वेत्ता जब ब्रह्म लोक में जाता है तब वह सर्वप्रथम ज्योति में अग्नि के अभिमानी देवता के अधिकार में आता है उसके बाद वायु में स्थित होता है अर्थात पृथ्वी से लेकर सूर्यलोक तक समस्त आकाश में जिस का अधिकार है जो सर्वत्र विचरण वाली वायु का अभिमानी देवता है और जो भुवः नाम से पंचम अनुवाक में कहा गया है उसी के अधिकार में वह आता है वह देवता उसे स्वः इस नाम से कहे हुए सूर्य लोक में पहुंचा देता है वहां से फिर वह

महः इस नाम से कहे हुए ब्रह्म में स्थित हो जाता है।अर्थात उस महान हिरण्यगर्भ से प्रसरित महान आत्मा स्वकर्मानुसार पुनः हिरण्यगर्भ मे ही समाविष्ट होजाते हैं।

तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः संभूतः। आकाशाद्वायुः।वायोरग्निः। अग्नेरापः। अद्भ्यः पृथिवी।पृथिव्या ओषधयः। ओषधीभ्योऽन्नम्। अन्नात्पुरुषः।स वा एष पुरुषोऽन्नरसमयः।तस्येदमेव शिरः। अयं दक्षिणः पक्षः। अयमुत्तरः पक्षः। अयमात्मा। इदं पुच्छं प्रतिष्ठा।तदप्येष श्लोको भवति।

पहले आकाश तत्व उत्पन्न हुआ आकाश से वायु तत्व वायु से अग्नि तत्व अग्नि से जल तत्व और जल से पृथ्वी उत्पन्न हुई है पृथ्वी से नाना प्रकार की औषधियां अनाज के पौधे हुए और औषधियों से मनुष्य का आहार उत्पन्न हुआ उस अन्न से यह स्थूल मनुष्य शरीर रूप पुरुष उत्पन्न हुआ है

सोऽकामयत।बहुस्यां प्रजायेयेति। स तपोऽतप्यत। स तपस्तप्त्वा।इदं सर्वमसृजत। यदिदं किञ्च। तत् सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्। तदनुप्रविश्य। सच्च त्यच्चाभवत्। निरुक्तं चानिरुक्तं च। निलयनं चानिलयनं च।विज्ञानं चाविज्ञानं च। सत्यं चानृतं च सत्यमभवत्।यदिदं किं च। तत्सत्यमित्याचक्षते।तदप्येष श्लोको भवति॥

असद् वा इदमग्र आसीत्। ततो वै सदजायत।तदात्मानं स्वयमकुरुत।तस्मात् तत्सुकृतमुच्यत इति।यद्वै तत्सुकृतम्। रसो वै सः। रसं ह्येवायं लब्ध्वानन्दी भवति।

आदि में परब्रह्म परमात्मा ने यह विचार किया कि मैं नाना रूप में उत्पन्न होकर बहुत हो जाऊं यह विचार करके उन्होंने तैयार था जीवों के कर्मानुसार सृष्टि उत्पन्न करने के लिए संकल्प किया संकल्प करके यह जो कुछ भी देखने सुनने और समझने में आता है उसे जड़ चेतन में समस्त जगत की रचना की अर्थात इस का संकल्प मैं स्वरूप बना लिया उसके बाद स्वयं भी उस में प्रविष्ट हो गए यद्यपि अपने से ही उत्पन्न इस जगत में वह परमेश्वर पहले से ही प्रवेश थे यह जगत जब उन्हीं का स्वरूप है तब उसमें उनका प्रविष्ट होना नहीं बनता तथापि जड़ चेतन में जगत में आत्मा रूप से परिपूर्ण हुए उन पर ब्रह्म परमेश्वर के विशेष स्वरुप उनके अंतर्यामी स्वरूप का लक्ष्य कराने के लिए यहां यह बात कही गई है कि इस जगत की रचना करके वह स्वयं भी उस में प्रविष्ट हो गए प्रविष्ट होने के बाद भी मूर्त और अमूर्त रूप से अर्थात देखने में आने वाले पृथ्वी जल और तेज इन भूतों के रूप में तथा वायु और आकाश इन न दिखाई देने वाले भूतों के रूप में प्रकट हो गए फिर जिनका वर्णन किया जा सकता है और नहीं किया जा सकता है ऐसे विभिन्न नाना पदार्थों के रूप में हो गए इसी प्रकार आश्रय देने वाले और आश्रय न देने वाले चेतन और जड़ इन सब के रूप में वे एकमात्र परमेश्वर बहुत से नाम और रूप धारण करके प्रसरित हो गए वह एक सत्य स्वरूप परमात्मा ही सत्य और झूठ इन सब के रूप में हो गए इसलिए ज्ञानी जन कहते हैं कि यह जो कुछ देखने सुनने और समझने में आता है वह सब का सब सत्य स्वरूप परमात्मा हिरण्यगर्भ ही हैं।

वह परब्रह्म परमात्मा सचमुच रस स्वरूप आनंद में है यही वास्तविक आनंद है क्योंकि अनादि काल से जन्म मृत्यु रूप घोर दुःख का अनुभव करने वाला यह जीवात्मा इन रस में परब्रह्म को पाकर ही आनंद युक्त होता है जब तक इन परंपरा पर आनंद स्वरूप परमेश्वर से इसका सहयोग नहीं हो जाता तब तक इसे किसी भी स्थिति

में पूर्ण आनंद नित्यानंद अखंड आनंद और आनंद आनंद नहीं मिल सकता इसी से वह वास्तविक आनंद स्वरूप परमात्मा का अस्तित्व में संदेह होता है क्योंकि यदि यह आकाश की भांति व्यापक आनंद स्वरूप परमात्मा नहीं होते तो कौन जीवित रह सकता और कौन प्राणों की क्रिया हिलना डुलना आदि कर सकता अर्थात समस्त प्राणी सुखद और परमात्मा के ही सहारे जीते और हलचल करते हैं यह सब हिरण्यगर्भ स्वरूप परमेश्वर का क्रीडामय प्रसरण है।

बहुविकल्पीय प्रश्न -

1. हिरण्यगर्भ का प्रसरण सर्व प्रथम रूप में हुआ।

(क)जल (ख) स्थल

(ग)आकाश (घ) वायु

2.तालु के आगे जो मांसपिण्ड स्तन जैसे लटका हुआ है उसके अन्दर से जाने वाली नाड़ी है।

(क) इडा। (ख)पिंगला।

(ग) सुषुम्णा । (घ) तीनों

3.आकाश से उत्पन्न हुआ।

(क)वायु। (ख) अग्नि।

(ग) चन्द्रमा। (घ)सूर्य।

4.विश्व,तेजस्,प्राज्ञ, प्रत्यगात्मा चार रूप हैं।

(क) नदी के। (ख) वृक्ष के।

(ग) जल के। (घ) हिरण्यगर्भ के।

5."तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्," किसके लिए
कहा जाता है।

(क) सूर्य। (ख)चन्द्र।

(ग) वायु। (घ) हिरण्यगर्भ।

उत्तर:- 1.ग.आकाश।

2.ग.सुषुम्णा। 3.क.वायु।

4. घ.हिरण्यगर्भके।5.घ.हिरण्यगर्भ।

4-3-4 श्वेताश्वतरोपनिषद् में हरण्यगर्भ का प्रसरण

तमेकनेमिं त्रिवृतं षोडशान्तं शतार्धारं विंशतिप्रत्यराभिः।
अष्टकैः षड्भिर्विश्वरूपैकपाशं त्रिमार्गभेदं द्विनिमित्तैकमोहम्॥

परम देव परमेश्वर की स्वरूपभूता अचिंत्यशक्ति का दर्शन करने वाले वे ऋषि जन कहते हैं हमने एक ऐसे चक्र को देखा है जिसमें एक नेमी है नेमी उस गोल घेरे को कहते हैं जो चक्र के अरों और नाभि आदि सभी

अवयवों को वेष्टित किए रहती है तथा यथा स्थान बनाए रखती है यहां अब प्रकृति को ही नेमी कहा गया है क्योंकि वही इस व्यक्त जगत का मूल अथवा आधार है जिस प्रकार चक्के की रक्षा के लिए उस नेमी के ऊपर लोहे का घेरा चढ़ा रहता है उसी प्रकार इस संसार चक्र की अव्याकृत प्रकृति रूप नेमी के ऊपर सत्व रज और तम यह तीन गुण ही तीन घेरे हैं या पहले ही कहा है कि भगवान की वह अचिंत्य शक्ति तीन गुणों से ढकी है जिस प्रकार चक्के की नेमी अलग-अलग घेरों के जोड़े से बनती है उसी प्रकार संसार रूप चक्र की प्रकृति रूप नेमी के मन बुद्धि और अहंकार तथा आकाश वायु तेज जल और पृथ्वी यह आठ सूक्ष्म तत्व और उनके ही 8 स्थूल रूप इस प्रकार 16 सिरे हैं जिस प्रकार चक्र में अरे लगे रहते हैं जो एक ओर से नेमि के टुकड़ों में जुड़े रहते हैं और दूसरी ओर से चक्के की नाभि में जुड़े होते हैं उसी प्रकार इस संसार चक्र में अंतःकरण की वृत्तियों से 50 भेद तो 50 अरों की जगह है और पांच महाभूतों के कार्य दस इंद्रियां पांच विषय और पांच प्राण यह 20 सहायक अरों की जगह है इस चक्के में आठ आठ चीजों के षटसमुह अंगरूप में विद्यमान है इन्हीं को ६अष्टकों के नाम से कहा गया है, जीवों को इस चक्र में अवस्थित रखने वालीअनेक नाम रूपों में प्रकट आसक्ति रुप एक पाश है। देवयान, पितृयान से कहा गया है । और इसी लोक में एक योनि से दूसरी योनि में जाने का मार्ग इस प्रकार ये 3 मार्ग है पुण्य कर्म और पाप कर्म यह दो इस जीव को इसके साथ-साथ घुमाने में निमित्त हैं और जिसमें अरे टं◌ँगे रहते हैं उस नाभि के स्थान में अज्ञान है जिस प्रकार नाभि ही चक्के का केंद्र है उसी प्रकार अज्ञान इस जगत का केंद्र है।

पञ्चस्रोतोम्बुं पञ्चयोन्युग्रवक्रां पञ्चप्राणोर्मिं पञ्चबुद्ध्यादिमूलाम्।
पञ्चावर्तां पञ्चदुःखौघवेगां पञ्चाशद्भेदां पञ्चपर्वामधीमः॥

वे ब्रह्मर्षि कहते हैं कि हम एक ऐसी नदी को देख रहे हैं जिसमें पांच ज्ञानेंद्रियां ही पांच स्रोत हैं संसार का ज्ञान हमें पांच ज्ञानेंद्रियों द्वारा ही होता है इन्हीं में से होकर संसार का प्रवाह रहता है इसलिए इंद्रियों को यहां स्रोत कहा गया है इंद्रियां पंच सूक्ष्मभूतों (तन्मात्राओं) से उत्पन्न हुई हैं, इसीलिए इस नदी के पांच उद्गम स्थान माने गए हैं इस नदी का प्रवाह बड़ा ही भयंकर है इस में गिर जाने से बार-बार जन्म मृत्यु का क्लेश उठाना पड़ता है संसार की चाल बड़ी टेढ़ी है कपट से भरी है। इसमें निकलना कठिन है। इसलिए इस संसार रूप नदी को वक्र कहा गया है ।जगत के जीवो में जो कुछ भी चेष्टा हलचल होती है वह प्राणों के द्वारा ही होती है इसलिए प्राणों को इस भव सरिता की तरंगमाला कहा गया है ।नदी में हलचल तरंगों से ही होती है पांच ज्ञानेंद्रियों के द्वारा होने वाले चाक्षुष आदि पाँच प्रकार के ज्ञानों का अआदि कारण नमन है जितने भी ज्ञान हैं सब मन की ही तो वृत्तियां हैं मन ना हो तो इंद्रियों के सचेत रहने पर भी किसी प्रकार का ज्ञान नहीं होता यह मन ही संसार रूप नदी का मूल है मन से ही संसार की सृष्टि होती है सारा जगत मन की ही कल्पना है मन के अमन हो जाने पर नाश हो जाने पर जगत का अस्तित्व इस रूप में नहीं में नहीं रहता जब तक मन है तभी तक संसार चक्र है। इंद्रियों के शब्द स्पर्श आदि पांच विषय ही इस संसार रूप नदी में आवर्त अर्थात भंवर है। इन्हीं में फंसकर जीव जन्म मृत्यु के चक्कर में पड़ जाता है। गर्भ का दुःख जन्म का दुःख, बुढ़ापे का दुःख, रोग का दुःख मृत्यु का

दुःख ये ५ प्रकार के दुःख ही इस नदी के प्रवाह में वेग रूप हैं। इन्हीं के थपेड़ों से जीव व्याकुल रहता है और इस योनि से उस योनि में भटकता रहता है। अविद्या =अज्ञान अस्मिता =अहंकार राग= प्रिय बुद्धि, द्वेष =अप्रिय बुद्धि और अभिनिवेश =मृत्युभय ये पांच प्रकार के क्लेश ही संसार रूप नदी के पांच पर्व = विभाग हैं इन्हीं पांच विभागों में या जगत बटा हुआ है। इन पांचों का समुदाय ही संसार का स्वरूप है और अंतःकरण की 50 वृत्तियां ही इस नदी के 50 भेद हैं अर्थात भिन्न भिन्न रूप हैं अंतःकरण की वृत्तियों को लेकर ही संसार में भेद की प्रतीति होती है।

सर्वाजीवे सर्वसंस्थे बृहन्ते अस्मिन्हंसो भ्राम्यते ब्रह्मचक्रे।
पृथगात्मानं प्रेरितारं च मत्वा जुष्टस्ततस्तेनामृतत्वमेति॥

जो सबके जीवन निर्वाह का हेतु है और जो समस्त प्राणियों का आश्रय है, ऐसे इस जगत रूप ब्रह्म चक्र में अर्थात परब्रह्म परमात्मा द्वारा संचालित तथा परमात्मा के ही विराट शरीर रूप संसार चक्र में यह जीवात्मा अपने कर्मों के अनुसार उन परमात्मा द्वारा घुमाया जाता है ।जब तक यह इसके संचालक को जानकर उनका कृपा पात्र नहीं बन जाता अपने को उनका प्रिय नहीं बना लेता तब तक इसका इस चक्र से छुटकारा नहीं हो सकता। जब या अपने को और सब के प्रेरक परमात्मा को भलीभांति पृथक - पृथक समझ लेता है कि उन्हीं के घुमाने से मैं इस संसार चक्र में घूम रहा हूं और उन्हीं की कृपा से छूट सकता हूं। तब तक वह परमेश्वर का प्रिय बनकर उनके द्वारा स्वीकार कर लिया जाता है फिर तो वह अमृत भाव को प्राप्त हो जाता है जन्म मरण रूप संसार चक्र से सदा के लिए छूट जाता है परम शांति एवं सनातन दिव्य परमधाम को प्राप्त हो जाता है।इस प्रकार उस तेजोमय हिरण्यगर्भ के लीलामय प्रसरण को जानना चाहिए।

ज्ञाज्ञौ द्वावजावीशनीशावजा ह्येका भोक्तृभोग्यार्थयुक्ता।
अनन्तश्चात्मा विश्वरूपो ह्यकर्ता त्रयं यदा विन्दते ब्रह्ममेतत्॥

ईश्वर सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान है जीव अल्पज्ञ और अल्प शक्ति वाला है यह दोनों ही अजन्मा है इनके सिवा एक तीसरी शक्ति भी अजन्मा है जिसे प्रकृति कहते हैं या भोगता जीवात्मा के लिए उपयुक्त भोग सामग्री प्रस्तुत करती है यद्यपि यह तीनों ही अजन्मा है अनादि हैं फिर भी ईश्वर इन दो तत्वों से विलक्षण है क्योंकि वह परमात्मा अनंत है संपूर्ण विश्व उन्हीं का स्वरूप विराट शरीर है। वह सब कुछ करते हुए संपूर्ण विश्व की उत्पत्ति पालन और संहार करते हुए भी वास्तव में कुछ नहीं करते क्योंकि वह कर्तापनके अभिमान से रहित हैं। मनुष्य जब इस प्रकार इन तीनों की विलक्षणता और विभिन्नता को समझते हुए ही इन्हें ब्रह्म रूप में उपलब्ध कर लेता है अर्थात प्रकृति और जीव तो उन परमेश्वर की कृतियां है और परमेश्वर इनके स्वामी हैं इस प्रकार प्रत्यक्ष कर लेता है तब वह सब प्रकार के बंधनों से मुक्त हो जाता है।

ऐतरेयोपनिषद् 1. 1.

ॐ आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीन्नान्यत्किञ्चन मिषत्। स ईक्षत लोकान्नु सृजा इति ॥ स इमँल्लोकानसृजत । अम्भो मरीचीर्मरमापोऽदोम्भः परेण दिवं द्यौः प्रतिष्ठान्तरिक्षं मरीचयः पृथिवी मरो या अधस्तात्ता आपः ॥ स ईक्षतेमे नु लोका लोकपालान्नु सृजा इति॥ सोऽद्भ्य एव पुरुषं समुद्धृत्यामूर्च्छयत् ॥

जगत् का कर्ता अभिज्ञ होना चाहिए प्रकृति तो जड़ है। वैसे प्रकृति जगत का कारण हो सकती थी, क्योंकि उसकी अनुगति देखी जाती है। परन्तु सुख-दुःख-मोहात्मिका प्रकृति तो जड़ है। वह अभिज्ञ नहीं है। जगत्कर्ता अभिज्ञ होना चाहिए, सर्वज्ञ होना चाहिए। जगत्कारण ब्रह्म में ही

ईक्षितृत्व श्रुत है। जड़ प्रधान में नहीं- ईक्षतेर्ना शब्दम् श्रुतिप्रतिपादित न होने के कारण प्रधान जगत कारण नहीं है। क्योंकि 'ईक्षते' = तदैक्षत' इस श्रुति में जगत का कारण ईक्षणकर्ता कहा गया है। जड़ प्रधान में ईक्षण-कर्तृत्व संभव नहीं हैं।

'तदैक्षत बहुस्यां प्रजायेयेति तत्तेजोअसृजत'उसने ईक्षण किया- मैं अनेक हो जाऊँ, अर्थात अनेक प्रकार से उत्पन्न होऊँ। इस प्रकार ईक्षण कर उसने तेज उत्पन्न किया। वह तेज हिरण्यगर्भ कहलाता है तथा दृश्यमान जगत् ही उसका प्रसरण है।

आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत्। नान्यत्किंचिन मिषत्। स ईक्षत लोकान्नुसृजा इति। स इमाँल्लोकानसृजत।। आरम्भ में सृष्टि रचना से पूर्व, एकमात्र आत्मा ही था। उससे अतिरिक्त अन्य कोई स्वतन्त्र वस्तु न थी। उसने ईक्षण किया कि लोकों की रचना करूँ, उसने अम्भ, मरीचि आदि ऋषिगण तथा लोकों की रचना की। इस तरह परमात्मा ने विचार किया 'मैं एक हूँ, अनेक हो जाऊँ।' तो प्रकृति क्या विचार करेगी ?। जड़ प्रकृति विचार नहीं कर सकती। 'जानाति, इच्छति अथ करोति' यह नियम है- पहले कोई जानता है, जानने के बाद इच्छा करता है, फिर उसे क्रिया रूप में परिणत करता है। जो ज्ञानवान नहीं है, इच्छावान नहीं है, स्वयं क्रियावान नहीं, वह विश्व प्रपंच का निर्माता नहीं हो सकता। प्रकृति, ज्ञानवान, इच्छावान, क्रियावान नहीं है। इसलिए वह जगत का कारण नहीं हो सकती। परमात्मा सर्वज्ञ-सर्वशक्तिमान-ज्ञानवान-इच्छावान-क्रियावान है, वही विश्व प्रपंच का कारण है। वही जगत का कारण है। 'स्वराट्' स्वराट् जीव चेतन अवश्य है, परन्तु अल्पज्ञ है। जगत निर्माण के लिए जितना ज्ञान होना चाहिए उतना ज्ञान जीव को नहीं। शंका हुई- जगत कारण 'हिरण्यगर्भ' होगा? उसकी महिमा तो अद्भुत है। उसके जगत कारण होने में भला क्या आपत्ति है- हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत। वह तो जीवों का स्वामी है। परन्तु हिरण्यगर्भ को भी ज्ञान परमेश्वर के द्वारा होता है। ब्रह्मा या हिरण्यगर्भ को स्वतः ज्ञान नहीं होता है।

धरती पर जीवन की उत्पत्ति के कई कारण हैं। जहां एक और धरती पर जीवन आकाशीय तत्वों के माध्यम से शुरू हुआ, वहीं जल में जीवन की उत्पत्ति निर्जीव पदार्थों से अपने आप प्राकृतिक रूप से होती रही है। सबसे पहले हिरण्यगर्भ उत्पन्न हुआ अर्थात जल का गर्भ। हालांकि इससे पूर्व भी कुछ था, जो शून्य था। सूर्य के प्रकाश के कारण हिरण्यगर्भ बना। इसीलिए हिरण्यगर्भ को स्वर्णाण्ड कहा जाता है। वैज्ञानिक कहते हैं कि प्रकाश संश्लेषण की क्रिया का इसमें सबसे बड़ा योगदान रहा।

जिस तरह हिरण्यगर्भ से ब्रह्मांड आदि ग्रह-नक्षत्रों की उत्पत्ति हुई उसी तरह अगले हिरण्यगर्भ से धरती पर जीवों की उत्पत्ति हुई, जैसे बीज (गर्भ) से वृक्ष निकला और वृक्षों पर हजारों फल के बीच में पुन: बीज (गर्भ) उत्पन्न हो गया।

जब धरती ठंडी होने लगी तो उस पर बर्फ और जल का साम्राज्य हो गया। तब धरती पर जल ही जल हो गया। संपूर्ण धरती जल में करोड़ों वर्षों तक डूबी रही। इस जल में ही जीवन की उत्पत्ति हुई। आत्मा ने ही खुद को जल में व्यक्त किया फिर जल में ही जलरूप बना और उस जलरूप ने ही करोड़ों रूप धरे। आत्मा को ब्रह्म स्वरूप कहा गया है।

ऋग्वेद में आप: (जल) को जीवन उत्पत्ति के मूल क्रियाशील प्रवाह के रूप में व्यक्त किया है, वही हिरण्यगर्भ रूप है। इस हिरण्यगर्भ रूप में ब्रह्म का संकल्प बीज पककर विश्व-रूप बनता है। इसी हिरण्यगर्भ से विराट पुरुष (आत्मा) एवं उसकी इन्द्रियों की उत्पत्ति होती है और उसकी इन्द्रियों से देवताओं का सृजन होता है। यही जीवन का विकास-क्रम है।

सर्वप्रथम हिरण्यगर्भ से अंडे के रूप का एक मुख प्रकट हुआ। मुख से वाक् इन्द्रिय, वाक् इन्द्रिय से 'अग्नि' उत्पन्न हुई, तदुपरांत नाक के छिद्र प्रकट हुए। नाक के छिद्रों से 'प्राण' और प्राण से 'वायु' उत्पन्न हुई। फिर नेत्र उत्पन्न हुए। नेत्रों से चक्षु (देखने की शक्ति) प्रकट हुए और चक्षु से 'आदित्य' प्रकट हुआ। फिर 'त्वचा', त्वचा से 'रोम' और रोमों से वनस्पति-रूप 'औषधियां' प्रकट हुईं। उसके बाद 'हृदय', हृदय से 'मन, 'मन' से 'चन्द्र' उदित हुआ। तदुपरांत 'नाभि', 'नाभि' से 'अपान' और अपान से 'मृत्यु' का प्रादुर्भाव हुआ। फिर 'जननेन्द्रिय', 'जननेन्द्रिय' से 'वीर्य' और वीर्य से 'आप:' (जल या सृजनशीलता) की उत्पत्ति हुई।

यहां वीर्य से पुन: 'आप:' की उत्पत्ति कही गई है। यह आप: ही सृष्टिकर्ता का आधारभूत प्रवाह है। वीर्य से सृष्टि का 'बीज' तैयार होता है। उसी के प्रवाह में चेतना-शक्ति पुन: आकार ग्रहण करने लगती है। सर्वप्रथम यह चेतना-शक्ति हिरण्य पुरुष के रूप में सामने आई।

रिक्त स्थान की पूर्ति

1. सर्वप्रथम…….. ने इच्छा की मैअनेकविध होजाऊं्ँ।
2. मुख से वाग् इन्द्रिय उत्पन्न हुई तथा वाक् से……. उत्पन्न हुए।
3. जीव और प्रकृति ईश्वर की……. हैं।
4. जगत् का कर्ता…...है।
5. हिरण्यगर्भ को ज्ञान स्वत:....होता है।

रिक्त स्थानों की पूर्ति:-

1.परमेश्वर। 2.अग्नि।

3.रचना।4.अभिज्ञ हिरण्यगर्भप्रजापति।

5.नहीं।

4-4 सारांश –

इस ब्रह्मांड में भूगोल में दृश्य मान नदी- नद, पर्वत, समुद्र, तालाब, वन और वृक्ष-वनस्पति आदि संपदा जो दिखाई दे रही है। यह सब उस परब्रह्म परमेश्वर की इच्छा का परिणाम है। अनंत आकाश में अनेक नीहारिकाएं , शिशुमार, ध्रुव, सूर्य- चंद्र आदि तारागण, तथा स्वर्ग में इंद्रादिक देवगण अप्सराएं तथा उनके बिहार आदि के लिए रमणीय दिव्य उद्यान कल्पवृक्षादि तथा भू लोक में मनुष्य ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र तथा नाना प्रकार के जीवों का प्रसरण पुण्य, पाप, धर्म, अधर्म, हानि ,लाभ, जीवन, मरण, यश ,अपयश, राजा ,रंक ,दिन ,रात ,पक्ष ,मास, ,संवत्सर ,द्युलोक, अंतरिक्षलोक और पृथ्वीलोकादि सभी का प्रसरण महानतम हिरण्यगर्भ प्रजापति से हुआ है।इसे हिरण्यगर्भ का ही प्रसरण जानना चाहिए|

4-5 पारिभाषिक शब्दावली

पुरोदृश्यमान पुर: अर्थात आगे , दृश्यमान=दिखाई देने वाला पदार्थ।

रेतस् =वीर्य, जीवनशक्ति।

मन्त्रदृक्= मन्त्रों को हृदय प्रदेश में अनुभव करने वाले वैदिक ऋषि।

पाठान्तर =अन्य पाठ, पाठ भेद।

अनुशास्ता=शासक।

अनुबद्ध =जुड़ा हुआ।

सर्वहुत= सर्वमान्य।

स्थूलभोग= शरीर के लिए उपयुक्त।

प्रविविक्तभोग=ब्रह्मानन्द।

आनन्दभोग=सुख।

प्रानन्दावभास भोग=सुख स्वरूप की मानस अनुभूति।

अङ्गुष्ठमात्र=अङ्गुष्ठ परिमाण।

ब्रह्मचक्र= संसार।

ईक्षितृत्व=द्रष्टा भाव।

स्वराट् =इन्द्र।

4-6 सन्दर्भ ग्रन्थों की सूची -

1- ब्रह्माण्ड और सौर परिवार, प्रो- देवी प्रसाद त्रिपाठी, परिक्रमा प्रकाशन दिल्ली, 2006

2- सृष्ट्युत्पत्ति की वैदिक परिकल्पना, विष्णुकान्त शर्मा, प्रतिभा प्रकाशन दिल्ली, 2008

3- सृष्टि उत्पत्ति - रामनाथ गुप्ता, मीरा प्रकाशन, 2019

4- वेद-विज्ञान चिन्तन, प्रो- बृजबिहारी चौबे, कात्यायन वैदिक साहित्य प्रकाशन, होशियारपुर, 2005

5- वेद विज्ञान, स्वामी प्रत्यगात्मानन्द स्वामी, अनुवादिका डा- उर्मिला शर्मा, विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी, 2012

6- ईशादि नौ उपनिषद् व्याख्याकार –हरिकृष्ण गोयन्दका ,गीताप्रेस गोरखपुर संवत् 2073

1-7 निबन्धात्मक प्रश्न

1- हिरण्यगर्भ सूक्त का विवेचन करें।

2- पुरुष सूक्त का विशदी करण करें ।

3- आत्मतत्त्व का विस्तृत समालोचन कर। कव के बंधन एवं मोक्ष का स्पष्टीकरण करें।

4- हिरण्यगर्भ को जानने वाले जन्म- मरण के चक्र से मुक्त होकर परमानंद में रहते हैं को स्पष्ट करें।

5- पठित इकाई के अनुसार हिरण्यगर्भ का प्रसरण स्पष्ट करें।

इकाई 5- वैदिकसाहित्य में ब्रह्माण्डोत्पत्ति के सिद्धान्त

इकाई की रूपरेखा

5-1 प्रस्तावना

5-2 उद्देश्य

5-3 मुख्य भाग

5-3-1 उपखण्ड एक - ब्रह्माड का स्वरूप

5-3-2 उपखण्ड दो - ब्रह्माण्ड के सदस्य

5-3-3 उपखण्ड तीन - आधुनिक खगोलशास्त्र में ब्रह्माण्डोत्पत्ति के सिद्धान्त

5-3-5 उपखण्ड पाँच - वैदिक वाङ्मय में ब्रह्माण्डोत्पत्ति के सिद्धान्त

5-4 सारांश

5-5 पारिभाषिक शब्दावली

5-6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

5-7 सन्दर्भ ग्रन्थों की सूची

5-8 सहायक उपयोगी सामग्री

5-9 निबन्धात्मक प्रश्न

5-1 प्रस्तावना—

ब्रह्माण्ड का विकास इस प्रकार से हुआ है कि समय के साथ इसमें ऐसे जीव (मनुष्य) उपजें जो अपनी उत्पत्ति के रहस्य को जानने में समर्थ थे। ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति कब और कैसे हुई ? क्या यह सदैव से अस्तित्व में था या इसका कोई प्रारम्भ भी था ? इसकी उत्पत्ति से पूर्व क्या था? क्या इसका कोई जन्मदाता भी है ? यदि ब्रह्माण्ड का कोई जन्मदाता है तो पहले ब्रह्माण्ड का जन्म हुआ या उसके जन्मदाता का? यदि पहले ब्रह्माण्ड का जन्म हुआ तो उसके जन्म से पहले उसका जन्मदाता कहाँ से आया ? इस विराट ब्रह्माण्ड की मूल संरचना कैसी है ? ब्रह्माण्ड का भावी परिदृश्य (भविष्य) क्या होगा ? ब्रह्माण्ड के सदस्य कौन कौन हैं ? - ये कुछ ऐसे मूलभूत प्रश्न हैं जो आज भी उतने ही प्रासंगिक है जितने सदियों पूर्व थे। ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति से सम्बंधित इन मूलभूत प्रश्नों के उत्तर धर्माचर्यों, दार्शनिकों, और वैज्ञानिकों ने सप्रमाण दिए है। अधिकांश धर्मों मे ब्रह्माण्ड के रचयिता के रूप में ईश्वर की परिकल्पना भी की गई तथा उसी ईश्वर ने अस ब्रह्माण्ड की रचना की। आधुनिक वैज्ञानिकों ने ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति के चार सिद्धान्त बताए हैं। इसी प्रकार वैदिक वाङ्मय में भी ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति के सिद्धान्तों को चार भागों में विभक्त किया है। इस इकाई में आप ब्रह्माण्ड के स्वरूप, आकृति, ब्रह्माण्ड में रहने वाले सदस्यों तथा आधुनिक विज्ञान के अनुसार एवं वैदिक वाङ्मय में वर्णित ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति के सिद्धान्तों के विषय में विस्तार से पढ़ेंगे।

5-2 उद्देश्य -

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप -

1- ब्रह्माण्ड के स्वरूप का विस्तार से वर्णन करने में समर्थ होंगे।

2- ब्रह्माण्ड के सदस्यों के विषय में ज्ञान प्राप्त करेंगे।

3- आधुनिक खगोलशास्त्र में ब्रह्माण्डोत्पत्ति के सिद्धान्तों की व्याख्या कर सकेंगे।

4- वेदों में ब्रह्माण्डोत्पत्ति के सिद्धान्तों के विषय में ज्ञान प्राप्त करेंगे।

5- वेदोत्तर साहित्य में ब्रह्माण्डोत्पत्ति के सिद्धान्तों को बताने में समर्थ होंगे।

5-3-1 ब्रह्माड का स्वरूप -

ब्रह्माण्ड शब्द का व्यवहार विश्व शब्द से भी होता है। जहाँ भौतिकशास्त्र के नियमों का प्रयोग होता है। उसे ही भौतिक विश्व कहते हैं। यह विश्व दो प्रकार का उपलब्ध होता है-सूक्ष्म और स्थूल, सूक्ष्म विश्व में विद्युत कणों का संघात है, जिनकी संज्ञा आधुनिक वैज्ञानिकों द्वारा प्रोटोन, इलेक्ट्रोन, न्यूट्रान नाम से की गई है। प्रोटोन को धन विद्युत कण एवं इलेक्ट्रोन को ऋण विद्युत कण कहते हैं। न्यूट्रान शून्य विद्युत कण है। इन विद्युत कणों के संख्या-भेद से विभिन्न मूल द्रव्यों का जन्म होता है। तापमान परिस्थिति-भेद से विभिन्न मूल तत्वों की उत्पत्ति हो कर स्थूल विश्व के रूप में दिखाई देते हैं। सूक्ष्म विश्व में विद्युत चुम्बक क्षेत्र की अदृश्य तरंगें भी विद्यमान हैं। मूर्त्त द्रव्य की तीन प्रकार की अवस्थाएँ होती हैं - तरल जैसे - जलादि वस्तुएँ, गैस जैसे - धूम वाष्प आदि दृढ़कायरूप - जैसे-मिट्टी पत्थर आदि। स्थूल विश्व में प्रायः मूर्त्तद्रव्यों का दर्शन होता है। यहीं स्थूल जगत के

गोलीय पिण्डों का दर्शन होता है। स्थूल एवं सूक्ष्म विश्व का विवेचन आधुनिक प्राचीन दोनों विधियों से पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होता है।

प्राचीन-कालीन मानव को ब्रह्माण्ड का ज्ञान था। इस तथ्य के साक्षी के रूप में सम्पूर्ण वैदिक वाङ्मय को देखा जा सकता है। वैदिक वाङ्मय के अन्तर्गत, ब्रह्माण्डोत्पत्ति, ग्रह, नक्षत्र, तारे, सूर्य, चन्द्र और पृथ्वी का व्यापक उल्लेख प्राप्त होता है। ब्रह्माण्ड को गगन, व्योम, नभ, आकाश और अन्तरिक्ष आदि उपनामों से वर्णित किया है। ब्रह्माण्ड के सभी पिण्डों पर गुरुत्वाकर्षण-बल का प्रभाव पड़ता है तथा इसी गुरुत्वाकर्षण-बल के कारण ब्रह्माण्ड का प्रत्येक पिण्ड आश्चर्यजनक रूप से अपने स्थान पर स्थित है। आर्चाय भास्कर ने सिद्धान्तशिरोमणि नामक ग्रन्थ में गुरुत्वाकषर्ण शक्ति का उल्लेख किया है।

आधुनिक वैज्ञानिकों ने विश्व की कल्पना वलयाकार आकृति में की है परन्तु यह कल्पना भी नवीन नहीं है। अन्य प्राचीन ग्रन्थों पर दृष्टिपात करने पर पता चलता है कि शैव ग्रन्थों में ब्रह्माण्ड को लोक-अलोक तथा पुराणों में इहलोक तथा परलोक का सम्मिलित स्वरूप माना गया है। ब्रह्माण्ड-पुराण में लोकों की संख्या मुख्यतया 2 बतायी गयी है। जिसे ऊपरी लोक तथा निचला लोक बताकर कुल 14 उपलोकों में बांटा गया है। जैन-दर्शन में ब्रह्माण्ड की आकृति बेलन जैसी बताई गयी है जबकि ब्रह्माण्ड-पुराण में ब्रह्माण्ड की आकृति दीर्घ वृत्तीय बतायी गयी है। भास्कराचार्य ने अपने सिद्धान्त शिरोमणि में प्रस्तुति की है कि ब्रह्माण्ड का आकार 'सम्पुट कटाहवत्' (दो कढाइयों को मिलाने से जो आकृति बनती है) कहा है। भास्कराचार्य ने कटाहसम्पुटाकार ब्रह्मांड का व्यासमान 18712069200000000 योजन माना जो कि आइन्स्टीन के व्यासमान से कुछ न्यून है परन्तु यदि प्रसरणशील प्रक्रिया को स्वीकार किया जाए तो भास्कराचार्य का व्यासमान न्यून ही होगा क्योंकि भास्कर के बाद आइन्सटाइन का सिद्धान्त प्रकाश में आया। इससे ज्ञात होता है कि हमारे आचार्यों ने भी ब्रह्मांड के विषय में अपनी स्वतंत्र कल्पनाएँ प्रस्तुत की हैं, जिनका अनुकरण अप्रत्यक्ष रूप से आधुनिक वैज्ञानिकों ने किया है। सूर्य सिद्धान्त में भी ब्रह्माण्ड का वृत्ताकार बताया गया है-

ब्रह्माण्डमेतत् सुशिरं तत्रेदं भूभुर्वादिकम्।
कटाहद्वितयस्यैव सम्पुटं गोलकाकृतिः।।
ब्रह्माण्डमध्ये परिधिर्व्योमकक्षाभिधीयते।
तन्मध्ये भ्रमणं भानामधोऽधः क्रमशस्तथा।।

अर्थात दो समान कटाहों को परस्पर मुख से मिला देने से जिस आकृति का निर्माण होतो है। वही आकृति ब्रह्माण्ड की है। उन दोनों कटाह के मध्य जो रिक्त स्थान है, उसमे भूर्भुवादि चतुर्दश लोक विद्यमान है। ब्रह्माण्ड की परिधि को आकाश कक्षा कहते है। जिसके मध्य नक्षत्र ग्रह आदि की कक्षाएं है। इस प्रकार सूर्यसिद्धान्त के अनुसार ब्रह्माण्ड गोलाकृतिक है। वेदों में हिरण्यमयाण्ड से सम्पूर्ण विश्व की उत्पत्ति का वर्णन आया है। सुवर्णमय अण्डे के दो भाग हुए जिससे ब्रह्माण्ड का वृत्ताकारत्व सिद्ध होता है।

अति लघूत्तरीय प्रश्न -

1- मूर्त्त द्रव्य की कितने प्रकार की अवस्थाएँ होती हैं?

2- आधुनिक वैज्ञानिकों ने विश्व की कल्पना किस आकृति में की है।

3- ब्रह्माण्ड-पुराण में लोकों की संख्या कितनी है।

4- भास्कराचार्य ने कटाहसम्पुटाकार ब्रह्मांड का व्यासमान कितने योजन माना है।

5- सूर्यसिद्धान्त के अनुसार ब्रह्माण्ड किस आकृति का है।

5-3-2 ब्रह्माण्ड के सदस्य-

किसी भी वस्तु को समझने के लिए उसके घटकों को समझना आवश्यक होता है। ऐसा भी कह सकते हैं कि समष्टिगत रूप को समझने के लिए उसके प्रत्येक व्यष्टिगत रूप (इकाई) को समझना आवश्यक होता है। ब्रह्माण्ड रूपी शरीर को समझने के लिए इसके व्यष्टिगत रूप को समझना आवश्यक होगा। यद्यपि ब्रह्माण्ड में असंख्य छोटे एवं बडे सदस्य हैं। परन्तु स्थूल रूप से विचार किया जाए तो ब्रह्माण्ड में चार स्थूल सदस्य है - आकाशगंगा, नीहारिका, तारे तथा सौर परिवार।

1- आकाशगंगा—

हमारे सूर्य के सदृश असंख्य तारों एवं तारक पुंजों का समुदाय जहाँ दिखाई देता है उसी को आकाशगंगा कहते हैं। हमारी पृथ्वी की अपनी एक आकाश गंगा या मन्दाकिनी है जिसे दुग्ध-मेखला (मिल्की वे) कहते हैं। इस आकाशगंगा की विशिष्टता यह है कि इससे होकर एक सम्पूर्ण वृत्त में प्रकाश की धारा प्रवाहमान दिखाई देती है। आकाशगंगा असंख्य तारों के टिमटिमाने से बनी है। पाश्चात्यों ने इस धारा को ‘मिल्की वे’ (दुग्ध-मेखला) की संज्ञा दी। यह नाम आकाशगंगा का व्यापक रूप से प्रयुक्त हुआ। प्राचीन भारतीय विज्ञान में इसे स्वर्गगंगा, आकाशगंगा, मन्दाकिनी, देवगंगा, क्षीरनदी, आकाशनदी, आकाशयज्ञोपवीत आदि कहा है। खगोलशास्त्रियों की गणना के अनुसार हमारे ब्रह्माण्ड में सहस्रों अरब आकाशगंगाएँ हैं। प्रति आकाशगंगा में अनुमानतः हजारों अरब तारे होते हैं। हमारी आकाशगंगा में हमारा सौर-परिवार तो एक कोने में बिन्दु मात्र दिखाई देता हैं। आकाशगंगा का व्यासमान प्रायः 100000 प्रकाश वर्ष है। आकाशगंगा में तीन प्रकार की तारों की श्रेणियाँ हैं। पहली श्रेणी में वे तारे आते हैं जो आकाशगंगा के सर्पिलों और नाभि में स्थित हैं। सूर्य भी इसी में समाहित है, इसे मन्दाकिनी गुच्छ कहते हैं। इसके बाहर प्रभामण्डलीय तारे हैं। यहाँ बहुत से तारों ने एक छोटी मन्दाकिनी का रूप भी लिया है। इनको हम गोलाकार तारागुच्छ कहते हैं। इनमें बहुत पुराने तारे पाए जाते हैं। इन गोलाकार गुच्छों से दूर करोड़ों तारें हैं जो आकाशगंगा के बाहरी भाग में छिटके पड़े हैं। ये तारे भी आकाशगंगा के ही अंग हैं।

2- नीहारिका—

खगोल विज्ञान के अनुसार बिग बैंग की घटना के कुछ करोड़ वर्ष के बाद तारों और आकाशगंगाओं का निर्माण होने लगा। वास्तव में आकाशगंगा का निर्माण हाइड्रोजन, हीलियम गैसों तथा धूलकणों से बने विशाल बादल के इकट्ठा होने से हुआ है। आकाशगंगा को बनाने वाले इन बादलों को निहारिका कहते हैं।

ब्रह्माण्ड में खरबों तारे हैं, जो अन्तरिक्ष मे समान रूप से वितरित नही हैं। ये तारे बहुत बड़े बड़े समूहों मे वितरित रहते है। प्रत्येक समूह मे खरबों तारे होते है। इन समूहों मे तारों के अलावा हाइड्रोजन गैस एवं धूल के कणों की बहुत अधिक मात्र भी उपस्थित रहती है। तारो के ऐसे प्रेत्यक समूह को नीहारिका कहते हैं। नीहारिकाएँ विभिन्न आकारों मे दृष्टिगोचर होती हैं। इसी आधार पर इन्हें सर्पिलाकार दीर्घवृत्ताकार अथवा अनियमित नीहारिकाओं के नाम से जाना जाता है। इस प्रकार कोई भी नीहारिका खरबों तारों की ऐसी विशाल व्यवस्था होती है जिसमे बड़ी संख्या मे मुख्य रूप से हाइड्रोजन गैस के बादल और धूल के कण होते हैं। वास्तव में नीहारिकाएँ ब्रह्माण्ड की निर्माणी घटक हैं। ये तारों की तरह प्रकाशित होते हैं परन्तु ये तारे नहीं हैं क्योंकि इनका आकार तारों की तरह नहीं है। सामान्यतया आकाश में दो नीहारिकाएँ स्पष्ट रूप से दिखाई देती हैं जिनको देवयानी और त्रिभुज नाम से जाना जाता है। दूरदर्शक यंत्र के माध्यम से दस करोड़ से अधिक नीहारिकाओं का ज्ञान वैज्ञानिकों को प्राप्त हुआ है। आकाश में छोटी-बड़ी अर्थात् सभी प्रकार की नीहारिकाएँ दिखाई देती हैं। जो नीहारिकाएँ ग्रहों के सदृश गोलाकार होती हैं उन्हें ग्रहीय नीहारिका कहते हैं। कुछ नीहारिकाएँ तो इतनी विशाल होती हैं कि उनकी तुलना आकाशगंगा से की जा सकती है। अधिकतर नीहारिकाएँ समुदाय में रहती हैं।

3- तारे एवं तारापुंज—

तारे स्वयंप्रकाशित विशाल खगोलीय पिंड हैं। जो गैसों से मिलकर बने होते हैं । इनका निजी गुरुत्वाकर्षण इनके द्रव्य को संघटित रखता है। मेघरहित आकाश में रात्रि के समय प्रकाश के बिंदुओं की तरह बिखरे हुए, टिमटिमाते प्रकाशवाले बहुत से तारे दिखलाई देते हैं। कुछ चमकते तारों के समूह आकाश को विभिन्न भागों में बाँट देते हैं । इन तारों के समूह को तारामंडल कहते हैं । पूरे आकाश को 89 तारामंडलों में विभक्त करके उन तारामंडलों के नाम रख दिए गए हैं। राशिचक्र के तारामंडल बहुत प्रसिद्ध हैं, इनकी संज्ञा मेष, वृष आदि है। किसी एक तारामंडल के तारों को उनके दृश्य कांतिमान के अवरोह क्रम में चुन लिया जाता है। फिर तारामंडल के नाम के आगे ग्रीक भाषा के अक्षर रखकर तारों का नामकरण किया जाता है, जैसे मेष राशि के सबसे चमकीले तारे का नामकरण एल्फातरीज किया गया है। कुछ तारामंडलों में तारों की संख्या इतनी अधिक है कि ग्रीक वर्णमाला के अक्षरों की संख्या उनके लिए कम पड़ जाती है। ऐसे तारों के नामकरण के लिए तारामंडल के पूर्व लैटिन अक्षर तथा आवश्यकता पड़ने पर संख्याएँ लिख देते हैं। आकाशगंगा का लगभग 98 प्रतिशत भाग तारों से बना है, शेष 2 प्रतिशत भाग में खगोलीय गैस और बहुत ही अधिक घने रूप में छाई धूल है। खगोल में ऐसे तारे अपवाद रूप में हैं जो अलग-थलग अकेले पड़े हों। ऐसे तारों की संख्या 25 प्रतिशत से अधिक नहीं है। युग्म तारे खगोल में लगभग 33 प्रतिशत हैं, शेष सभी प्रकार के तारे बहुसंख्यक हैं। इन समस्त तारों का वर्गीकरण इनकी द्युति, वर्ग, ताप एवं स्वरूप आदिका ज्ञान भौतिक लक्षणों के द्वारा प्राप्त होता है। तारों में कोई अधिक तीव्र प्रकाश वाला तथा कोई मन्द प्रकाश वाला दिखाई देता है। इसी को तारों का कान्तिमान कहते हैं। मुख्यतः कान्तिमान के द्वारा ही भौतिकशास्त्र में तारों का अध्ययन होता है।

4- सौर परिवार—

सूर्य का परिवार ही सौर-परिवार कहा जाता है। इसी को सौरमण्डल भी कहते हैं। इस सौर मंडल में सूर्य और वह खगोलीय पिंड सम्मलित हैं, जो इस मंडल में एक दूसरे से गुरुत्वाकर्षण बल द्वारा बंधे हैं। हमारे सूरज और उसके ग्रहीय मण्डल को मिलाकर हमारा सौर मण्डल बनता है। इन पिंडों में आठ ग्रह, उनके 172 ज्ञात उपग्रह, पाँच बौने ग्रह और अरबों छोटे पिंड शामिल हैं। इन छोटे पिंडों में क्षुद्रग्रह, बर्फीला काइपर घेरा के पिंड, धूमकेतु, उल्कायें और ग्रहों के बीच की धूल शामिल हैं। जिस ग्रह के पास अपना प्रकाश नहीं होता है। ये सूर्य की किरणों को प्रवर्तित कर प्रकाशित होते है। प्रकाश का परावर्तन इन पिंडो के वातावरण की मात्र या प्रकृति पर निर्भर करता है जिन पिंडो के पास अपना वातावरण नहीं होता है उनसे प्रकाश का परावर्तन कम होता है, और वे कम चमकते है। सभी ग्रह सूर्य के चारो दीर्घवृतीय पथ पर परिक्रमण करते हैं। शुक्र या अरुण दक्षिणावर्त्त दिशा में अर्थात पूर्व से पश्चिम दिशा में परिक्रमण करते हैं जबकि अन्य सभी ग्रह वातावर्त दिशा में अर्थात पश्चिम से पूर्व की दिशा में परिक्रमा करते है। सूर्य या ग्रह के बीच का गुरुत्वाकर्षण बल उन्हें परिक्रमण करने देता है। इन ग्रहों को दो भागो में विभाजित किया जाता है -

1. आंतरिक ग्रह या पार्थिव ग्रह - आंतरिक ग्रह में बुध, शुक्र, पृथ्वी,मंगल को शामिल किया जाता है। आंतरिक ग्रह अपेक्षाकृत छोटे और अधिक घने होते हैं। सभी आंतरिक ग्रह चट्टान या धातुओं से बने होते हैं। इन्हे पार्थिव ग्रह भी कहा जाता है।बाह्य ग्रह - बाह्य ग्रह में बृहस्पति, शनि तथा अरुण हैं यद्यपि ये चारों बाह्य ग्रह आकार में बहुत बड़े हैं और इनका बड़ा उपग्रहीय परिवार है। ये ग्रह अपेक्षा कृत बड़े और कम घने हैं। ये प्रायः हाइड्रोजन , हीलयम ,अमोनियम गैस से बने होते हैं।

लघूत्तरीय प्रश्न -

1- ब्रह्माण्ड में चार स्थूल सदस्य कौन-कौन से हैं ?

2- प्राचीन भारतीय विज्ञान में आकाशगंगा को किन किन नामों से सम्बोधित किया गया है।

3- आकाश में कौन सी दो नीहारिकाएँ स्पष्ट रूप से दिखाई देती हैं?

4- हमारे सौर मण्डल में कौन कौन से पिण्ड हैं।

5- आंतरिक ग्रह या पार्थिव ग्रह कौन कौन से हैं ? -

5-3-3 आधुनिक खगोलशास्त्र में ब्रह्माण्डोत्पत्ति के सिद्धान्त -

ब्रह्मांड की उत्पत्ति का बिग बैंग सिद्धांत - ब्रह्मण्डोत्पत्ति के इस सर्वाधिक प्रसिद्ध सिद्धान्त के प्रतिपादक ऍडविन पावल हबल एक अमेरिकी खगोलशास्त्री थे। हब्बल ने यह कखोज की थी कि ब्रह्मांड का विस्तार (फैलाव) हो रहा है। सिद्धान्त के अनुसार 10 से 15 अरब वर्ष पहले ब्रह्मांड का समस्त द्रव्य एक ही जगह पर एकत्रित रहा होगा। उस समय ब्रह्मांड का घनत्व असीमित था तथा सम्पूर्ण ब्रह्मांड एक अति-सूक्ष्म बिंदू में समाहित था। इस स्थिति को परिभाषित करने में विज्ञान एवं गणित के समस्त नियम-सिद्धांत निष्फल सिद्ध हो जाते हैं। वैज्ञानिकों ने इस स्थिति को गुरुत्वीय विलक्षणता नाम दिया है। किसी अज्ञात कारण से इसी सूक्ष्म

बिन्दू से एक तीव्र विस्फोट हुआ तथा समस्त द्रव्य इधर-उधर छिटक गया। इस स्थिति में किसी अज्ञात कारण से अचानक ब्रह्मांड का विस्तार शुरू हुआ और दिक्-काल की भी उत्पत्ति हुई- इस घटना को ब्रह्माण्डीय विस्फोट का नाम दिया गया। अंग्रेज ब्रह्मांड विज्ञानी सर फ्रेड हॉयल ने इस सिद्धांत की आलोचना करते समय इस सिद्धान्त को 'बिग बैंग' नाम दिया।

स्थायी अवस्था सिद्धांत—

बीसवीं सदी के प्रतिभाशाली ब्रह्माण्डविज्ञानी फ्रेड हॉयल ने अंग्रेज गणितज्ञ हरमान बांडी और अमेरिकी वैज्ञानिक थोमस गोल्ड के साथ संयुक्त रूप से ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति का सिद्धांत प्रस्तुत किया। यह सिद्धांत 'स्थायी अवस्था सिद्धांत' के नाम से विख्यात है। इस सिद्धांत के अनुसार, न तो ब्रह्माण्ड का कोई आदि है, और न ही कोई अंत। यह समयानुसार अपरिवर्तित रहता है। यद्यपि इस सिद्धांत में प्रसरणशीलता समाहित है, परन्तु फिर भी ब्रह्माण्ड के घनत्व को स्थिर रखने के लिए इसमें पदार्थ स्वतः रूप से सृजित होता रहता है। जहाँ ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति के सर्वाधिक मान्य सिद्धांत (बिग बैंग सिद्धांत) के अनुसार पदार्थों का सृजन अकस्मात हुआ, वहीं स्थायी अवस्था सिद्धांत में पदार्थों का सृजन हमेशा चालू रहता है।

दोलायमान ब्रह्मांड सिद्धांत—

ब्रह्मांड की उत्पत्ति का यह एक नया सिद्धांत है। इस सिद्धांत के अनुसार हमारा ब्रह्मांड करोड़ों वर्षों के अंतराल में विस्तृत और संकुचित होता रहता है। डॉ- एलन संडेज इस सिद्धांत के प्रवर्तक हैं। उनका मानना है कि आज से 120 करोड़ वर्ष पहले एक तीव्र विस्फोट हुआ था और तभी से ब्रह्मांड फैलता जा रहा है। 290 करोड़ वर्ष बाद गुरुत्वाकर्षण बल के कारण इसका विस्तार रुक जाएगा। इसके बाद ब्रह्मांड संकुचित होने लगेगा और अत्यंत संपीडित और अनंत रूप से बिंदुमय आकार धारण कर लेगा, उसके बाद एक बार पुनः विस्फोट होगा तथा यह क्रम चलता रहेगा! इस सिद्धांत को दोलायमान ब्रह्मांड सिद्धांत कहते हैं।

ब्रह्मांड का अंत - वर्तमान में ब्रह्माण्ड के फैलाव तथा अंत के विषय में चार प्रमुख सम्भावनाएं व्यक्त की गई है -

(1) महा-विच्छेद (द बिग रिप)- इस सम्भावना के अनुसार ब्रह्माण्ड तब तक विस्तारित होता रहेगा जब तक प्रत्येक परमाणु टूट कर इधर-उधर फैल नही जायेगा। यह ब्रह्माण्ड के अंत का सबसे भयानक घटना होगी लेकिन ब्रह्मांड को इस अवस्था में देखने के लियें हम जीवित नही रहेंगे क्योंकि इस अवस्था तक पहुचने से पहले से हमारी आकाशगंगा, ग्रह और हम नष्ट हो चुके होंगे- वैज्ञानिकों के अनुसार यह घटना आज से लगभग 23 अरब वर्ष बाद होगी।

(2) महा-शीतलन (द बिग फ्रीज) - इस सम्भावना के अनुसार ब्रह्माण्ड के विस्तार के कारण सभी आकाशगंगाएँ एक दूसरे से दूर चली जायेंगी तथा उनके बीच कोई भी सम्बंध नहीं रहेगा। इससे नये तारों के निर्माण के लिये गैस उपलब्ध नहीं होगी। इसका परिणाम यह होगा कि ब्रह्माण्ड में ऊष्मा के उत्पादन में अत्याधिक कमी आयेगी और समस्त ब्रह्माण्ड का तापमान परम-शून्य (एब्सोल्यूट जीरो) तक पहुँच जायेगा।

और महा-शीतलन के अंतर्गत हमारे ब्रह्माण्ड का अंत हो जायेगा। वैज्ञानिकों के अनुसार यह ब्रह्माण्ड के अंत की सबसे अधिक सम्भावित अवस्था है। कुछ भी हो लेकिन यह भी पूरी तरह से निश्चितता से नहीं कहा जा सकता कि इसी अवस्था से ब्रह्माण्ड का अंत होगा।

(3) महा-संकुचन (द बिग क्रंच)- इस सम्भावना के अनुसार एक निश्चित अवधि के पश्चात् इसके फैलाव का क्रम रुक जायेगा और इसके विपरीत ब्रह्माण्ड संकुचन करने लगेगा अर्थात् सिकुड़ने लगेगा और अंत में सारे पदार्थ बिग-क्रंच की स्थिति में आ जायेगा। उसके बाद एक और बिग-बैंग होगा और दुबारा ब्रह्माण्ड का जन्म होगा- क्या पता कि हमारा ब्रह्माण्ड किसी अन्य ब्रह्माण्ड के अंत के पश्चात् अस्तित्व में आया हो?

(4) महाद्रव-अवस्था (द बिग स्लर्प)- इस सम्भावना के अनुसार ब्रह्माण्ड स्थिर अवस्था में नही है। और हिग्स-बोसॉन ने ब्रह्माण्ड को द्रव्यमान देने का काम किया है। जिससे यह सम्भावना है कि हमारे ब्रह्माण्ड के अंदर एक अन्य ब्रह्माण्ड का जन्म हो और नया ब्रह्माण्ड हमारे ब्रह्माण्ड को नष्ट कर देगा।

रिक्त स्थान की पूर्ति -

1- ब्रह्मण्डोत्पत्ति के इस सर्वाधिक प्रसिद्ध सिद्धान्त के प्रतिपादक --------------------एक अमेरिकी खगोलशास्त्री थे।

2- फ्रेड हॉयल ने इस सिद्धांत की आलोचना करते समय इस सिद्धान्त को ------------------नाम दिया।

3- आज से --------------------------- वर्ष पहले एक तीव्र विस्फोट हुआ था और तभी से ब्रह्मांड फैलता जा रहा है।

4- -------------------------सिद्धांत में पदार्थों का सृजन हमेशा चलता रहता है-

5- ------------------------सिद्धान्त के अनुसार 10 से 15 अरब वर्ष पहले ब्रह्मांड का समस्त द्रव्य एक ही जगह पर एकत्रित रहा होगा।

5-3-4 वैदिक वाङ्मय में ब्रह्माण्डोत्पत्ति के सिद्धान्त -

ब्रह्माण्ड के सृजन की क्रिया का वर्णन ब्रह्माण्ड-उत्पत्ति का सिद्धान्त कहलाता है। ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति के सम्बन्ध में दो मत प्रचलित हैं। प्रथम धार्मिक संकल्पना तथा द्वितीय वैज्ञानिक संकल्पना। ब्रह्माण्डोत्पत्ति की वैज्ञानिक संकल्पना के विषय में आपने पढा। धार्मिक संकल्पना प्रमुख प्राचीन भारतीय ग्रन्थों यथा- वेद, पुराण, ब्राह्मण ग्रन्थ, उपनिषद, धर्म सूत्र आदि में दृष्टिगोचर होती है। पुराणों के अन्तर्गत ब्रह्माण्ड के उत्पत्ति का उल्लेख बहुत ही रहस्यमयी, विलक्षण एवं तर्क संगत है। अति प्राचीन काल से ही वैदिक मनीषियों ने ब्रह्माण्ड उद्भव के सिद्धान्त की स्थापना कर दी थी तथा यह भी बताया कि सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति एक ही मूल या बीज तत्व के द्वारा हुई है। इस प्रकार सम्पूर्ण व्यवस्थित ब्रह्माण्ड को देखने से यह बात स्पष्ट होती है कि इसका प्रथम कारण ईश्वर ही है। प्राचीन काल से लेकर आज तक इसी एक तत्व को आधार मानकर धर्माचार्यों, मनीषियों, विद्वानों एवं वैज्ञानिकों ने विविध प्रकार की परिकल्पनाओं और अवधारणाओं की कल्पना का जो

स्वरूप प्रस्तुत किया वह वैज्ञानिक कम होकर ऐतिहासिक ज्यादा है। वैदिक ग्रन्थों में भी ब्रह्माण्ड-उत्पत्ति का विस्तृत उल्लेख मिलता है।

उपनिषदों के अन्तर्गत इसी तत्व को परम ब्रह्म, स्रष्टा, पालक एवं संहारक के रूप में माना गया है। तैत्तिरीय उपनिषद् में आया है कि ब्रह्मात्मा से ब्रह्माण्ड निकला, ब्रह्माण्ड से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल, जल से पृथ्वी, पृथ्वी से वनस्पति, वनस्पति से भोजन, भोजन से मानव आदि बने। ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति किस प्रकार हुई? इन तथ्यों का वर्णन वेद उपनिषद, रामायण, महाभारत, पुराण, भगवद्गीता, आदि प्राचीन ग्रन्थों में निहित है। भारत के संस्कृत-साहित्य के अमूल्य भण्डार के रूप में उपलब्ध वेदों के अन्तर्गत ब्रह्माण्डोत्पत्ति-मत भिन्न-भिन्न प्रकार से प्रस्तुत किये गये है। परन्तु सभी मत का मूल एक ही है। ब्रह्माण्ड-पुराण का अधिकांश उल्लेख वेदों में वर्णित तथ्यों के समकक्ष है यही कारण है कि वेदों के ब्रह्माण्डोत्पत्ति सिद्धान्त का पुराण पर गहरा प्रभाव देखा जा सकता है। वैदिक वाङ्मय में ब्रह्माण्डोत्पत्ति के सिद्धान्तों को चार भागों में विभक्त किया जा सकता है -

विश्वकर्मा द्वारा ब्रह्माण्डोत्पत्ति—

ऋग्वेद में ब्रह्माण्ड सृजन हेतु प्रयोग किया जाने वाला पदार्थ अन्तरिक्ष धूल माना गया है। ब्रह्माण्ड के निर्माण में विश्वकर्मा को प्रमुख वास्तुविद् माना गया है तथा यह मान्यता है कि ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति विश्वकर्मा ने उसी प्रकार की है जिस प्रकार किसी गृह की रचना निर्माण सामग्री और कारीगारों द्वारा होती है। इस प्रकार पुराणों के अन्तर्गत सृजन तत्व की प्राचीन शक्ति तत्व के रूप में माना गया है। इस शक्ति तत्व का अव्यक्त और प्रकृति के नाम से सम्बोधित किया गया है तथा यह बताया गया है कि प्रत्येक तत्व में एक शक्ति होती है। उदाहरणस्वरूप अग्नि में जलाने की शकति। इसी तरह से ईश्वर के प्रतिनिधि विश्वकर्मा में ब्रह्माण्ड के निर्माण की शक्ति निहित है। ब्रह्माण्ड की इन्हीं शक्तियों में विष्णु, कृष्ण और नारायण को प्रमुख स्थान प्रदान किया गया है। इस सृष्टि में अन्तरिक्ष, पृथ्वी और स्वर्ग तीन लोकों की कल्पना की गयी है। मत्स्य-पुराण में आया है कि भगवान विष्णु ने ब्रह्माण्ड की रचना में ऊपर वाले भाग को आकाश, नीचे के भाग को रसातल तथा मध्य भाग को पृथ्वी बताया है। ब्रह्माण्ड-उत्पत्तिक को स्पष्ट करते हुए ऋग्वेद में कहा गया है-

विश्वकर्मा विमना आद्विहाया धाता विधाता परमोत संदृक् ।
तोषामिष्टानि समिषा भवन्ति यत्र सप्त ऋषीन्पर एकमाहुः ।।

अर्थात् सृष्टि को रचने वाला (विश्वकर्मा) विशेष ज्ञान वाला आकाश के सामान सर्वत्र व्यापाक सम्पूर्ण विश्व को धारण करने वाला, विश्व के विधान को रचने वाला परम ज्ञानी, सबसे मुख्य तथ्य और सम्यक् रूप से सबका द्रष्टा है।

विराट पुरूष से ब्रह्माण्डोत्पत्ति—

ऋग्वेद में ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति आदि विराट पुरुष से हुई है। ब्रह्माण्ड स्रष्टा इस विराट पुरुष को विश्व की आत्मा के रूप में माना गया है। इस आत्मा की नाभिक और मूर्तरूप के विखण्डन से अन्तरिक्ष, सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी,

वायु और अन्य आकाशीय पिण्डों की उत्पत्ति हुई। इस पृथ्वी के समस्त जीवधारी और मानव उसी आत्मा के विखण्डन का परिणाम है। भागवत पुराण में विराट पुरुष का वर्णन करते हुए कहा गया है कि विराट पुरुष के तलवे पाताल लोक, एड़ियां और पंजे रसातल लोक, पैर के पिण्ड तलातल, दोनों घुटने सुतल, जंघाएँ वितल और अतल, पेडू-भूतल, नाभि सरोवर और आकाश, वक्षस्थल स्वर्णलोक, गला महिलोक, बदन-जनलोक, ललाट-मस्तक, सत्यलोक बाहुए इन्द्र आदि देव, कर्ण दिशा, मुख अग्नि व सूर्य, तालु जल, जिह्वा-रस, कोख-समुद्र, अस्थियाँ-पर्वत आदि हैं।

महाभारत के शन्ति पर्व में ब्रह्माण्ड का सृजन अव्यक्त से बताया गया है। इसमें सर्वप्रथम ष्महान'' (विराट) से आकाश की उत्पत्ति का उल्लेख किया गया है। आकाश से जल, जल से अग्नि, एवं वायु उत्पन्न हुई बताया गया है। सभी तत्त्वों के मिश्रण से पृथ्वी की संरचना बतायी गयी है। सृष्टि के पूर्व यही महाशक्ति आदि पुरुष में विद्यमान थी। इसीलिए इन्हें आदि पुरुष कहा गया है। आदि और अन्त से परे समस्त विश्व का बीच होने तथा नार (जल) में सोने के कारण इस विराट पुरुष को नारायण भी कहा गया है। ब्रह्माण्ड-पुराण में विराट पुरुष के विषय में उल्लेख है कि सृष्टि काल में विश्व-सृजन करने की अभिलाषा से महान तत्त्व उत्पन्न हुआ। यह महान तत्त्व प्रकाशमान था। सृष्टि की इच्छा से प्रेरित उस महान ने ब्रह्माण्ड की रचना की। इस रचना में सभी चराचर सजीव एवं निर्जीव विद्यमान हैं। इस महान को विद्वान, मन, आत्मा, मति, ब्रह्मा, भू-बुद्धि, ईश्वर, प्रजा, स्मृति और विभु कहते हैं।

ब्रह्म से ब्रह्माण्डोत्पत्ति—

मनुस्मृति के अनुसार ब्रह्मा ने निद्रा से जागने के बाद सृष्टि के सृजन का संकल्प लेकर अपने मन को नियुक्त किया। मन ने सृष्टि-सृजन हेतु सर्वप्रथम आकाश बनाया। आकाश का विलक्षण गुण है स्तर। फिर आकाश ने अपने को परिमार्जित करके वायु की रचना की, जिसका अर्थ है स्पर्श। वायु से देदीप्यमान प्रकाश की उत्पत्ति हुई। प्रकाश से जल की उत्पत्ति हुई। जल से पृथ्वी की संरचना हुई। इस पृथ्वी का विशिष्ट-गुण है गन्ध। ऋग्वेद वेद में ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति के विषय में उल्लेख इस प्रकार है -

चक्षुषः पिता मनसा हि धीरो धृतमेने अजनन्नम्नमाने ।
यदेदन्ता अददृहन्त पूर्व आदिद् द्यावा पृथिवी अप्रथेताम् ।।

अर्थात् सूर्य एवं दृश्य जगत का पिता अपनी विचार शक्ति से गम्भीर और सबको धारण करने वाला, जल की रचना करने वाला। वह इस परिवर्तन में सूक्ष्म से स्थूलरूप (अणु परमाणु से दृश्य संसार) में आते हुए द्युलोक (नक्षत्र मण्डल), भूलोक (पृथ्वी आदि ग्रह मण्डल) को उत्पन्न करता है। जब (ज्यों-ज्यों) पूर्व निर्मित भाग दृढ़ होते जाते हैं। तदन्तर (त्यों-त्यों) आगे-आगे द्युलोक, भूलोक विस्तार पाते जाते हैं।

विष्णु-पुराण में ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति ब्रह्म से बतायी गयी है तथा कहा गया है कि ब्रह्म के पूर्व सृष्टि के आदि मे न सत् था न असत्, न आकाश था न वायुमंडल, न रात थी, न दिन था, केवल ब्रह्म को छोड़कर शून्य था। मत्स्यपुराण के अन्तर्गत आया है कि सर्वप्रथम नारायण अवतरित हुए। नारायण ने विश्व-सृष्टि की कामना से

अपने शरीर से सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण-बह्म, विष्णु और महेश को उत्पन्न किये। इसके पश्चात् पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच कर्मेन्द्रिय तथा 23 तत्त्वों के समूह में प्रविष्ट होकर नारायण ने इन तत्वों को मिलाकर एक परिमाण प्राप्त किया। यह परिमाण विश्व-संरचना के तत्त्वों का गर्भ था जिससे ब्रह्माण्ड कीउत्पत्ति हुई। ब्रह्माण्ड-पुराण के अनुसार, ब्रह्माण्ड में सबसे पहले ऐश्वर्य शाली ब्रह्मा उत्पन्न हुए। ब्रह्मा को प्रकृति पुरुष भी कहा गया है। यह अनादि और नियत पुरुष है। इन्हें ब्रह्माण्ड के समस्त उत्पन्न पदार्था े का पिता भी कहा जाता है।

ब्रह्मा ने सृष्टि के समय सत्व, रजस्, और तमो गुणों में क्षोभ उत्पन्न किया और महान तत्त्व को जन्म दिया। सृष्टि का अंकुर, यह महातत्व विश्व को प्रकट करने के लिए प्रलयकारी अन्धकार को अपने में समेट लिया। रजो और तमो गुण के कारण महातत्व ने विकास रूप में ज्ञान, तप, क्रिया, द्रव्य और अन्धकार उत्पन्न किया। महावत्व के विकार का रूप वायु, जल, पृथ्वी आदि हैं।

सूर्य से ब्रह्माण्डोत्पत्ति—

इसी आधार पर सूर्य देव को सम्पूर्ण सृष्टि निर्माण का प्रधान एवं महत्त्वपूर्ण कारक माना गया है। इसमें सूर्य को ब्रह्मा की आत्मा बताया गया है। सूर्य को राजपति, विश्वकर्मा, ब्रह्मा-विष्णु-महेश, प्रजापति, हिरण्यगर्भ तथा अजन्मा सत् बताया गया है। मनुस्मृति में यह बताया गया है कि जब यह विश्व अज्ञात अन्धकार में अवस्थित होकर गम्भीर निद्रा में निमग्न था तब स्वयम्भू अपनी शकति से अन्धकार को हटाकर महान तत्वों के साथ प्रकाशमान हुए। स्वयम्भू ने विश्व को अपने शरीर से उत्पन्न करने की इच्छासे सर्वप्रथम जल की उत्पत्ति की। जल में अपना बीज लगाया। वह बीज हिरण्यगर्भ (सोने का अण्डा) बन गया है। यह हिरण्यगर्भ तेज में सूर्य के समान था। इस अण्डे से ब्रह्मा अवतरित हुए जिन्हें नारायण कहा जाता है। नारायण ने हिरण्यगर्भ को दो भागों में बाँटकर पृथ्वी और स्वर्ग की उत्पत्ति की। इन दोनों के मध्य अन्तरिक्ष, आठ दिशाएँ, समुद्र और पंच तत्वों से जीव की उत्पत्ति की। ऋग्वेद में मं0 10 सू0 121-1 के अनुसार- संसार के इस रूप में आने से पहले हिरण्यगर्भ की स्थिति में थी। यह सुवर्णमय उपादान पंचभूत समूह का एक मात्र धारक था। उसने ही भूलोक और द्युलोक को धारण किया। मत्स्य-पुराण के अन्तर्गत भी मनुस्मृति के समान ही वर्णन प्राप्त होता है जैसे- सृष्टि से पूर्व नारायण थे, नारायण ने सर्वप्रथम जल की उत्पत्ति की, जल में बीज से सोने का अण्डा मिला। अण्डे के भीतर सूर्य प्राप्त हुआ। यहाँ सूर्य विश्व-सृजन का कारक है। वायु-पुराण तथा ब्रह्माण्ड-पुराण में भी विश्व-सृष्टि हिरण्यगर्भ से बतायी गयी है। ब्रह्माण्ड-पुराण में लिखा गया है कि विश्व-सृष्टि के तत्वों में हिरण्यगर्भ से ब्रह्मा अवतरित हुए। यही ब्रह्मा समस्त जीवों की आत्मा होने के कारण परमात्मा का अंश कहलाये। इसी हिरण्यगर्भ से लोको की उत्पत्ति हुई। ब्रह्माण्ड-पुराण में हिरण्यगर्भ को चार मुखों वाला माना गया है। हिरण्यगर्भ से ही सूर्य, सोम, रुद्र, और जल की उत्पत्ति हुई। इनके पश्चात् आकाश और पृथ्वी की रचना हुई। इस सिद्धान्त का मानना है कि ब्रह्माण्ड बीज के रूप में सूर्य प्रधान एवं मुख्य कारक है जिससे सम्पूर्ण विश्व की रचना हुई है। इसके केन्द्र को हिरणगर्भ के नाम से सम्बोधित करते हैं जो सत् और असत् पदार्थों की उत्पत्ति का प्रमुख कारण है।

बहुविकल्पीय प्रश्न -

1- तैत्तरीय उपनिषद् के अनुसार ब्रह्माण्ड किस से निकला -

(क) जीवात्मा से (ख) ब्रह्मात्मा से

(ग) सूर्य से (घ) हिरण्यगर्भ से

2- ब्रह्माण्ड के निर्माण में किसे प्रमुख वास्तुविद् माना गया है -

(क) विश्वकर्मा को (ख) पुरुष को

(ग) सूर्य को (घ) हिरण्यगर्भ को

3- भागवत पुराण के अनुसार विराट पुरुष के तलवे कौन सा लोक है -,

(क) सूर्यलोक (ख) पृथ्वी लोक

(ग) पाताल लोक (घ) स्वर्गलोक

4- महाभारत के शन्ति पर्व में ब्रह्माण्ड का सृजन किस से बताया गया है-

(क) जीवात्मा से (ख) ब्रह्मात्मा से

(ग) सूर्य से (घ) अव्यक्त से

5-विष्णु-पुराण में ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति किस से बतायी गयी है

(क) सूर्य से (ख) विराट पुरूष से

(ग) ब्रह्म से (घ) हिरण्यगर्भ से

5-4 सारांश—

असीमित ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति कैसे हुई? यह प्रश्न आज भी खोज का विषय है। प्राचीन-कालीन मानव को ब्रह्माण्ड का पर्याप्त ज्ञान था। वैदिक वाङ्मय के अन्तर्गत, ब्रह्माण्डोत्पत्ति, ग्रह, नक्षत्र, तारे, सूर्य, चन्द्र और पृथ्वी का व्यापक उल्लेख प्राप्त होता है। वैदिक वाङ्मय में न केवल ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति अपितु आकृति के विषय में भी वर्णन प्राप्त होता है। आधुनिक वैज्ञानिकों ने विश्व की कल्पना वलयाकार आकृति में की है परन्तु यह कल्पना नवीन नहीं है। ब्रह्माण्ड-पुराण में ब्रह्माण्ड की आकृति दीर्घ वृत्तीय बतायी गयी है। भास्कराचार्य ने अपने सिद्धान्त शिरोमणि में प्रस्तुत की है कि ब्रह्माण्ड का आकार ‘सम्पुट कटाहवत्’ कहा है। सूर्य सिद्धान्त में भी ब्रह्माण्ड का वृत्ताकार बताया गया है। ब्रह्माण्ड में असंख्य छोटे एवं बडे सदस्य है। परन्तु स्थूल रूप से विचार किया जाए तो ब्रह्माण्ड में चार स्थूल सदस्य है - आकाशगंगा, नीहारिका, तारे तथा सौर परिवार। आधुनिक खगोलशास्त्र में ब्रह्माण्डोत्पत्ति के तीन सिद्धान्त सर्वप्रसिद्ध है - ब्रह्मांड की उत्पत्ति का बिग बैंग सिद्धांत, स्थायी अवस्था सिद्धांत तथा दोलायमान ब्रह्मांड सिद्धांत सम्पूर्ण वैदिक वाङ्मय में इस तथ्य को स्वीकार किया है कि सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति एक ही मूल या बीज तत्व के द्वारा हुई है। उपनिषदों के अन्तर्गत इसी तत्व को परम ब्रह्म, स्रष्टा, पालक एवं संहारक के रूप में माना गया है। वैदिक वाङ्मय में ब्रह्माण्डोत्पत्ति के सिद्धान्तों को चार भागों में विभक्त किया जा सकता है - विश्वकर्मा द्वारा ब्रह्माण्डोत्पत्ति,

विराट पुरूष से ब्रह्माण्डोत्पत्ति, ब्रह्म से ब्रह्माण्डोत्पत्ति तथा सूर्य से ब्रह्माण्डोत्पत्ति। अतः इस इकाई में आपने इन सभी विषयों का विस्तार पूर्वक अध्ययन किया।

5-5 पारिभाषिक शब्दावली-

व्योम	-	आकाश
वलयाकार	-	वृत्त के आकार वाला
व्यास	-	वृत्त की परिधि के एक भाग से दूसरे किनारे तक तथा केन्द्र से जाने वाली सरल रेखा
समष्टिगत	-	सम्पूर्ण
व्यष्टिगत	-	व्यक्तिगत
स्वयंप्रकाशित	-	अपने प्रकाश से प्रकाशित होने वाला
दक्षिणावर्त्त	-	दक्षिण दिशा की और
स्रष्टा	-	रचना करने वाला
विखण्डन	-	टूटना

5-6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर -

अति लघूत्तरीय प्रश्न -

1- तीन

2- वलयाकार

3- 14

4- 18712069200000000

5- वृत्ताकार

लघूत्तरीय प्रश्न -

1- आकाशगंगा, नीहारिका, तारे तथा सौर परिवार।

2- स्वर्गगंगा, आकाशगंगा, मन्दाकिनी, देवगंगा, क्षीरनदी, आकाशनदी, आकाशयज्ञोपवीत आदि कहा है।

3- देवयानी और त्रिभुज

4- आठ ग्रह, उनके 172 ज्ञात उपग्रह, पाँच बौने ग्रह और अरबों छोटे पिंड शामिल हैं। इन छोटे पिंडों में क्षुद्रग्रह, बर्फीला काइपर घेरा के पिंड, धूमकेतु, उल्कायें और ग्रहों के बीच की धूल शामिल हैं।

5- आंतरिक ग्रह बुध, शुक्र, पृथ्वी तथा मंगल है।

रिक्त स्थान की पूर्ति -

1- ऍडविन पावल हबल

2- ‘बिग बैंग’

3- 120 करोड़

4- स्थायी अवस्था

5- ‘बिग बैंग’

बहुविकल्पीय प्रश्न -

1- (ख) 2- (क) 3- (ग) 4- (घ) 5- (ग)

1-7 सन्दर्भ ग्रन्थों की सूची -

1- ऋग्वेद, सायणाचार्यकृत-भाष्यसंवलिता, अनुवादक पण्डित रामगोविन्द त्रिवेदी, चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी, 2016

2- अथर्ववेद, सयणाचार्यकृत-भाष्यसंवलिता, अनुवादक पण्डित रामगोविन्द त्रिवेदी, चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी, 2016

3- उपनिषत्सञ्चयम्, अनुवादक आचार्य केशवलाल वा- शास्त्री, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान दिल्ली, 2015

4- शतपथ ब्राह्मण, सायणाचार्यकृत-भाष्य, नाग प्रकाशन जवाहरनगर दिल्ली, 1990

5- सूर्यसिद्धान्तः - आर्षग्रन्थः, टीकाकार कपिलेश्वरशास्त्री, चौखम्बा संस्कृत संस्थान वाराणसी-2004

6- बृहत्संहिता - आचार्यवराहमिहिरविरचितः, प- अच्युतानन्द झा, चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी संस्करण - 2009।

7- मनुस्मृति - डा- गजानन शास्त्री, चौखम्बा सुरभारती प्रतिष्ठान वाराणसी, 2002

8- ब्रह्मपुराण - गीताप्रैस गोरखरपुर,

9- पद्म पुराण - गीताप्रैस गोरखरपुर,

10- शिवपुराण - गीताप्रेस गोरखरपुर,

11- श्रीमद्भागवतमहापुराण – गीताप्रेस गोरखरपुर,

12- विष्णुपुराण - गीताप्रेस गोरखरपुर,

1-8 साहायक उपयोगी सामग्री -

1- ब्रह्माण्ड और सौर परिवार, प्रो- देवी प्रसाद त्रिपाठी, परिक्रमा प्रकाशन दिल्ली, 2006

2- सृष्ट्युत्पत्ति की वैदिक परिकल्पना, विष्णुकान्त शर्मा, प्रतिभा प्रकाशन दिल्ली, 2008

3- सृष्टि उत्पत्ति - रामनाथ गुप्ता, मीरा प्रकाशन, 2019

4- वेद-विज्ञान चिन्तन, प्रो- बृजबिहारी चौबे, कात्यायन वैदिक साहित्य प्रकाशन, होशियारपुर, 2005

5- वेद विज्ञान, स्वामी प्रत्यगात्मानन्द स्वामी, अनुवादिका डा- उर्मिला शर्मा, विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी, 2012

5-9 निबन्धात्मक प्रश्न—

1- ब्रह्माड के स्वरूप तथा आकृति का विस्तार से वर्णन कीजिए।

2- ब्रह्माण्ड के सदस्यों के विषय में विस्तार से बताइये।

3- आधुनिक खगोलशास्त्र में ब्रह्माण्डोत्पत्ति के सिद्धान्तों का वर्णन कीजिए।

4- विराट पुरूष से ब्रह्माण्डोत्पत्ति के सिद्धान्त की विस्तृत व्याख्या कीजिए।

5- ब्रह्म से ब्रह्माण्डोत्पत्ति के सिद्धान्त की विस्तृत व्याख्या कीजिए।

इकाई -06 सृष्टि संरचना का स्वरूप

इकाई की रूपरेखा -

6-1 प्रस्तावना

6-2 उद्देश्य

6-3 मुख्य भाग

6-3-1 उपखण्ड एक - सृष्टि संरचना का काल

6-3-2 उपखण्ड दो - वेदों में सृष्टि संरचना का स्वरूप

6-3-3 उपखण्ड तीन - पुराणों में सृष्टि संरचना का स्वरूप

6-3-4 उपखण्ड चार - दर्शन शास्त्र में सृष्टि संरचना का स्वरूप

6-4 सारांश

6-5 पारिभाषिक शब्दावली

6-6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

6-7 सन्दर्भ ग्रन्थों की सूची

6-8 साहायक उपयोगी सामग्री

6-9 निबन्धात्मक प्रश्न

6-1 प्रस्तावना—

वैदिक वाङ्मय में सृष्टि के विषय पर बहुत स्थानों पर विचार किया गया है। ऋग्वेद,यजुर्वेद, मुण्डकोपनिषद्, तैत्तिरीयोपनिषद्, प्रश्नोपनिषद्, छान्दोग्यापनिषद् तथा बृहदारण्यकोपनिषद् में इस विषय पर विस्तार से विचार किया गया है। महाभारत मनुस्मृति, महाभारत, पुराण, दर्शन, ज्योतिषादि ग्रन्थों में भी सृष्टि संरचना के स्वरूप का सविस्तार वर्णन प्राप्त होता है। सृष्टि की उत्पत्ति के विषय में वैज्ञानिक मान्यता यह है कि सृष्टि की उत्पत्ति Big-bang (बृहद् विस्फोट) के साथ ही प्रारम्भ हुई और परिवर्तन अनेक चरणों से होती हुई वर्तमान स्थिति तक पहुँची है। बिगबैंग के साथ ही आकाश और समय का कार्य प्रारम्भ हुआ। सृष्टि उत्पत्ति का क्रम इस प्रकार रहा- आकाश, ज्वलनशील वायु, अग्नि, जल और का मण्डल। नीहारिका मण्डल में ही सौर मण्डलों ने स्थान पाया। पृथ्वी की उत्पत्ति सूर्य से छिटक कर अलग होने के बाद धीरे-धीरे परिवर्तित होकर वर्तमान स्वरूप में हुई। श्वास लेने योग्य वायु के बनने, पानी के पीने योग्य होने पर पानी के अन्दर सर्वप्रथम जलचरों को जीवन मिला। फिर क्रमशः जलचर, स्थलचर और आकाशचर प्राणियों की उत्पत्ति हुई। सृष्टि उत्पत्ति के पूर्व क्या था? इस विषय में विज्ञान का कहना है कि Big-bang के बाद ही सृष्टि संरचना के नियम विकसित हुए हैं। सृष्टि की संरचना कैसे हुई? इससे पूर्व यह भी जानना आवश्यक है कि सृष्टि की संरचना का कार्य कब प्रारम्भ हुआ तथा सृष्टि संरचना का प्रारम्भ कब हुआ। इस इकाई में आप सृष्टि संरचना के कालतथा वेदों,वेदाङ्गों, पुराणों, स्मृतिग्रन्थों तथा दर्शनशास्त्र में वर्णित सृष्टि की संरचनाके विषय में अध्ययन करेंगे।

6-2 उद्देश्य—

इस इकाई के निम्नलिखित उद्देश्य हैं -

1- सृष्टि संरचना को बताने में समर्थ होंगे।

2- सृष्टि की संरचना का समय बता सकेंगे।

3- सृष्टि संरचना के स्वरूपकी वैदिक अवधारणा की व्याख्या कर सकेंगे।

4- पुराणों में सृष्टि संरचना का वर्णन कर सकेंगे

5- दर्शन शास्त्र के अनुसार सृष्टि संरचना के स्वरूप का विवेचन करने में समर्थ होंगे।

6-3-1 सृष्टि संरचना काल—

किसी वस्तु की सम्यक् रचना का स्वकीय रूप संरचना का स्वरूप कहलाता है। सृष्टि संरचना का स्वरूप एक महत्वपूर्ण विषय है। सृष्टि संरचना के विषय में ज्ञान प्राप्त करने से पूर्व यह भी जानना आवश्यक है कि इस चराचर जगत् का निर्माण कार्य कब प्रारम्भ हुआ। इस विषय में सूचना का सन्दर्भ वेदों के चक्षु स्वरूप ज्योतिषशास्त्र है। ज्योतिषशास्त्र में सृष्ट्यादि से लेकर प्रलय पर्यन्त काल की गणना की गई है।

ज्योतिषशास्त्र के सिद्धान्त ग्रन्थों में कालमानाध्याय में कहा गया है कि सृष्टि की उत्पत्ति ब्रह्मा का दिन प्रारम्भ होने पर हुई। अर्थात ब्रह्मा का कल्प तुल्य दिन पूर्ण होने पर प्रलय होती है। तदनन्तर एक कल्प तुल्य रात्रि में वह विश्राम करते है। द्वितीय अहोरात्र प्रारम्भ होने पर वह संसार का निर्माण कार्य प्रारम्भ करते हैं।

इस प्रकार दो कल्प तुल्य ब्रह्मा का एक अहोरात्र होता है। एक कल्प में सन्धि सहित 14 मनु होते हैं। प्रत्येक मनु में 71 महायुग होते हैं। एक महायुग का मान 12000 दिव्य वर्ष होता है। दिव्य वर्ष देवताओं से सम्बन्धित वर्ष होता है जिसमें 360, देवताओं के दिन होते हैं। देवताओं के एक दिन में 360 सौरदिन होते हैं। सूर्य का एक अंश तुल्य भोगकाल एक सौर दिन कहलाता है तथा 360 सौर दिन का एक सौरवर्ष जो देवताओं का एक दिन दिन अथवा दिव्यदिन है।

एक महायुग में कृतयुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग तथा कलियुग नामक चारयुग सन्धि सहित होते हैं। चार हजार दिव्य वर्ष का एक कृतयुग कहा है। इस युग की जितने दिव्य वर्ष की अर्थात् 400 वर्ष की सन्ध्या होती है और उतने ही वर्षों की अर्थात् 400 वर्षों का सन्ध्यांश का समय होता है अर्थात् कृतयुग का कुल मान 4800 दिव्यवर्ष है। त्रेता युग का मान 3000 दिव्यवर्ष तथा 300 वर्ष की संध्या 300 वर्ष सन्ध्यांश कुल मान 3600 दिव्यवर्ष है। द्वापर युग का मान 2000 दिव्यवर्ष, 200 दिव्यवर्ष सन्धि एवं 200 दिव्यवर्ष संध्यांश कुल मान 2400 दिव्य वर्ष तथा कलियुग का मान 1000 दिव्यवर्ष, सन्धि-संध्यांश 200 वर्ष कुल मान 1200 वर्ष है। इस प्रकार कुल मान 4800+3600+2400+1200=12000 दिव्यवर्ष एक महायुग का मान होता है। अर्थात -

सूर्य का एक अंश तुल्य भोगकाल	=	एक सौर दिन
360 सौर दिन	=	देवताओं का एक दिन (दिव्यदिन)
360 दिव्यदिन	=	1 दिव्य वर्ष।
12000 दिव्य वर्ष	=	1महायुग
71 महायुग	=	1 मनु
ससन्धि 14 मनु	=	1 कल्प = ब्रह्मा का दिन
2 कल्प	=	ब्रह्मा का एक अहोरात्र।

देव युगों को 1000 से गुण करने पर जो काल परिणाम निकलता है, वह ब्रह्मा का एक दिन और उतने ही वर्षों की एक रात समझना चाहिए। यह ध्यान रहे कि एक देव वर्ष 360 मानव वर्षों के बराबर होता है। जो लोग उस एक हजार दिव्य युगों के परमात्मा के पवित्र दिन को और उतने की युगों की परमात्मा की रात्रि समझते हैं, वे ही वास्तव में दिन-रात = सृष्टि उत्पत्ति और प्रलय काल के विज्ञान के वेत्ता लोग हैं। इस आधार की सृष्टि की आयु = 12000 ×1000 देव वर्ष = 12000000 देव वर्ष 12000000×360 = 4320000000 मानव सौरवर्ष। अतः 12000000 देव वर्ष = 4320000000 मानव वर्ष पहले जो बारह हजार दिव्य वर्षों का एक दैव युग कहा है, इससे 71 (इकहत्तर) गुणित अर्थात् 12000×71 = 852000 दिव्य वर्षों का अथवा 852000×360= 306720000 वर्षों का एक मन्वन्तर का काल परिणाम गिना गया है। इस प्रकार वह महान् परमात्मा असंख्य मन्वन्तरों को, सृष्टि उत्पत्ति और प्रलय को बार-बार करता रहता है, अर्थात् सृष्टि संरचना

प्रवाह से अनादि है। उक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि 4320000000 सौरवर्ष पूर्व ब्रह्मा का दिन प्रारम्भ हुआ तथा सृष्टि की रचना का कार्य प्रारम्भ हुआ।

सृष्टि की रचना का प्रारम्भ कब हुआ ? इस विषय पर विचार करने के पश्चात इस विषय पर विचार करना आवश्यक है कि सृष्टि में मानव की उत्पत्ति कब हुई, क्योंकि मानव के उत्पन्न होने पर ही तो वेद का ज्ञान उसे प्राप्त हुआ है। इससे पूर्व की स्थिति अर्थात् सृष्टि उत्पन्न होने के प्रारम्भ से मानव के उत्पन्न होने तक के समय पर भी विचार करना परमावश्यक है। वास्तव में मनुष्य ने तो अपने उत्पन्न होने के बाद ही समय की गणना प्रारम्भ की है। सृष्टि के उस समय की गणना वह कैसे करता, जब बन ही रही थी ? वह कैसे जानता कि सृष्टि उत्पन्न होने की क्रिया के प्रारम्भ होने से उसके पूर्ण होने तक सृष्टि निर्माण में कितना समय व्यतीत हुआ है ? सूर्यसिद्धान्त में इस विषय पर विचार किया गया है। समस्त वैदिक वाङ्मय के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि सृष्टि के रचयिता परब्रह्म हैं। वैदिक वाङ्मय में परब्रह्म को ही प्रजापति, विश्वकर्मा, हिरण्यगर्भ, विराट पुरुष आदि के नाम से सम्बोधित किया गया है। वेदाङ्ग-ज्योतिषशास्त्र के आर्षग्रन्थ सूर्यसिद्धान्त के कालमानाध्याय में वर्णन सृष्टि काल के विषय इस प्रकार से वर्णन आया है -

ग्रहर्क्ष-देव-दैत्यादि सृजतोऽस्य चराचरम्।

कृताद्रिवेदा दिव्याब्दाः शतघ्ना वेधसो गताः।

अर्थात् ग्रह, नक्षत्र, देव, दैत्य आदि चर (जंगम जीव-जन्तु) अचर (स्थावर वृक्ष पर्वतादि) की रचना करने में ब्रह्मा को कल्पारम्भ से शत गुणित 474 दिव्य वर्ष अर्थात् $474 \times 100 = 47400$ दिव्य वर्ष बीत गए। एक दिव्यवर्ष में होते हैं अर्थात $47400 \times 360 = 17064000$ सौर वर्ष। तथा $4320000000 - 17064000 = 4302936000$ सौरवर्ष। उक्त विवेचन से सिद्ध होता है कि सूर्यसिद्धान्त के काल से 4320000000 सौर वर्ष पूर्व सृष्टि की रचना प्रारम्भ हुई तथा 4302936000 सौरवर्ष पूर्व सृष्टि की सम्पूर्ण गतिविधियों का प्रारम्भ हुआ। अर्थात ग्रह, नक्षत्रों ने चलना प्रारम्भ किया तथा पृथ्वी पर चराचर का प्रारम्भ हुआ।

अतिलघूत्तरीय प्रश्न

1. एक कल्प में सन्धि सहित कितने मनु होते है ?
2. एक देव वर्ष कितने मानव वर्षों के बराबर होता है ?
3. एक महायुग में कितने युग सन्धि सहित होते है ?
4. कितने सौरवर्ष पूर्व ब्रह्मा का दिन प्रारम्भ हुआ ?
5. ग्रह, नक्षत्र, देव, दैत्य आदि चर-अचर की रचना करने में ब्रह्मा को कल्पारम्भ से कितने दिव्य वर्ष बीत गए ?

6-3-2 वेदों में सृष्टि संरचना का स्वरूप—

सृष्टि संरचना के स्वरूप को लेकर सर्वप्रथम यह विचार उत्पन्न होता है कि यह दृश्यमान जगत् कहाँ से आया? इसको लाने वाला कौन है? इसका निर्माणकर्ता कौन है? इत्यादि अनेक प्रश्न उत्पन्न होते हैं। इसका समाधान

क्या है? यह सृष्टि संरचना का स्वरूप -क्रम अनन्त है और इसकी जिज्ञासाएँ भी अनन्त हैं। इस विषय से सम्बन्धित जिज्ञासाएँ वेदों में अनेक स्थानों पर दृष्टिगोचर होती हैं। विश्वकर्मा सूक्त में "किंस्विद्वनङ्कऽउसवृक्षआस यतोद्यावापृथिवीनिष्टतक्षुः" जिज्ञासा व्यक्त करते हुए कहा गया है कि वह कौन सा वन है तथा वन का कौन सा वृक्ष है जहाँ से आकाश तथा पृथ्वी को बनाया। इसी प्रकार ऋग्वेद के नासदीय सूक्त में सृष्टि संरचना के स्वरूप का वर्णन इस प्रकार आया है। यथा –

नासदासीन्नो सदासात्तदानीं नासीद्रजो नोव्योमा परोयत्।
किमावरीवः कुहकस्य शर्मन्नंभः किमासीद् गहनंगभीरम् ॥१॥

उस समय अर्थात् सृष्टि की संरचना से पहले प्रलय दशा में असत् अर्थात् अभावात्मक तत्त्व नहीं था। सत् तत्त्व भी नहीं था, रजः अर्थात् स्वर्गलोक, मृत्युलोक और पाताल लोक नहीं थे, अन्तरिक्ष नहीं था और उससे परे जो कुछ है वह भी नहीं था, वह आवरण करने वाला तत्त्व कहाँ था और किसके संरक्षण में था। उस समय कठिनाई से प्रवेश करने योग्य गहरा क्या था, अर्थात् वे सब तत्व विद्यमान नहीं थे।

न मृत्युरासीदमृतं न तर्हि न रात्र्या अह्न आसीत्प्रकेतः।
अनीद वातं स्वधया तदेकं तस्माद्धान्यन्न पर किं च नास ॥२॥

उस प्रलय कालिक समय में मृत्यु नहीं थी और अमृत भी नहीं था। निशा और दिवस भी नहीं थे। उस समय वह ब्रह्म तत्व ही केवल प्राण युक्त, क्रिया से शून्य और माया के साथ जुड़ा हुआ एक रूप में विराजमान था, उस माया सहित ब्रह्म से भिन्न कुछ भी नहीं था और उससे परे भी कुछ तत्व नहीं था।

तम आसीत्तमसा गूढमग्रेऽप्रकेतं सलिलं सर्वमा इदं।
तुच्छयेनाभ्वपिहितं यदासीत्तपसस्तन्महिना जायतैकं॥३॥

सृष्टि के संरचना होनेसे पहले अर्थात् प्रलय अवस्था में यह जगत् अन्धकार से परिपूर्ण था और यह जगत् तमस रूप मूल कारण में अवस्थित था, अज्ञात यह सम्पूर्ण जगत् जलमय था। अर्थात् उस समय कार्य और कारण दोनों मिले हुए थे यह जगत् है वह व्यापक एवं निम्न स्तरीय अभाव रूप अज्ञान से निमग्न था। अतः कार्यकारण एकरूप में विद्यमान यह जगत् संरचना ईश्वर के संकल्प और तप की प्रभाव से संरचित हुआ।

कामस्तदग्रे समवर्तताधि मनसो रेतः प्रथमं यदासीत्।
सतो बन्धुमसति निरविन्दन्हृदि प्रतीष्या कवयो मनीषा ॥४॥

सृष्टि संरचना से पूर्व उस महान परमेश्वर के मन में सृष्टि संरचना की इहा समुत्पन्न हुई, जो कर्म राशी बीज रूप में थी वह इस संरचना का उपादान कारण बनी।

तिरश्चीनो विततो रश्मिरेषामधः स्विदासी३दुपरि स्विदासीत्।
रेतोधा आसन्महिमान आसन्त्स्वधा अवस्तात्प्रयतिः परस्तात् ॥५॥

सूर्य रश्मिवत् सृष्टि संरचना के बीज को पोषण करने वाले वह महान पुरुष भोक्ता रूप में हुए, और भोग्य पदार्थ की रचना हुई। यहाँ पर भोक्ता एवं भोग्य की रश्मियाँ ऊपर-नीचे तिरश्चीन रूप में विस्तार को प्राप्त हुई। जो सर्वतो भावेन भोग्य शक्ति निम्न एवं भोक्ता उदात्त था।

शतपथ ब्राह्मण षष्ठ काण्ड एवं 11,1,6 में सृष्टि संरचना के संदर्भ में वर्णन प्राप्त होता है कि पूर्व काल में सलिल ही था उन जलों ने प्रजा की कामना से तप किया तब उनमें हिरण्मयाण्ड उत्पन्न हुआ, तथा उससे प्रजापति उत्पन्न हुए। सभूरिति व्याहरत् सेयं पृथिव्यभवद्भुव इति तदिदमन्तरिक्षमभवत् स्वरिति सासौ द्यौरभवत् । अर्थात् प्रजापति ने भू शब्द के उच्चारण के द्वारा भू लोक भुवः शब्द से अन्तरिक्ष लोक तथा स्वः शब्द के द्वारा दिव लोक अर्थात् स्वर्गादि लोकों कि संरचना की।

विराट पुरुष से सृष्टि संरचना का स्वरूप —

ऋग्वेद के पुरुष सूक्त में 16 मन्त्रों में सृष्टि संरचना के स्वरूप का कारण विराट पुरुष को बताया गया है।

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्। स भूमिं सर्वतोवृत्वात्यतिष्ठद्दशांगुलम्।।१

पुरुष एवेदं सर्वं यत् भूतम् यच्च भव्यम्। उतामृतत्वस्येशानो यदह्नेना तिरोहति।।२

सूक्त में वर्णित विराट् पुरुष ही इस ब्रह्माण्ड रूपी यज्ञ में स्वयं को अर्पित करके अनेक रूपों में प्रकट होता है तदनन्तर सृष्टि संरचना के स्वरूप की उत्पत्ति प्रारम्भ होती है। यह पुरुष विराट् परमेश्वर अनन्त शिरों, अगणित नेत्रों, तथा अगणित चरणों से युक्त है। वह भूमि अथवा त्रैलोक्य को चारों ओर से व्याप्त करके दस अंगुल अर्थात् दस गुणित सात आवरणों से युक्त ब्रह्माण्ड को अतिक्रान्त करके स्थित है। अर्थात् वह परम पुरुष ब्रह्माण्ड को भीतर और बाहर से व्याप्त किए हुए हैं। यह सब कुछ दृश्यमान वर्तमान जगत् पुरुष ही है। जो कुछ हो चुका है, भूतकालीन और जो कुछ होगा अर्थात् भविष्यत् कालीन जगत् भी पुरूष ही है और वह पुरुष देवताओं का अथवा अमरत्व का स्वामी है। पुरुष अन्न अर्थात् प्राणियों के भोग्य पदार्थों के कारण बढ़ता है अर्थात् इस दृश्यमान जगत् रूप अवस्था को प्राप्त करता है। इतनी इसकी महिमा है अर्थात् भूत-भविष्यत् वर्तमान कालत्रयवर्ती यह समग्र जगत् इसकी महिमा मात्र है। कुछ योग साधकों का मानना है कि वह परमपुरुष नाभि से दस अंगुल ऊपर हृदय देश मे विराजमान रहते हैं। ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति। यह तथ्य श्रीमद्भगवद्गीता के वचन से भी प्रमाणित होता है। सम्पूर्ण प्राणी अर्थात् यह समग्र जगत् इसका केवल पाद (चतुर्थांश) है। इसके तीन पाद अर्थात् तृतीयांश अविनाशी रूप से द्युलोक में अर्थात् स्वप्रकाश रूप में अवस्थित रहते हैं। संसार से ऊपर तीन पादों वाला यह विराट् पुरुष इस जगत् से ऊपर उठा हुआ इस पुरुष के मुख से ब्राह्मण हुए, बाहुओं से क्षत्रिय हुए। इस पुरुष के जो दोनों ऊरु हैं उनसे वैश्य और पैरों से शूद्र प्रकट हुए। उनके मन से चन्द्रमा हुए, चक्षु से सूर्य हुए, कानों से वायु तथा प्राण हुए और मुख से अग्निदेव हुए। उस यज्ञ पुरुष की नाभि से अन्तरिक्ष लोक उत्पन्न हुआ, शिर से स्वर्ग प्रकट हुआ, पैरों से पृथ्वी और कानों से दिशाएं उत्पन्न हुईं। इसी प्रकार उस पुरुष में ही ये सब लोक कल्पित हुए।

सप्तास्यासन् परिधयस्त्रिः सप्त समिधः कृताः ।

देवा यद् यज्ञं तन्वाना ऽ अबध्नन् पुरुषं पशुम् ॥

जब देवों(प्रजापति के प्राणरूप इन्द्रादिक, साध्य देवों, योगियों, ऋत्विग्भूत मरीचि आदिक, विद्वानों) ने यज्ञ का विस्तार करते हुए पुरुष रूप पशु को बाँधा तब इसकी सात परिधियाँ थीं, तथा इक्कीस समिधायें बनाई गई।

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्।

ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः ॥

प्रजापति के प्राणरूप देवों ने सर्वहुत यज्ञ द्वारा जिस प्रकार यज्ञरूप परम पुरुष का भजन किया था वैसे ही योगियो ने समाधि यज्ञ द्वारा नारायणात्मक यज्ञदेव का पूजन किया, वे विविध यज्ञरूप धर्म ही श्रेष्ठ हैं। विविध यज्ञ करने वाले वे महात्मा गण स्वर्ग या मोक्षपद लाभ करते हैं जहाँ साध्य नामक पूर्वदेव विद्यमान हैं।

विश्वकर्मा से सृष्ट्युत्पत्ति –

विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतो मुखो विश्वतो हस्त उत विश्वतस्पात्।

सं बाहुभ्यां नमति सं पतत्रैर्द्यावापृथिवी जनयन् देव एकः ॥

शुक्लयजुर्वेदीय माध्यन्दिनशाखीय वेददीप भाष्यकार आचार्य महीधर कहते हैं- अकेले ही बिना किसी के सहयोग से विश्वकर्मा देव ने द्युलोक एवं भूलोक को बाहुरूपी धर्म और अधर्म के द्वारा तथा पतनशील पञ्चभूतों के उपादान कारण के द्वारा समस्त जीवों की रचना करते हैं वह विश्वकर्मा सब तरफ से चक्षु-मुख भुजा एवं पद वाले हैं।

विश्वकर्मन्हविषा वावृधानः स्वयं यजस्व पृथिवीमुत द्याम्।

मुह्यन्त्वन्ये अभितो जनास इहास्माकं मघवा सूरिरस्तु ॥

वाचस्पतिं विश्वकर्माणमूतये मनोजुवं वाजे अद्या हुवेम।

स नो विश्वानि हवनानि जोषद्विश्वशम्भूरवसे साधुकर्मा ॥

ऋग्वेद के 81 एवं 82वें विश्वकर्मा सूक्त में विश्वकर्मा को सृष्टि संरचना के स्वरूप का कल्पयिता माना गया है। विश्वकर्मा ने सर्वप्रथम जल को उत्पन्न किया तत्पश्चात जल में इधर-उधर चलने वाली द्यावापृथ्वी की रचना की। द्यावापृथ्वी के प्राचीन तथा अन्त्य प्रदेशों को विश्वकर्मा ने सुदृढ किया। द्वितीय मन्त्र में कहा गया है कि, विश्वकर्मा बृहत् हैं तथा वो सब जानते हैं तथा सब कुछ देखते है। 82वे सूक्त में विश्वकर्मा का सर्वोच्चशक्ति के रूप में वर्णन किया गया है। इस सूक्त के अनुसार विश्वकर्मा अपनी संकल्पात्मक बुद्धि के सामर्थ्य से समस्त जगत् को धारण करने वाले हैं। उस बुद्धिमान ने हिरण्यगर्भ को उत्पन्न किया तदनन्तर पूर्व से उत्तर परिणाम को प्राप्त होते हुए द्यौ और पृथिवी को जन्म दिया। इन दोनों के जब आद्यन्त भाग स्थिर हो गए तो पुनः उस बुद्धिमान ने द्यौ और पृथिवी का विस्तार किया।

हिरण्यगर्भ अथवा प्रजापति से सृष्टिसंरचना का स्वरूप—

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेकासीत्।

स दाधार पृथ्वीं द्यामुतेमां कस्मै देवायहविषा विधेम ॥

य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्यदेवाः ।

यस्य छायामृतं यस्य मर्त्युः कस्मै देवायहविषा विधेम ॥

सृष्टि उत्पत्ति से पूर्व वह हिरण्यगर्भ उत्पन्न हुआ, उत्पन्न होते ही सभी प्राणियों का एकमात्र स्वामी हुआ, उसने पृथिवी और द्युलोक को धारण किया। जो हिरण्यगर्भ आत्म बल और भौतिक शारीरिक बल देने वाला है, अमृतत्व और मृत्युत्व छाया के समान जिसके वशवर्ती हैं जो अपनी महिमा से अकेले ही श्वास लेते हुए तथा पलक झपकाते हुए विश्व का स्वामी हो गया, जो इस दो पैरों वाले मनुष्य तथा चार पैरों वाले गाय, घोड़ा आदि पशुओं का स्वामी हुआ। जिसकी महिमा से ये पर्वत हैं, नदियों के साथ समुद्र भी जिसकी महती महिमा का यशो गान करते हैं, ये प्रधान दिशायें (पूर्व आदि चार दिशायें) और बाहु के समान कोण दिशायें (आग्नेय आदि चार कोण दिशायें) जिसकी महिमा को कहते हैं, हिरण्यगर्भ प्रजापति ने ही द्युलोक को ऊपर उठाया हुआ है और पृथिवी को स्थिर किया है, जिसने स्वर्ग लोक को ऊपर थामा हुआ है और सूर्य को ऊपर अन्तरिक्ष में थामा है, जो आकाश में जलों को बनाने वाला है। संसार की रक्षा करने के हेतु से निर्माण करने के लिए स्थिर किये गये और प्रकाशमान होते हुये द्युलोक और पृथिवी लोक को वह अपने मन से देखता है, उस प्रजापति को आधार बना कर सूर्य उदय होकर प्रकाशित होता है। जब प्रजापति रूप गर्भ को धारण करती हुई तथा अग्नि को उत्पन्न करती हुई विशाल जलराशि विश्व में संरचित हुई, तब देवताओं का एक प्राणभूत वायु की संरचना हुई।

ब्रह्मा से विश्व संरचना—

वेदों के अनुसार ब्रह्म सृष्टि के रचयिता हैं। ऋग्वेद के सूक्तों में वर्णन किया गया है कि सृष्टि के आदि में न सत् था और न असत् था, न आकाश था, न वायुमण्डल था और न दिन-रात थे। केवल ब्रह्म की ही सत्ता थी। ब्रह्म को किसी ने उत्पन्न नहीं किया, वह स्वयं उद्भूत (स्वयं उत्पन्न) है। ब्रह्म अनादि है। ब्रह्म में स्वयं संकल्प शक्ति होती है। ब्रह्म ने सृष्टि के सृजन का संकल्प किया। उनका यह संकल्प ही जाज्वल्यमान तप था, जो चतुर्दिक् व्याप्त था। उस महाज्योति परमतत्त्व से ऋत और सत्य की उत्पत्ति हुई। यथा-

ऋतं च सत्यं चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत।

ततो रात्र्यजायत ततः समुद्रोऽर्णवः।।

अर्थात् उस जाज्वल्यमान परमतेज से ऋतं (ज्ञान) तथा सत्य की संरचना हुई। उन परमाणुओं के स्थूल होने पर पदार्थ की संरचना हुई। दिनरात्रि की रचना हुई तथा जल से परिपूर्ण समुद्र की सृष्टि संरचना हुई। इस प्रकार सृष्टि संरचना के स्वरूप का प्रारम्भ हुआ। ब्रह्म से की संकल्पना का वर्णन अन्य उपनिषदों, पुराणों तथा दर्शन शास्त्रादि में भी प्राप्त होता है।

लघूत्तरीय प्रश्न —

1. ऋग्वेद के पुरुष सूक्त में जगत की सृष्टि कारण किसे बताया गया है।
2. विराट पुरुष के किन अंगों से ब्राह्मण तथा क्षत्रिय उत्पन्न हुए।

3- विश्वकर्मा ने सर्वथम किस को उत्पन्न किया

4- हिरण्यगर्भ कौन-सा बल देने वाला है,

5- ब्रह्म का संकल्प कैसा था।

6-3-3 पौराणिक सृष्टि संरचना का स्वरूप—

भारतीय चिन्तन परम्परा में पुराणों का विशिष्ट स्थान है। प्रायः सभी पुराणों में सृष्टि संरचना का स्वरूप वर्णन प्राप्त होता है। विष्णु पुराणमें पराशर जी कहते हैं कि इस सृष्टि संरचना का मूल कारण विष्णु हैं। पद्मपुराण के अनुसार जगत् के प्रलयके पूर्व कुछ भी नहीं था। सब कुछ करने वाली ब्रह्मसंज्ञक एक ज्योति नित्यमाया रहित, शान्तनिर्मल, नित्यनिर्मल आनन्दसागर अर्थात् आनन्द से पूर्णतः परिपूर्ण तथा नितान्त स्वच्छ थी जिसकी मोक्ष की इच्छा करने वाले पुरुष सदा इच्छा किया करते हैं। वह ज्योतिर्ब्रह्म सर्वज्ञ है, ज्ञान स्वरूप वाला है तथा वही सृष्टिका मूल कारण है। ब्रह्मवैवर्त पुराण में भी वर्णित है कि विश्व का अधिष्ठाता विराट् स्वरूप वाला स्थूल से भी स्थूलतम को धारण करने वाला है। महत्तत्त्व आदि रूप वाला सृजन की ओर उन्मुख होता हुआ अपनी ही कला द्वारा हृदय में नित्य सूक्ष्म को एकचित्त करके सृजन करने वाला परब्रह्म है।

विष्णु पुराणके सदृश ही गरुड पुराण में भी जगत् की सृष्टि, स्थिति एवं प्रलय- इन तीनों कार्यों को भगवान विष्णु की पुरातनी क्रीडा कहा है। नर, नारायण, वासुदेव, निरंजन परमात्मा तथा परब्रह्म भी भगवान विष्णु ही है। इस जगत् के जन्म, पालन और प्रलयादि के कारण भी वे ही हैं। वही व्यक्त और अव्यक्त स्वरूप वाले हैं तथा पुरुष और काल रूप से अवस्थित है। व्यक्त विष्णु स्वरूप है तथा पुरुष तथा काल इन्हीं का अव्यक्त रूप है।

मत्स्य पुराण के अनुसार भी महाप्रलय व्यतीत होने के अनन्तर समस्त जगत् की स्थिति अन्धकार में घने तम से आच्छन्न थी, यथा - अन्धकार में सोए हुए चर वा अचर वस्तु की भाँति न तो पता लगने योग्य, न पहचानने योग्य और न ही कहीं कोई वस्तु जानने योग्य थी। निराकार, इन्द्रियों से परे, सूक्ष्म से अतिसूक्ष्म, महान् से अत्यधिक महत्ता और अविनाशी अर्थात् अविनाश सत्ता वाले, जगत् में नारायण नाम से प्रसिद्ध, इस महाप्रलय के अनन्तर संसार में पुण्य कर्म के प्रभाव से घने तम का विनाश करते हुए चराचर जगत् के उत्पत्ति कारक स्वयं प्रादुर्भूत हुए।

नारदीय पुराण द्वारा भी समस्त जगत् उसी नारायण में व्याप्त है। नारायण ही परम-तत्त्व अथवा परमब्रह्म का स्वरूप है। नारायण अविनाशी अनन्त एवं सर्वव्यापी है। महर्षि वेदव्यास द्वारा रचित श्री मद्भागवत पुराण वैष्णव पुराणों में एक अद्वितीय महनीयता से मण्डित है श्रीमद् भागवत के अनुसार उस परम पुरुष परमात्मा ने काल रूपी निमित्त कारण को लेकर क्रीडा के लिए अपने को ही विश्वरूप में सृजन किया है। इसके पूर्व विष्णु माया ने इस विश्व का संहार कर दिया था और विश्व की तन्मात्रा ब्रह्म के स्वरूप में लीन हो गई थी उसी को उन अव्यक्त मूर्ति वाले नारायण ने काल को निमित्त बनाकर पुनः प्रकाशित कर दिया। यह विश्व जैसा इस समय है वैसा ही इसके पहले था और आगे भी ऐसा ही रहेगा इसमें प्राकृत अर्थात प्रकृति से उत्पन्न होने वाला 6 और

विकृति से उत्पन्न मनुष्य आदि जीव कुल नौ प्रकार की सृष्टि होती है। दसवीं सृष्टि में वह परम पुरुष स्वयं रहता है। काल द्रव्य और गुण इन तीनों से तीन प्रकार का प्रलय भी होता है। ऊपर जो 9 प्रकार की सृष्टि बतला कर आए हैं उनमें से पहली सृष्टि उस परम पुरुष द्वारा गुणोंकी विद्यमान महत्तत्त्व लक्षणात्मकसे होती है दूसरी सृष्टि अहंकारसे होती है जिससे द्रव्य ज्ञान और क्रियाकी उत्पत्ति हुआ करती है तीसरी सृष्टि में वायु आदि सूक्ष्मभूत उत्पन्न होते हैं। यह सृष्टि द्रव्यशक्तिमती है, और इनमें पंचमहाभूत जायमान होते हैं । इसी प्रकार चतुर्थ सृष्टि में ज्ञान क्रियात्मक इंद्रियों की उत्पत्ति होती है। पंचम सृष्टि वैकारिक, ज्ञान शक्ति संपन्न और इंद्रियों के अधिष्ठाता देवताओंकी उत्पत्ति होती है। छठी सृष्टि से अंधकार उठता है जो अज्ञान का जन्मदाता है। यह छह प्रकार की प्राकृत सृष्टिओं का वर्णन किया। अब वैकृतसृष्टि वर्णन करते हैं, ऊपर जो सृष्टि बताई गई हैं वह सब भगवानकी रजोगुण लीला रूप वाली है। सातवीं मुख्य सृष्टि छह प्रकार के वृक्षों की उत्पत्ति होती है, जैसे- वनस्पति अर्थात् बिना फूल के फल देने वाले वृक्ष जैसे गूलर आदि औषधि, बोए जाने पर पके फल देकर समाप्त हो जाने वाले धान आदि, लता किसी के सहारे ऊपर चढ़ने वाली। सार-सार त्वक् अर्थात् जिनके छिलके में ही तत्व रहता है जैसे- बांस-बेत आदि। वीरुध यह भी लता के समान होती है किंतु इसे ऊपर चढ़ने की आवश्यकता नहीं पड़ती है, जैसे- जूही आदि । और द्रुम जो फूलने के बाद फले जैसे आम अमरूद आदि । ये छहों प्रकार के वृक्ष पृथ्वी के भीतर से अपना आहार ऊपर को खींचते हैं इनमें चेतना शक्ति नहीं दिखती इनके भीतर स्पर्श शक्ति प्रबल होती है। और देश काल की अवस्थाके अनुसार इनमें विविध प्रकार के परिणाम भी लक्षित होते हैं। आठवीं सृष्टिसे तिर्यग्- पक्षी योनि के जीवों की उत्पत्ति होती है जिनके कुल 28 भेद होते हैं। जैसे अविद अर्थात् स्तनादि ज्ञान शून्य । भूरि तमस अर्थात् केवल अपने आदर की जानकारी रखने वाले। घ्राणज्ञ अर्थात् नाकसे सूंघ कर समझने वाले। हृदि अवेदि अर्थात् विशेष अनुसंधान करने में असमर्थ। गो, बकरी, भैंस, हिरण, गवय और रुरु अर्थात् मृग विशेष। भेड़ा भेड़ी और यह 9 प्रकार के पशु दो खुर वाले होते हैं गधा, घोड़ा, खच्चर, गौर और चमरी यह 6 पशु एक खुर वाले हैं। अब 5 नख वाले पशुओंके नाम जानें कुत्ता, गीदड़, भेड़िया, बाघ, बिलाव, खरहा, शल्लक- सेही सिंह, बंदर, हाथी, कछुआ और मगर आदि जन्तु तथा कंक अर्थात् कड़ाकुल, गिद्ध, बटेर, बाज, भास, भालू, मोर, हंस, सारस, चकवा,कौवा और उल्लू आदि पशु पंछी पंचनख वाले हैं। ऊपर गिनाए मगर आदि जंतु और कंक आदि पक्षी सब मिलाकर 28 प्रकार के तिर्यग् योनि के जंतु होते हैं। उल्टे सोने वाले मनुष्यों की नवीं सृष्टि मानी गई है यह मनुष्य अधिक रजोगुणात्मक तथा कर्मशील हैं और दुख को भी सुख मानते हैं यह तीनों ही सृष्टियाँ वैकृत हैं। देवताओं की सृष्टि भी वैकृत सृष्टि के ही अंतर्गत है किंतु सनत्कुमार आदि की सृष्टि उभयात्मक प्राकृत तथा वैकृतात्मक है क्योंकि यह देवता और मनुष्य दोनों ही नाम से प्रसिद्ध हैं। देव सृष्टि आठ प्रकार की है। जैसे- देव, पितर, असुर, गंधर्व, अप्सरा, यक्ष,राक्षस,चारण, भूत, प्रेत, पिशाच, सिद्ध, विद्याधर और किंपुरुष आदि ब्रह्माजी की सृष्टि के यह 10 भेद हैं। यह वर्णन श्रीमद्भागवतके तृतीयस्कन्ध के दशमाध्यायमें प्राप्त होता है। ब्रह्मा ने सनक, सनंदन, सनातन और सनत कुमार इन 4 ऋषियों को उत्पन्न किया यह सभी पूर्ण ब्रह्मचारी थे। उन्हें उत्पन्न करने के

बाद ब्रह्माने उन सब से सृष्टि संरचना हेतु कहा लेकिन उनकी अनिच्छा प्रकट हुई तब ब्रह्माजीने अपनी अवहेलना समझ कर मन को यद्यपि शांत किया लेकिन क्रोध आने के कारण उनके भ्रू के मध्य भागसे नील लोहित के रूप में देवताओं के पूर्वज अर्थात् भगवान शिव प्रकट हुए। जन्म लेते ही बच्चों की तरह उद्वेग के साथ रोनेके कारण उनका नाम रुद्र कहा। हृदय, इंद्रियां, प्राण, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, सूर्य, चंद्रमा तथा तप। इनके रहने के स्थान बने। रुद्र के सिवाय इनके 11 नाम हैं मन्यु, मनु, महिनस,महान,शिव,क्रतुध्वज,उग्ररेता,भव,काल,वामदेव और धृतव्रत। तथा इनकी संगिनी धी, वृत्ति, उशना, उमा, नियुत्सर्पि,इला, अंबिका, इरावती, सुधा, दीक्षा, और रुद्राणी यह 11 रुद्र शक्तियां हुईं। ब्रह्मा के बताए नाम, स्थान और स्त्रियों को अंगीकार करके बहुत सी प्रजाओं की सृष्टिके लिए ब्रह्माने आज्ञा दी हे रुद्र आप प्रजापति हो सृष्टि संरचना करो। ब्रह्माजी की आज्ञा पाकर रुद्र भगवानने अपने समान बलवान आकृतिमान नील लोहित तत्वको लिए हुए तीक्ष्ण स्वभाव की संतानों को उत्पन्न किया । ब्रह्माजी फिर सृष्टि करने का विचार करने लगे और उनके शरीरसे 10 पुत्र उत्पन्न हुए। मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, भृगु, वशिष्ठ, दक्ष और नारद इनमें ब्रह्माजी की गोदसे नारद अंगूठेसे दक्ष प्रजापति श्वास से वशिष्ठ त्वचासे भृगु हाथ से क्रतु नाभि से पुलह कानोंसे पुलस्त्य ऋषि मुखसे अंगिरा नेत्रों से अत्रि और मन से मरीचि उत्पन्न हुए। ब्रह्माजी के दाहिने स्तनसे धर्म उत्पन्न हुआ जिसमें नारायण का निवास रहता है उनकी पीठसे अधर्म की उत्पत्ति हुई और अधर्मसे संसारको भयभीत करने वाली मृत्युका जन्म हुआ। ब्रह्माजी के हृदयसे कामदेव भौहोंसे क्रोध निचले ओठ से लोभ मुख से वाणी लिंग से समुद्र और गुदा से पापों के केंद्र राक्षस उत्पन्न हुए। उन चतुरानन की छाया से कर्दम प्रजापति उत्पन्न हुए जो देवहूतिके पति थे उनके मन और उनकी देह से समस्त विश्व उत्पन्न हुआ । ब्रह्माजी के पूर्व मुख से ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, तथा शस्त्र होता के द्वारा किए जाने वाले कार्य, अध्वर्यु के कर्तव्य कर्म, स्तुति योग्य ऋचाओं का समुदाय, उद्गाता के गाने योग्य मंत्रों तथा प्रायश्चितात्मक ब्रह्म कर्म उत्पन्न हुए उनके दक्षिण मुखसे आयुर्वेद अर्थात् चिकित्सा शास्त्र धनुर्वेद अर्थात आयुधविद्या, गांधर्वविद्या और स्थापत्य- विश्वकर्मा का शास्त्र उत्पन्न हुआ । इतिहास महाभारत पंचम वेद माना जाता है। उसे और पुराणोंको ब्रह्माजी ने अपनी चारों मुखों से उत्पन्न किया। इसी प्रकार उनके पूर्व मुखसे षोडशी और उक्थ, दक्षिण मुखसे पुरीषी अर्थात् नयन तथा अग्निष्टोम, पश्चिम मुख्य से आप्तोर्याम तथा अतिरात्र और उत्तर मुख से वाजपेय तथा गोसव नाम के यज्ञ विशेष उत्पन्न हुए। इसी प्रकार ब्रह्मा जी ने अपने पूर्व आदि में पहुंचे क्रमशः पूर्वादि चारों मुख से विद्या अर्थात शुचिता, दान, दया, तप एवं सत्य धर्म के इन चार चरणों तथा ब्रम्हचर्य का गार्हस्थ्य वानप्रस्थ और सन्यास वृत्तियों समेत इन चार आश्रमों को उत्पन्न किया इसके बाद उन्होंने अपने पूर्व आदि मुखों से चार प्रकार का ब्रम्हचर्य जैसे सावित्र उपनयन के दिनों से 3 दिन तक गायत्री अध्ययन के लिए 3 दिन का अनुष्ठान प्राजापत्य अर्थात् 1 वर्ष तक वेदाध्ययन पूर्वक रखा जाने वाला ब्रह्मचर्य व्रत ब्राह्म अर्थात् वेदाध्ययन काल तक किया जाने वाला ब्रह्मचर्य व्रत और वृहद् आजन्म पालन किया जाने वाला। ब्रम्हचर्य व्रत और चार प्रकार की गृहस्थी वृत्ति हैं वार्ता अर्थात् शास्त्रोक्त कृषि आदि

जीविका के कार्य संचय अर्थात् यज्ञादि कराने का कार्य शालीन अर्थात् अयाचितवृत्ति शिलोञ्छ अर्थात् फसल कटने के बाद खेत में गिरे हुए दानों को चुनना यह वृत्तियाँ उत्पन्न हुई। इसी प्रकार वानप्रस्थ वृत्ति में चार भेद हैं, वैखानस अर्थात् बिना जोती-बोई भूमि से उपजे अन्न पर जीवन निर्वाह करने वाले, बालखिल्य अर्थात् नवीन अन्न प्राप्त होने पर पूर्व संचित अन्न को त्याग देने वाले। औदुंबर अर्थात् सवेरे जिस दिशा पर दृष्टि पड़े उधर ही से अन्न या फल मूल लाकर जीवन यापन करने वाले। फेनप अर्थात् अपने आप गिरे हुए फल आदि पर जीविका चलाने वाले। इसी प्रकार चार सन्यास वृत्तियां भी ब्रह्मा जी के चारों मुख से उत्पन्न हुई हैं- जैसे कुटीचक अर्थात् कुटी बनाकर एक स्थल पर रहना तथा आश्रम कर्म को प्रधान मानकर तदनुसार आचरण करने वाले। बह्वोद अर्थात् कर्म की अपेक्षा ज्ञान को प्रधान मानने वाले। हंस अर्थात् ज्ञान के अभ्यास में तत्पर। और परमहंस (निष्क्रिय) अर्थात् तत्व ज्ञान प्राप्त किए हुए जीवनमुक्त ज्ञानी। इसी तरह ब्रह्मा जी के मुख से आन्वीक्षिकी- आध्यात्मिक शास्त्र अर्थात् मोक्ष प्रदान करने वाली आत्मविद्या। त्रयी अर्थात् स्वर्ग आदि फल देने और धर्म अर्थ तथा काम को पूर्ण करने वाली कर्म विद्या। वार्ता अर्थात् जीविका-व्यापारादि संपादन करने वाली विद्या। दंडनीति शासन कार्य को बताने वाली विद्या, तथा चार महाव्याहृतियाँ भूः भुवः स्वः महः आदि उत्पन्न हुई, इसी प्रकार ब्रह्मा जी के हृदय रूपी आकाश से प्रणव अर्थात् ॐकार उनके रोमों से उष्णिक्, त्वचा से गायत्री, मांस से त्रिष्टुप्, स्नायु से अनुष्टुप्, अस्थियों से जगती, मज्जा से पंक्ति, और प्राणों से बृहती नाम के छंद की संरचना हुई। इसी रीति से ब्रह्मा के जीव से ककार से मकार पर्यन्त स्पर्श संज्ञक वर्ण, देह से स्वर वर्ण अकारादि, उनकी इंद्रियों से श ष स ह उष्म संज्ञक वर्ण और उनके बल से य र ल व यह अंतस्थ व्यंजन उत्पन्न हुए, उन प्रजापति के विहार से निषाद, ऋषभ, गांधार, षड्ज, मध्यम, धैवत और पञ्चम आदि सात संगीत स्वर उत्पन्न हुए, उस व्यक्त और अव्यक्त ब्रह्मा की शब्द मूर्ति का यह क्रम बताया। वैखरी रूप से व्यक्त और प्रणव रूप से अव्यक्त उन ब्रह्मा जी को उस परिपूर्ण तथा सर्वशक्तिमान ब्रह्म का बोध बना रहता है, उन्होंने जिन महा शक्तिमान मरीचि वशिष्ठ आदि ऋषियों की सृष्टिकी थी वह सृष्टि का विस्तार नहीं कर सके उन्होंने सोचा कि यद्यपि मैं नित्य सृष्टिके विस्तार की चेष्टा करता रहता हूं, फिर भी संतोषजनक विस्तार नहीं होता यह प्रजा तो नहीं बढ़ रही है इसमें देव बाधा है देव के विषय में वे इस प्रकार सोच ही रहे थे—

कस्य रूपमभूद् द्वेधा यत्कायमभिचक्षते ।ताभ्यां रूपविभागाभ्यां मिथुनं समपद्यत ॥
यस्तु तत्र पुमान्सोऽभूत् मनुः स्वायम्भुवः स्वराट् । स्त्री याऽऽसीच्छतरूपाख्या महिष्यस्य महात्मनः ॥
तदा मिथुनधर्मेण प्रजा ह्येधाम्बभूविरे ।स चापि शतरूपायां पञ्चापत्यान्यजीजनत् ॥
प्रियव्रतोत्तानपादौ तिस्रः कन्याश्च भारत ।आकूतिर्देवहूतिश्च प्रसूतिरिति सत्तम ॥
आकूतिं रुचये प्रादात् कर्दमाय तु मध्यमाम् ।दक्षायादात्प्रसूतिं च यत आपूरितं जगत् ॥

उसी समय ब्रह्माजी का शरीर दो भागोंमें विभक्त हो गया और उन दोनों भागोंमें से एक स्त्री और एक पुरुष इनका जोड़ा उत्पन्न हो गया, उनमें पुरुष स्वयंभू मनु और स्त्री उनकी रानी शतरूपा हुई। अब इनके द्वारा प्रजा बढ़ने लगी स्वयंभू मनुने शतरूपा से 5 संतान उत्पन्न की जिनमें दो पुत्र और 3 कन्याएं थी, पुत्र प्रियव्रत और

उत्तानपाद पुत्रियां आकूति देवहूति और प्रसूति स्वयंभू मनुने आकूति का मरीचि प्रजापति देवहूति का कर्दम प्रजापति और प्रसूति का दक्ष प्रजापति के साथ विवाह कर दिया जिनकी उत्पन्न की हुई संतानों से सारे संसार की संरचना हुई।

परम पुरुष की आधीनता में रहने वाले काल से गुणों में भेद उत्पन्न हुआ उनके स्वभाव से परिणाम एक रूप का त्याग कर रूपांतर प्राप्त करना और जीव के अदृश्य कर्मों से महत् तत्त्व की उत्पत्ति हुई महत् तत्व के विकार से और रजो गुण तथा सतोगुण की वृद्धि होती है और उससे तमोगुण प्रधान द्रव्य क्रियात्मक सृष्टि होती है उसी वस्तु को अहंकार कहते हैं उस अहंकार के तीन भेद हैं विकारी का तेजस राजस तमस उन तीनों में तीन प्रकार की शक्तियां अंतर्हित रहती हैं जैसे द्रव्य शक्ति क्रिया शक्ति और ज्ञान शक्ति द्रव्य शक्ति पृथ्वी जल आदि पांच महा भूतों का संचालन करती है क्रिया शक्ति इंद्रियों पर प्रभुत्व रखती है और ज्ञान शक्ति प्राणियों को देवताओं की ओर ले जाती है। उनमें से तामस अहंकार के विकार से आकाश की सृष्टि हुई आकाश का मात्रा गुण शब्द है वही शब्द द्रष्टा और दृश्य का लक्षण बताता है। आगे चलकर आकाश के विकार से स्पर्श गुण युक्त वायु की उत्पत्ति हुई। आकाश के सहयोग से वायु में शब्द वही प्राण और तेज युक्त बल के लक्षणों से लक्षित होने लगा फिर वायु के विकार और काल कर्म तथा स्वभाव से रूपवान् तथा शब्द और स्पर्श को नियुक्त तेज की उत्पत्ति हुई तेज के विकार से जल की उत्पत्ति हुई। वह जल आकाश आदि के संयोग से रूप स्पर्श और शब्द गुण संपन्न हुआ। उस जल के विकार से गंधवती पृथ्वी उत्पन्न हुई आकाश आदि के संसर्ग से इसमें रस स्पर्श और रूप यह गुण आए वही कार्य विकार वाले सात्विक अहंकार से मन तथा 10 विकार वाले देवता उत्पन्न हुए जैसे दिशा, वायु, सूर्य, प्रचेता, अश्विनी कुमार यह पांचो क्रमशः कान, त्वचा, नेत्र, जिह्वा और नासिका के स्वामी है। अग्नि इंद्र उपेंद्र मित्र तथा प्रजापति यह पांच क्रमशः वाणी हाथ-पांव गुदा और शिश्न के स्वामी हैं। तेज के विकार से दस इंद्रियां उत्पन्न हुई क्योंकि ज्ञान शक्ति अर्थात् बुद्धि और क्रिया शक्ति अर्थात् प्राण यह दोनों तेजस अहंकार के ही कार्य हैं इसी से ज्ञान क्रिया की विशेष रूप इंद्रियां भी तेजस अहंकार से सम रचित है ये इंद्रियां हैं जैसे कान, त्वचा, चक्षु, जीह्वा, घ्राण, वाक्, हाथ, पैर, गुदा और लिंग। भाव में अलग अलग रहकर शरीर की रचना नहीं कर सके तब भगवान की शक्ति से प्रेरित होकर सत् और असद् इन दोनों प्रधान गुणों के भाव एक में मिलकर समष्टि और व्यष्टि रूप दो प्रकार के शरीर बने तब हजारों वर्ष बाद जल में पड़े हुए अचेतन अण्ड को काल कर्म तथा स्वभाव की प्रधानता देकर परमात्मा ने जीवित किया उसके बाद स्वयं परमात्मा उस अण्डे को फोड़कर बाहर निकला। उसके हजारों शिर, हजारों पैर, हजारों हाथ, हजारों आंखें, हजारों मुख और हजारों मस्तक से उसके बाद विद्वानों ने उसी के अंगों से सब लोकों की कल्पना की जांघ से नीचे पैर तक के अंगों से अतल से लेकर पाताल तक के सात लोकों तथा जांघ से ऊपर के अवयवों से पृथ्वी आदि सात लोकों की उत्पत्ति मानी गई, उस परम पुरुष के मुख से ब्राह्मण बाहू दंड से क्षत्रिय दोनों ऊरुओं से वैश्य और दोनों पांव से शुद्र उत्पन्न हुए उस परमात्मा के दोनों पांव से भूलोक, नाभि से भुवः लोक, हृदय से स्वर् लोक, वक्षः स्थल से महर् लोक, की रचना हुई उसकी ग्रीवा से जनोलोक, दोनों स्तनों से तपो लोक और

मस्तकों से सत्य लोक की रचना हुई, उन लोगों की अपेक्षा ब्रह्म लोक अर्थात् वैकुंठ सनातन है इसका कभी भी विनाश नहीं होता उस परम पुरुष की कमर में अतल लोक, दोनों उरुओं में वितल लोक, दोनों घुटनों से सुतल लोक और जानुओं से तलाताल लोक की सृष्टि हुई। दोनों गुल्फों में महातल लोक, एड़ियों और पैरों में रसातल लोक और तलुओं में पाताल लोक समझना चाहिए। दुसरी अवधारणा में पैरों में भूलोक, नाभि में भुवः लोक और मस्तक में स्वर्ग लोक की कल्पना संरचित हुई। उस विराट् रूप धारी महापुरुषके मुखसे वचन और अग्नि त्वचा आदि अवयवों से गायत्री आदि छंद और सात धातु तथा उनकी जिह्वा से हव्य अर्थात देवताओं का अन्य कब लिया कब दिया पितरों के उपयुक्त अमृत देवता तथा पितरोंको अर्पण करके शेष बचा अन्य और सभी रसों की उत्पत्ति हुई उनकी घ्राण इंद्रिय से जगत के समस्त प्राणियों के प्राण सामान्य तथा विशेष प्रकार के गंध और दोनों अश्विनी कुमार उत्पन्न हुए। उनके नेत्रोंसे रूप तेज और सूर्य उत्पन्न हुए उनके कान दसों दिशाएं नक्षत्र आकाश और शब्द के जनक हुए। उनका शरीर सभी वस्तुओं के सारांश और सौंदर्य का केंद्र बना उनकी त्वचा स्पर्श वायु और सभी यज्ञोंका उत्पत्ति स्थान हुई उनके रोम तथा वृक्ष जाति के जनक हुए। जिनसे की यज्ञ के कार्य संपन्न होते हैं उनके केस मेघ के उनकी दाढ़ी मूछ बिजली के हाथ पैर के नाखून शिला और लोकों के जनक हुए। उनके हाथ सबका कल्याण करने वाले लोकपाल जन्मदाता हुए भगवान के विक्रम अर्थात् चलना फिरना से भूर भुवा स्वाहा तीन लोक क्षेम अर्थात् पाए धन की रक्षा और शरण अर्थात् पैसे बचाने वाले का आश्रय हुआ उन नारायण के चरण सभी कामनाओं और वर्कर आधार हुए विराम भगवान का उपस्थ जल वीर्य सृष्टि में एक प्रजापति तथा संतान प्राप्ति के लिए किए जाने वाले सम्भोग से उत्पन्न आनंद का कारण हुआ उनकी गुदा यम मित्र मल त्याग हिंसा कल्याण और नरक का उत्पत्ति स्थान हुआ उन भगवान का पृष्ठ भाग पर आ जाए अधर्म और तमोगुण का आश्रय हुआ उनकी नारियां नदियों का आश्रय हुई और उनकी हड्डियां संसार के पर्वतों का आश्रय बनी उनका उधर अनादि प्रधान तथा समुद्रों और प्राणियों के मरण का उत्पत्ति स्थान हुआ उनका हृदय मन का जन्मदाता हुआ उन पर ब्रह्म की आत्मा धर्म हमारा और आपका सनकादिक को मारो शिव तत्व ज्ञान और सतोगुण का आश्रय हुई। ब्रह्मा नारद शिव तथा सनकारी मुनि देवता दित्य मनुष्य हाथी पक्षी मृत आदि वन जंतु सर्प गंधर्व अप्सरा यक्ष सोगन भूत गण सर्प पशु पितर सिद्ध विद्याधर चारण और वृक्ष आदि विविध प्रकार के जल स्थल तथा आकाश चारी ग्रह नक्षत्र विद्युत मेघादि यह सब और भूत भविष्य तथा वर्तमान नारायण के ही अधीन है उन्होंने अपने विशाल रूप से इस विश्व को घेर रखा है जैसे सूर्य मंडल अपने भीतर बाहर सब तरफ प्रकाश कहलाता है उसी तरह वह विराट पुरुष अपने आप को प्रकाशित करता हुआ जगत के सब प्राणियों तथा वस्तुओं को प्रकाश पहुंचाता है वह विराट पुरुष मृत्यु और अन्य अर्थात कर्म फल को पार कर गया है इसलिए वह अमृत व मोक्ष रूप निजानंद अर्थात अभय इन दोनों का स्वामी है इसी कारण उसकी अलग नियम महिमा गाई जाती है जो लोग उसके अधीन रहते हैं उन्हें बंधन और मोक्ष दोनों ही समय-समय पर वह परम पुरुष प्रदान करता रहता है यह बताने के लिए पुरुष सूक्त के पादु से विश्वा भूटानी इस वैदिक मंत्र का अर्थ बताते हुए कहते हैं यह भूर लोग आदि सभी

लोग और इसके निवासी उसके पांव में स्थित हैं और उसके 3 उसके शेष तीन पदों में अमृत क्षेम और अभय विद्यमान रहा करते हैं पूर्व कल्प में भी संतान ही निश्चित ब्रह्मचारी वानप्रस्थ और यदि इनके आश्रम तीनों लोगों के बाहर थे और ब्रह्मचर्य व्रत हीन गृहस्थाश्रम ई त्रिलोकी के भीतर विद्यमान थे वह जगत पूज्य परमात्मा दक्षिण और उत्तर इन दोनों मार्गों पर चलता था दक्षिण मार्ग का तात्पर्य है अविद्या सर्वथमय कर्म है विद्या साधन और उपासना रूपी मार्ग है जिस पर चलने से सांसारिक भोगों की प्राप्ति होती है और इसी मार्ग विद्या से मोक्ष होता है वह परमात्मा इन दोनों मार्गों का पारंगत है उस परमात्मा से यह ब्रह्मांड उत्पन्न हुआ और उसी में प्रायः इंद्रिय और सतवादी तीनों गुणों से युक्त एक विराट पुरुष जायमान हुआ वही ईश्वर कहलाया वह ईश्वर उस विश्व अपने शरीर और अंड से भी आगे निकल गया। जैसे मंडल के मध्य में रहने वाला सूर्य अपनी किरणों से सर्वत्र प्रकाश पहुंचाता हुआ अंत में वह अपने मंडल और विश्व को लांग जाता है। मुनि लोगों के भी उसे तब जान पाते हैं जब उनकी दे इंद्रियां तथा मन शांत रहता है अशांत पुरुषके हृदय में भी यद्यपि उस महापुरुष की ज्योति जागती रहती है फिर भी दुष्टोंकी विविध तर्कना उनसे वह प्रकाश लुप्त हो जाता है उसका प्रथम अवतार पुरुष है काल स्वभाव सत और असद अर्थात कार्य कारणात्मिका प्रकृति यह उसकी शक्तियां है द्रव्य अर्थात महाभूत अहंकार सतवादी गुण इंद्रियां समझती शरीर तथा विराट स्वराज स्थावर और जंगम यह व्यष्टि शरीर ही उस परम पुरुषके कार्य है ब्रह्मा शिव विष्णु यह दक्ष आदि प्रजापति नारद आदि देवर्षि स्वर्ग लोकके पालक खग लोग पालक नवलोक पालक तल तथा पाताल लोक पालक गंधर्व विद्याधर और चरणोंके रक्षक यक्ष राक्षस और सर्प योगके पालक अथवा समस्त श्रेष्ठ ऋषि पितर दायित्व पति सिद्धोंके स्वामी तथा प्रेत पिशाच भूत कुष्मांड बृंगी आदि जल जंतु अमृत तथा पक्षियोंके अधिपति। यह उनकी विभूति हैं।

अहमेवासमेवाग्रे नान्यद् यत् सदसत् परम्।
पश्चादहं यदेतच्च योऽवशिष्येत सोऽस्म्यहम्॥ 1॥
ऋतेऽर्थं यत् प्रतीयेत न प्रतीयेत चात्मनि॥
तद्विद्यादात्मनो मायां यथाऽऽभासो यथा तमः॥ 2॥
यथा महान्ति भूतानि पूतेषूच्चावचेष्वनु।
प्रविष्टान्यप्रविष्टानि तथा तेषु न तेष्वहम्॥ 3॥
एतावदेव जिज्ञास्यं तत्त्वजिज्ञासुनाऽऽत्मनः।
अन्वयव्यतिरेकाभ्यां यत् स्यात् सर्वत्र सर्वदा॥ 4॥

श्री मद्भागवत पुराण स्पष्ट शब्दोंमें अद्वैत तत्त्वका प्रतिपादन करता है। इस पुराणके द्वितीय स्कन्धके नवम अध्यायका अध्ययन करें तो ज्ञात होता है कि परमतत्त्व ब्रह्माको चतुःश्लोकी भागवतका उपदेश करते हुए सृष्टि संरचनाके सम्बन्धमें भगवानके द्वारा ब्रह्माजीके लिए यह दिव्य ज्ञान प्रदान किया गया है कि सृष्टिके पूर्व केवल मैं ही मैं विद्यमान था मेरे अतिरिक्त न स्थूल था न सुक्ष्म और न तो दोनों का नियत पूर्ववर्ती कारण अज्ञान। जहां

यह सृष्टि नहीं है वहां मैं ही मैं हूं, और सृष्टिके रूप में जो कुछ प्रतीत हो रहा है वह भी मैं ही हूं। और जो कुछ शेष रहेगा वह भी वस्तुतः न होने पर भी जो कुछ अनिर्वचनीय वस्तु मेरे अतिरिक्त मुझ परमात्मा में दो चंद्रद्वयकी भाँति मिथ्या ही प्रतीत हो रही है अथवा विद्यमान होने पर भी आकाश मंडलके नक्षत्रोंमें राहुकी भांति जो मेरी प्रतीति नहीं होती, उसे मेरी माया समझना चाहिए। जैसे प्राणियोंके पंच भूत रचित छोटे बड़े शरीरोंमें आकाश आदि पंचमहाभूत उन शरीरोंके कार्य रूपसे निर्मित होने के कारण प्रवेश करते भी हैं और पहले से ही उन स्थानों और रूपोंमें कारण रूपसे विद्यमान रहनेके कारण प्रवेश नहीं भी करते वैसे ही उन प्राणियोंके शरीरकी दृष्टिसे मैं उनमें आत्माके रूपसे प्रवेश किए हुए हूं और आत्म दृष्टिसे अपने अतिरिक्त और कोई वस्तु न होनेके कारण उनमें प्रविष्ट नहीं भी हूं। यह ब्रह्म नहीं, यह ब्रह्म नहीं इस प्रकार नेति नेति निषेधकी पद्धतिसे और यह ब्रह्म है, यह ब्रह्म है इस अन्वय की पद्धतिसे यही सिद्ध होता है कि सर्वातीत एवं सर्वस्वरुप भगवान ही सर्वदा और सर्वत्र स्थित हैं वे वास्तविक तत्व हैं, जो आत्मा अथवा परमात्माका तत्व जानना चाहते हैं उन्हें केवल इतना ही जाने की आवश्यकता है

बहुविकल्पीय प्रश्न -

1. विष्णु पुराण के अनुसार सृष्टि संरचना के स्वरूप का मूल कारण कौन हैं -

(क) ब्रह्मा (ख) विष्णु

(ग) सूर्य (घ) महेश

2. ब्रह्मवैवर्त पुराण के अनुसार विश्व का अधिष्ठाता कौन है।

(क) परब्रह्मा (ख) विष्णु

(ग) सूर्य (घ) महेश

3. गरूड़ पुराण में भी जगत् की सृष्टि, स्थिति एवं प्रलय- इन तीनों कार्यों को किसकी की पुरातनी क्रीडा कहा है।

(क) परब्रह्मा (ख) विष्णु

(ग) सूर्य (घ) महेश

4. मत्स्य पुराण के अनुसार चराचर जगत् के उत्पत्ति कारक स्वरूप कौन प्रादुर्भूत हुए-

(क) परब्रह्मा (ख) विष्णु

(ग) सूर्य (घ) नारायण

5 श्री मद्भागवत पुराण स्पष्ट शब्दों में किस तत्त्व का प्रतिपादन करता है -

(क) द्वैत (ख) अद्वैत

(ग) विशिष्टाद्वैत (घ) महाद्वैत

6-3-4 दर्शनशास्त्र में सृष्टि संरचना का स्वरूप—

भारत में दर्शन उस विद्या को कहा जाता है जिसके द्वारा तत्त्व का ज्ञान हो सके। तत्त्व दर्शन या दर्शन का अर्थ है तत्व का ज्ञान। मानव के दुखों की निवृत्तिके लिए या तत्त्व ज्ञान कराने के लिए ही भारतमें दर्शन का जन्म हुआ है भारतीयर्शन आस्तिक तथा नास्तिक दो भागोंमें विभक्त है। वेदोंकी सत्ताको स्वीकार करने वाले दर्शन आस्तिक दर्शन तथा (नास्तिको वेदनिन्दकः) वेदों के अस्तित्व को स्वीकार ना करने वाले दर्शन नास्तिक दर्शन कहलाते हैं। यह न्याय, वैशेषिक, साख्य, योग, मीमांसा तथा वेद ये छः दर्शन आस्तिक दर्शनकी श्रेणीमें, चार्वाक बौध तथा जैन नास्तिक दर्शन कहलाते हैं। प्रायः सभी दर्शनों में सृष्टि संरचनाके स्वरूपके विषय में वर्णन किया गया है। यहाँ केवल आस्तिक दर्शनमें सृष्टि संरचनाके स्वरूपके विषयमें विचार किया जा रहा है।

न्याय-वैशेषिक का सृष्टि संरचना कास्वरूप विचार —

न्याय-वैशेषिक दर्शन विश्वकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें सृष्टिवादके सिद्धान्तको अपनाता है। सांख्यको छोड़कर भारतके प्रत्येक दर्शनमें सृष्टिवादके सिद्धान्तको शिरोधार्य किया गया है। परन्तु वैशेषिकके सृष्टि सिद्धान्त की कुछ विशेषताएँ है, जो इसे अन्य सृष्टि सिद्धान्तोंसे अनूठा बना देती है। वैशेषिकके मतानुसार विश्वका निर्माण परमाणुओंसे हुआ है। परमाणु चार प्रकारके हैं पृथ्वीके परमाणु, जलके परमाणु, वायुके परमाणु और अग्निके परमाणु। चूँकि विश्वका निर्माण चार प्रकारके परमाणुओंसे हुआ है। इसलिए वैशेषिकका सृष्टि-सम्बन्धी मत परमाणुवादका सिद्धान्त कहा जाता है। परमाणु शाश्वत होते हैं। इनकी न सृष्टि होती है और न नाश होता है। निर्माणका अर्थ है, विभिन्न अवयवोंका संयुक्त हो जाना, विनाशका अर्थ है विभिन्न अवयवोंका बिखर जाना। परमाणु निरवयव है, इसलिए निर्माण और विनाश से परे हैं।

सांख्य दर्शन में सृष्टि संरचना का स्वरूप विचार—

सांख्य दर्शन की मान्यता है कि संसार की हर वास्तविक वस्तु का उद्गम पुरुष और प्रकृति से हुआ है। पुरुष में स्वयं आत्मा का भाव है जबकि प्रकृति पदार्थ और सृजनात्मक शक्ति की जननी है। विश्व की आत्मायें संख्यातीत है जिसमें चेतना तो है पर गुणों का अभाव है। वही प्रकृति मात्र तीन गुणोंके समन्वय से बनी है। इस त्रिगुण सिद्धान्त के अनुसार सत्त्व, रजस् तथा तमस् की उत्पत्ति होती है। सांख्य दर्शन में सृष्टि संरचना का स्वरूप सूत्र निम्नलिखित है—

सत्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः प्रकृतेर्महान्,
महतोऽहंकारोऽहंकारात् पंचतन्मात्रण्युभयमिनिन्द्रियं
तन्मात्रेभ्यः स्थूल भूतानि पुरुष इति पंचविंशतिर्गणः।।

प्रकृति मूल रूप से सत्व,रज तथा तमस की साम्यावस्था को कहते है। तीनो आवेश परस्पर एक दूसरे को निःशेष कर रहे होते हैं। परमात्मा का तेज परमाणु (त्रित) की साम्यावस्था को भंग करता है और असाम्यावस्था आरंभ होती है। सृष्टि संरचना-कार्य में यह प्रथम परिवर्तन है। इस अवस्था को महत् कहते है। यह प्रकृति का प्रथम परिणाम है। मन और बुध्दि इसी महत् से बनते हैं। इसमें परमाणु की तीन शक्तिया बर्हिमुख होने से आस-पास के परमाणुओं को आकर्षित करने लगती है। अब परमाणु के समूह बनने लगते है।

तीन प्रकार के समूह देखे जाते हैं। एक वे है जिनसे रजस् गुण शेष रह जाता है। यह तेजस अहंकार कहलाता है। इसे वर्तमान वैज्ञानिक भाषा में इलेक्ट्रोन कहते है। दूसरा परमाणु-समूह वह है जिसमें सत्व गुण प्रधान होता है वह वैकारिक अहंकार कहलाता है। इसे वर्तमान वैज्ञानिक प्रोटोन कहते है। तीसरा परमाणु-समूह वह है जिसमें तमस् गुण प्रधान होता है इसे वर्तमान विज्ञान की भाषा में न्यूट्रोन कहते है। यह भूतादि अहंकार है। इन अहंकारों को वैदिक भाषा में आपः कहा जाता है। ये(अहंकार) प्रकृति का दूसरा परिणाम है। तदनन्तर इन अहंकारों से पाँच तन्मात्रएँ (रूप,रस,गंध, स्पर्श और शब्द) पाँच महाभूत बनते है अर्थात् तीनों अहंकार जब एक समूह में आते है, तो वे परिमण्डल कहाते है। परिमण्डलों के समूह पाँच प्रकार के हैं। इनको महाभूत कहते हैं। इन पञ्चमहाभूतों से समस्त चराचर सृष्टि संरचना का स्वरूप होता है।

योग दर्शन में सृष्टि संरचना का स्वरूप सम्बन्धी विचार—

योग-दर्शन में ईश्वर को विश्व का सृष्टिकर्ता, पालनकर्ता और संहारकर्ता नहीं माना गया है। विश्व की सृष्टि प्रकृति के विकास के फलस्वरूप ही हुई है। यद्यपि ईश्वर विश्व का स्रष्टा नहीं है, फिर भी वह विश्व की सृष्टि में सहायक होता है। विश्व की सृष्टि पुरुष और प्रकृति के संयोजन से ही आरम्भ होती है। पुरुष और प्रकृति दोनों एक-दूसरे से भिन्न एवं विरुद्ध कोटि के हैं। दोनों को संयुक्त करने के लिए ही योग-दर्शन में ईश्वर की मीमांसा हुई है "क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टःपुरुषविशेष ईश्वरः"। अतः ईश्वर विश्व का निमित्त कारण है, जबकि प्रकृति विश्व का उपादान कारण है। इस बात को विज्ञानभिक्षु और वाचस्पति मिश्र ने प्रमाणिकता दी है।

मीमांसा-दर्शन में जगत विचार—

उत्तरमीमांसा (वेदांत) अज्ञान से सृष्टि और आत्मज्ञान से सृष्टि का विनाश (मोक्ष) मानता है। अन्य दर्शनों में द्व्यणुकादि क्रम से महाभूत पर्यन्त महासृष्टि और महाभूत से परमाणु पर्यन्त विनाश को महाप्रलय कहा है। अर्थात् संपूर्ण भाव कार्य द्व्यणुकादि क्रम से उत्पन्न होते हैं और स्थूल से परमाणु पर्यंत जाकर नष्ट हो जाते हैं। पंच महाभूतों में पृथ्वी, जल, तेज और वायु के परमाणु नित्य हैं। आकाश स्वयं ही नित्य है, किंतु पूर्व मीमांसा के अनुसार दो प्रकार की सृष्टि और तीन प्रकार के प्रलय होते हैं, जिनमें महासृष्टि और खंड सृष्टि शब्द से दो सृष्टि कही गई है। ऐसे ही प्रलय, महाप्रलय और खंड प्रलय शब्द से तीन प्रलय कहे गए हैं। उनमें खंड सृष्टि और खंड प्रलय आजकल के समान ही माना गया है। उदाहरणार्थ किसी स्थल विशेष का भूकंप आदि से विनाश हो जाता है और कहीं पर नवीन वस्तु की सृष्टि हो जाती है। महासृष्टि में परमाणुओं से द्व्यणुकादि द्वारा पंचमहाभूत पर्यन्त नवग्रहादिकों की सृष्टि होती है। मत्स्यपुराणादि में भी खंड प्रलय के अंतर्गत विद्यमान पदार्थों की स्थिति का विवरण प्राप्त होता है, किंतु पूर्व मीमांसा महासृष्टि और महाप्रलय को स्वीकार नहीं करता। उसके अनुसार सभी पदार्थों के नाश में कोई भी प्रमाण उपलब्ध नहीं होता। अतः मीमांसा दर्शन खंड सृष्टि और खंड प्रलय को ही मानता है।

वेदान्त दर्शन में जगत् विचार —

वेदान्तदर्शन के अनुसार सृष्टि संरचना के स्वरूप में सर्वप्रथम ईश्वर से पाँच सूक्ष्म भूतों का अविर्भाव होता है। माया से आकाश उत्पन्न होता है। आकाश से वायु उत्पन्न होती है, वायु से अग्नि उत्पन्न होती है तथा अग्नि से जल उत्पन्न होता है। इस प्रकार आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी से सूक्ष्म भूतों का निर्माण होता है। पाँच स्थूल भूतों का निर्माण, पाँच सूक्ष्म भूतों का पाँच प्रकार के संयोग होने के फलस्वरूप होता है। जिस सूक्ष्म भूत को स्थूल भूत में परिवर्तित होना है, उनका आधा भाग (1/2) तथा अन्य चार सूक्ष्म तत्त्वों के आठवें हिस्से (1/8) के संयोजन से पाँच स्थूल भूतों का निर्माण होता है। पाँच सूक्ष्म भूतों से पाँच स्थूल भूतों का अविर्भाव का क्रम इस प्रकार होता है

स्थूल आकाश = 1/2- आकाश , 1/8- वायु, 1/8- अग्नि ,1/8- जल, 1/8- पृथ्वी।

स्थूल वायु= 1/2 वायु,1/8 आकाश ,1/8 अग्नि ,1/8 जल ,1/8 पृथ्वी।

स्थूल अग्नि = 1/2 अग्नि ,1/8 आकाश ,1/8 वायु , 1/8 जल , 1/8 पृथ्वी।

स्थूल जल = 1/2 जल ,1/8 आकाश ,1/8 वायु ,1/8 अग्नि , 1/8 पृथ्वी।

स्थूल पृथ्वी = 1/2 पृथ्वी ,1/8 अकाश ,1/8 वायु ,1/8 अग्नि ,1/8 जल।

इस क्रिया को पंचीकरण कहा जाता है। प्रलय का क्रम सृष्टि के क्रम से प्रतिकूल है। प्रलय के समय पृथ्वी का जल में, जल का अग्नि में, अग्नि का वायु में, वायु का आकाश में तथा आकाश का ईश्वर की माया में लय हो जाना है।

रिक्त स्थान की पूर्ति—

1- न्याय-वैशेषिक दर्शन सृष्टि संरचना के सम्बन्ध में -----------------के सिद्धान्त को अपनाता है।

2- सांख्य दर्शन की मान्यता है कि संसार की हर वास्तविक वस्तु का उद्गम -------------- हुआ है।

3- योग-दर्शन में ----------------- को विश्व का सृष्टिकर्ता, पालनकर्ता और संहारकर्ता नहीं माना गया है।

4- मीमांसा ------------------------ से सृष्टि और------------------------- से सृष्टि का विनाश (मोक्ष) मानता है।

10- वेदान्तदर्शन के अनुसार सृष्टि संरचना में सर्वप्रथम ईश्वर से -----------------सूक्ष्म भूतों का अविभाव होता है।

6-4 सारांश—

किसी वस्तु की उत्पत्ति अथवा निर्माण सृष्टि कहलाती है। चराचर जगत् का निर्माण कार्य कब प्रारम्भ हुआ यह एक अत्यन्त महत्वपूर्ण विषय है। ज्योतिषशास्त्र के सिद्धान्त ग्रन्थों में कहा गया है कि सृष्टि की संरचना ब्रह्मा का दिन प्रारम्भ होने पर हुई। सूर्यसिद्धान्त के सृष्टि के रचयिता परब्रह्म हैं तथा ग्रह, नक्षत्र, देव, दैत्य आदि चर-अचर की रचना करने में ब्रह्मा को कल्पारम्भ से 47400 दिव्य वर्ष बीत गए। वेदों में सृष्टि की अवधारणा के चार सिद्धान्त प्राप्त होते हैं - विराट पुरुष से सृष्टि की उत्पत्ति, विश्वकर्मा से सृष्ट्युत्पत्ति, हिरण्यगर्भ अथवा प्रजापति से से सृष्ट्युत्पत्ति तथा ब्रह्मा से विश्व की उत्पत्ति। पुराणों में भी सृष्टि की अवधारणा का वर्णन प्राप्त

होता है। विष्णु पुराण के अनुसार इस जगत् की उत्पत्ति का मूल कारण विष्णु हैं। पद्म पुराण के अनुसार सब कुछ करने वाली ब्रह्मसंज्ञक एक ज्योति है। ब्रह्मवैवर्त पुराण के अनुसार विश्व का अधिष्ठाता विराट् स्वरूप वाला स्थूल से भी स्थूलतम को धारण करने वाला परमब्रह्म स्वेच्छामय सनातन भगवान् सबका बीज स्वरूप है गरुड पुराण में जगत् की सृष्टि, स्थिति एवं प्रलय- इन तीनों कार्यों को भगवान विष्णु की पुरातनी क्रीडा कहा है। मत्स्य पुराण के अनुसार जगत् के स्रष्टा नारायण हैं। नारदीय पुराण के अनुसार समस्त जगत् नारायण में व्याप्त है। दर्शन शास्त्र में भी सृष्टि संरचना के स्वरूप का वर्णन प्रायः सभी आस्तिक तथा नास्तिक दर्शनशास्त्र में किया गया है। न्याय-वैशेषिक दर्शन सृष्टि संरचना केस्वरूप के सम्बन्ध में सृष्टिवाद के सिद्धान्त को अपनाता है। असके अनुसार विश्व का निर्माण चार प्रकार के परमाणुओं से हुआ है। सांख्य दर्शन की मान्यता है कि संसार की हर वास्तविक वस्तु का उद्गम पुरुष और प्रकृति से हुआ है। वेदान्तदर्शन के अनुसार सृष्टि संरचना के स्वरूप में सर्वप्रथम ईश्वर से पाँच सूक्ष्म भूतों का अविर्भाव होता है। इस प्रकार इस इकाई में आपने वेदों पुराणों तथा दर्शनशास्त्र में सृष्टि संरचना के स्वरूप के विषय में विस्तार स अध्ययन किया।

6-5 पारिभाषिक शब्दावली—

लयकर्ता	-	अंत करने वाला
अविनाशी	-	जिसका कभी अंत ना हो
अव्यक्त	-	वाणी के द्वारा जिसका वर्णन न किया जा सके।
निर्जल	-	जल से रहित
निरंजन	-	दुर्गुण एवं दोष से रहित, निगुर्ण ब्रह्म
सृष्टिवाद	-	सृष्टि से सम्बन्धित सिद्धान्त

6-6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर—

अतिलघूत्तरीय प्रश्न

1- 14

2- 2- 360

3- 3- चार

4- 4- 4320000000

5- 5- 47400

लघूत्तरीय प्रश्न

6. ऋग्वेद के पुरुष सूक्त में जगत की सृष्टि कारण विराटपुरुष बताया गया है।
7. विराट पुरुष के मुख से ब्राह्मण तथा भुजाओं सं क्षत्रिय उत्पन्न हुए।
8. सृष्टि संरचना के स्वरूपमें विश्वकर्मा ने सर्वथम जल को उत्पन्न किया
9. हिरण्यगर्भ आत्मबल का देने वाला है,

10. ब्रह्म का संकल्प जाज्वल्यमान तप था, जो चतुर्दिक व्याप्त था।

बहुविकल्पीय प्रश्न -

1- (ख) 2- (क) 3- (ख) 4- (घ) 5-(ख)

रिक्त स्थान की पूर्ति

1- सृष्टिवाद

2- पुरुष और प्रकृति से

3- ईश्वर

4- अज्ञान, आत्मज्ञान

5- पाँच

6-7 सन्दर्भ ग्रन्थों की सूची—

1- ऋग्वेद, सयणाचार्यकृत-भाष्यसंवलिता, अनुवादक पण्डित रामगोविन्द त्रिवेदी, चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी, 2016

2- अथर्ववेद, सयणाचार्यकृत-भाष्यसंवलिता, अनुवादक पण्डित रामगोविन्द त्रिवेदी, चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी, 2016

3- उपनिषत्सञ्चयम्, अनुवादक आचार्य केशवलाल वा- शास्त्री, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान दिल्ली, 2015

4- शतपथ ब्राह्मण, सायणाचार्यकृत-भाष्य, नाग प्रकाशन ज्वाहरनगर दिल्ली, 1990

5- सूर्यसिद्धान्तः - आर्षग्रन्थः, टीकाकार कपिलेश्वरशास्त्री, चौखम्बा संस्कृत संस्थान वाराणसी-2004

6- मनुस्मृति - डा- गजानन शास्त्री, चौखम्बा सुरभारती प्रतिष्ठान वाराणसी, 2002

7- ब्रह्मपुराण - गीताप्रेस गोरखरपुर, विक्रम संवत 2067

8- पद्मपुराण - गीताप्रेस गोरखरपुर, विक्रम संवत 2067

9- शिवपुराण - गीताप्रेस गोरखरपुर, विक्रम संवत 2065

10- श्रीमद्भागवतमहापुराण - गीताप्रेस गोरखरपुर, विक्रम संवत 2066

11- विष्णुपुराण - गीताप्रेस गोरखरपुर, विक्रम संवत 2069

12- मत्स्य पुराण गीताप्रेस गोरखरपुर, विक्रम संवत 2069

13- नारदीय पुराण गीताप्रेस गोरखरपुर, विक्रम संवत 2066

14- ब्रह्मवैवर्तपुराण गीताप्रेस गोरखरपुर, विक्रम संवत 2070

15- भारतीय दर्शन की रूपरेखा - प्रो- हरेन्द्र प्रसाद सिन्हा, मोतीलाल बनारसीदास दिल्ली, 1983

16- भारतीय दर्शन, डा- राधाकृष्णन्, राजपाल एण्ड सन्स दिल्ली -6, 1986

1-8 साहायक उपयोगी सामग्री—

1- ब्रह्माण्ड और सौर परिवार, प्रो- देवी प्रसाद त्रिपाठी, परिक्रमा प्रकाशन दिल्ली, 2006

2- सृष्ट्युत्पत्ति की वैदिक परिकल्पना, विष्णुकान्त शर्मा, प्रतिभा प्रकाशन दिल्ली, 2008

3- सृष्टि उत्पत्ति - रामनाथ गुप्ता, मीरा प्रकाशन, 2019

4- वेद-विज्ञान चिन्तन, प्रो- बृजबिहारी चौबे, कात्यायन वैदिक साहित्य प्रकाशन, होशियारपुर, 2005

5- वेद विज्ञान, स्वामी प्रत्यगात्मानन्द स्वामी, अनुवादिका डा- उर्मिला शर्मा, विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी, 2012

6-9 निबन्धात्मक प्रश्न—

1- सूर्यसिद्धान्त के अनुसार सृष्टि संरचना के स्वरूप के काल पर निबंध लिखिए।

2- वेदों में वर्णित सृष्टि संरचना के स्वरूप का विस्तार से वर्णन कीजिए।

3- पुराणों के अनुसार सृष्टि संरचना के स्वरूप की विस्तृत व्याख्या कीजिए।

4- सांख्य तथा योग दर्शन के अनुसार सृष्टि संरचना के स्वरूप का सविस्तार स्पष्ट कीजिए।

5- वेदान्त दर्शन में वर्णित सृष्टि संरचना के स्वरूप का वर्णन कीजिए।

खण्ड – 2
पौराणिक सृष्टि

इकाई - 7 पुराणों में सृष्टि प्रक्रिया

इकाई की रूपरेखा

7.1 प्रस्तावना

7.2 उद्देश्य

7.3 पुराण एवं सृष्टि परिचय

7.3.1 एक ब्रह्म

7.3.2 त्रिदेव

7.3.3 पंचदेव

7.4 पुराणों में सृष्टि विवेचन

7.4.1 श्रीमद्भागवतमहापुराण, ब्रह्म पुराण, कूर्म पुराण एवं मार्कण्डेय पुराण में प्रतिपादित सृष्टि प्रक्रिया

7.4.2 अन्य मुख्य पुराणों में सृष्टि प्रक्रिया

7.5 सारांश

7.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

7.7 पारिभाषिक शब्दावली

7.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

7.9 सहायक पाठ्यसामग्री

7.10 निबन्धात्मक प्रश्न

7.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई वैदिक सृष्टि विज्ञान (CVC-21) में प्रमाण पत्र पाठ्यक्रम से सम्बन्धित है। 'सृष्टि विज्ञान' एक ऐसा रहस्यमयी विषय है जिसके बारे में प्रत्येक जिज्ञासु प्राणी जानना चाहता है। सृष्टि किसे कहते हैं? सृष्टि की उत्पत्ति कैसे और कब हुई? सृष्टि का निर्माण किसने किया? एक ही सृष्टि में अनेकों सृष्टि का दर्शन हमें कैसे होता है? आदि इत्यादि अनेकों विषय से सम्बन्धित अनगिनत प्रश्न हैं जिसका उत्तर जानने पर उसके उद्भव काल से वर्तमान समय तक अनुसन्धान चल रहा है और दीर्घकालीन कालावधि (सृष्टयन्त) पर्यन्त चलता रहेगा।

सृष्ट्योत्पत्ति से तात्पर्य ब्रह्माण्डीय समस्त चराचर जगत् की उत्पत्ति से है। प्राच्य एवं पाश्चात्य दोनों दृष्टिकोण से सृष्टि उत्पत्ति की व्याख्या हमें अध्ययन से प्राप्त होता है। वैदिक काल से लेकर आधुनिक विज्ञान काल पर्यन्त सृष्टि प्रक्रिया से सम्बन्धित विषयों का अनेकों शोध हो चुका है, हो रहा है और जब तक सृष्टि रहेगी तब तक होता ही रहेगा।

इस इकाई में आप सभी शिक्षार्थीयों के ज्ञानार्थ वैदिक सृष्टिप्रक्रिया के अन्तर्गत पुराणों में सृष्टि प्रक्रिया का किस प्रकार वर्णन किया गया है? प्रमुखता के दृष्टिकोण से कौन-कौन से पुराणों में सृष्टि प्रक्रिया का उल्लेख मिलता है आदि इत्यादि समस्त विषयों का प्रतिपादन करने का प्रयास किया जा रहा है।

इस इकाई के अध्ययन से आप सभी पाठकों को सृष्टि प्रक्रिया के बारे में बोध हो सकेगा, ऐसा मेरा विश्वास है।

7.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप –

1. सृष्टि विज्ञान किसे कहते है, इसे समझा सकेगें।
2. वैदिक परम्परा में सृष्टि विज्ञान का विश्लेषण कर पायेगें।
3. पुराणों में 'सृष्टि प्रक्रिया' के महत्व को बता सकेगें।
4. प्रमुखता के दृष्टिकोण से पुराणों में सृष्टि प्रक्रिया के रहस्य को प्रतिपादित कर लेंगे।
5. पुराण एवं सृष्टि को परिभाषित कर सकेगें।

7.3 पुराण एवं सृष्टि परिचय

पुराण भारतीय संस्कृति की अमूल्य निधि है। भारतीय ज्ञान परम्परा में सर्वविद्या का मूल वेदों में वर्णित विषयों का रहस्य पुराणों में ही रोचक उपाख्यानों के द्वारा प्रस्तुत किया गया है। इसीलिये इतिहास-पुराणों के द्वारा वेदोपबृहण का विधान किया गया है। सामान्यतया पुराण की परिभाषा है – पुरा नवं पुराणम्। अर्थात् प्राचीन या अतीत की बातों को कहना या बताना। पुराण शब्द पुरा + अण् से मिलकर बना है, यहाँ पुरा शब्द का अर्थ प्राचीन या अतीत है, तथा अण् का अर्थ है कहना। भारतीय ज्ञान परम्परा में 18 पुराणों का उल्लेख मिलता है –

मद्वयं भद्वयं चैव ब्रत्रयं वा चतुष्टयम्।

अनापलिङ्गकूर्मानि पुराणानि प्रचक्षते।।

मकार से दो- मत्स्य पुराण एवं मार्कण्डेय पुराण, भकार से दो- भविष्य पुराण एवं भागवत पुराण, ब्रकार से तीन - ब्रह्म पुराण, ब्रह्मवैवर्त पुराण तथा ब्रह्माण्ड पुराण, वकार से - विष्णु पुराण, वामन पुराण, वराह पुराण, अकार से अग्नि पुराण नकार से - नारद पुराण, पकार से - पद्म पुराण, लि से लिङ्ग पुराण, ग से गरूड़ पुराण तथा कु से कूर्म पुराण, स से स्कन्द पुराण तथा शिव पुराण। इस प्रकार कुल 18 पुराण हुए जिनके रचयिता महर्षि वेदव्यास जी है। इन समस्त पुराणों में सृष्टि रचना के बारे में वर्णन मिलता है।

सृष्टि परिचय –

इस ब्रह्माण्ड के अन्तर्गत सहज रूप में आपके या हमारे सामने उपस्थित ग्रह-नक्षत्रादि पिण्ड, तारे या अन्य पिण्ड, पंचभूत जैसे पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाश एवं वायु, पेड़-पौधे, वनस्पतियाँ, नदी, समुद्र, पर्वत, पशु, पक्षी, मनुष्य, कीट, पतंगादि सभी चराचरों की उत्पत्ति को ही 'सृष्टि' के नाम से जाना जाता है। सृष्टि शब्द इकारान्त एवं स्त्रीलिंग है जिसका अर्थ और पर्याय है – निसर्ग, रचना तथा Creation आदि। यह सृष्टि अपने अन्दर अनेक विषमताओं एवं विविधताओं को धारण किए हुए है। इसीलिए आप जैसे-जैसे अपने जीवन पथ पर बढ़ते हुए एक स्थान से दूसरे की यात्रा करते हैं वैसे-वैसे सृष्टि की ये विशिष्टताएँ स्वयं ही आपके समक्ष उपस्थित होकर आपको अपना आभास कराती रहती हैं। यह परिवर्त्तन सबके लिए एक समान ही होता है परन्तु सभी लोग अपनी बुद्धि, आवश्यकता एवं स्थिति के अनुसार इसका पृथक्-पृथक् आभास करते हैं। जहाँ जनसामान्य के लिए यह परिवर्त्तन, एक रोमांच एवं कुतूहल का विषय होता है वहीं वैज्ञानिकों एवं चिन्तकों के लिए अन्वेषण एवं चिन्तन का।

7.3.1 एक ब्रह्म –

सृष्टि रचना के सन्दर्भ में प्राय: समस्त पुराणों में यह उल्लेख मिलता है कि सम्पूर्ण सृष्टि की रचना करने वाला एकमात्र ब्रह्म है जिसे हम परमात्मा, अनन्त, सर्वशक्तिमान, परमपिता आदि अनेक नामों से सम्बोधित करते हैं। वेद का भी कथन है – एकं सद् विप्रा बहुधा: वदन्ति। अर्थात् एक ही सत्य है जिसे हमे अलग-अलग नामों से सम्बोधित करते है और वह सत्य है- एक ब्रह्म जिसने सम्पूर्ण सृष्टि का निर्माण किया है।

सृष्टिस्थित्यन्तकरणीं ब्रह्मविष्णुशिवात्मिकाम्।

स संज्ञां याति भगवानेक एव जनार्दन:।। (विष्णु पुराण अध्याय -2 श्लोक 66)

अर्थात् वह एक ही भगवान जनार्दन जगत् की सृष्टि, स्थिति और संहार के लिए ब्रह्मा, विष्णु और शिव – ये तीन संज्ञाओं को धारण करता है।

7.3.2 त्रिदेव – पुराणों में हमें अध्ययन से 'त्रिदेव' अर्थात् ब्रह्म (सृष्टिकर्ता), विष्णु (पालनकर्ता) और शिव (संहारकर्ता) के नामों का वर्णन प्राप्त होता है। वैदिक सनातन परम्परा में यह त्रिदेव समस्त जगत् के नियन्ता कहे गये हैं। इनके द्वारा ही सृष्टि का सृजन-पालन एवं संहार किया जाता है।

7.3.3 पंचदेव – पंचदेव के अन्तर्गत ब्रह्मा, विष्णु, शिव, गणेश एवं दुर्गा का नाम आता है। यत्र-तत्र पंचदेव में ब्रह्मा के स्थान पर सूर्य का भी उल्लेख मिलता है। इनके पूजन की विधि भी बतलायी गयी है। वैदिक कर्मकाण्ड में दैनन्दिन जीवन में भी मनुष्य को पंचदेव पूजन करने का विधान कहा गया है। देवीभागवत महापुराण के अनुसार सृष्टि की रचना शक्ति अर्थात् दुर्गा के द्वारा की गयी है।

7.4 पुराणों में सृष्टि विवेचन –

'यद् पिण्डे तद् ब्रह्माण्डे' के सिद्धान्तानुसार सामान्यतया हम जानते हैं के सृष्टि का निर्माण क्षिति, जल, पावक, अग्नि एवं वायु से हुआ है। किन्तु केवल यही सत्य नहीं है। पुराणों में स्वयं भगवान नारायण को ही सृष्ट्योत्पत्ति का मूल कहा है और ब्रह्मा जी को सृष्टिकर्ता। देवीभागवत पुराण में भगवती शक्ति दुर्गा को सृष्टि का मूल कहा है तो शिवमहापुराण में शिव को सृष्टि का मूल कहा है। इसीलिए इसके विविध रूपों का वर्णन यहाँ इस इकाई में किया जा रहा है।

7.4.1 भागवतमहापुराण, ब्रह्मपुराण, कूर्म पुराण एवं मार्कण्डेय पुराण में प्रतिपादित सृष्टि प्रक्रिया -

पुराण एवं सृष्टि की परिभाषा समझ लेने के पश्चात् अब यहाँ आप सभी के ज्ञानार्थ पुराणों में सृष्टि प्रक्रिया के बारे में बतलाया जा रहा है –

1. **श्रीमद्भागवतमहापुराण में सृष्टि वर्णन -**

श्रीमद्भागवत महापुराण के द्वितीय स्कन्ध में सृष्टि प्रक्रिया का वर्णन करते हुए नारद जी ने अपने पिता ब्रह्मा जी से पूछा है कि सृष्टि क्या है? इसकी उत्पत्ति कैसे होती है? इसकी संरचना आपके द्वारा कैसे की जाती है?
आप सभी को ज्ञात ही है कि पुराणों में ब्रह्मा जी को सृष्टिकर्ता कहा गया है। इसीलिए यहाँ नारद जी द्वारा अपने पिता ब्रह्मा जी से सृष्टि प्रक्रिया के बारे में प्रश्न किया जा रहा है।

नारद उवाच

देवदेव नमस्तेऽस्तु भूतभावन पूर्वज।
तद् विजानीहि यज्ज्ञानमात्मतत्त्वनिदर्शनम्॥१॥
यद्रूपं यदधिष्ठानं यतः सृष्टमिदं प्रभो।
यत्संस्थं यत्परं यच्च तत्तत्त्वं वद तत्त्वतः॥२॥
सर्वं ह्येतद् भवान् वेद भूतभव्यभवत्प्रभुः।
करामलकवद् विश्वं विज्ञानावसितं तव॥३॥
यद्विज्ञानो यदाधारो यत्परस्त्वं यदात्मकः।

एक: सृजसि भूतानि भूतैरेवात्ममायया॥४॥
आत्मन् भावयसे तानि न पराभावयन् स्वयम्।
आत्मशक्तिमवष्टभ्य ऊर्णनाभिरिवाक्लमः॥५॥
नाहं वेद परं ह्यस्मिन्नापरं न समं विभो।
नामरूपगुणैर्भाव्यं सदसत् किञ्चिदन्यतः॥६॥
स भवानचरद् घोरं यत् तपः सुसमाहितः।
तेन खेदयसे नस्त्वं पराशङ्कां प्रयच्छसि॥७॥
एतन्मे पृच्छतः सर्वं सर्वज्ञ सकलेश्वर।
विजानीहि यथैवेदमहं बुद्ध्येऽनुशासितः॥८॥
ब्रह्मोवाच
सम्यक् कारुणिकस्येदं वत्स ते विचिकित्सितम्।
यदहं चोदितः सौम्य भगवद्वीर्यदर्शने॥९॥
नानृतं तव तच्चापि यथा मां प्रब्रवीषि भोः॥
अविज्ञाय परं मत्त एतावत्त्वं यतो हि मे॥१०॥

श्लोकार्थ है कि नारद जी ने पूछा- हे पितृ देव! आप केवल मेरे ही नहीं, सबके पिता, समस्त देवताओं से श्रेष्ठ एवं सृष्टिकर्ता हैं। आपको मेरा प्रणाम है। आप मुझे वह ज्ञान दीजिये, जिससे आत्मतत्त्व का साक्षात्कार हो जाता है॥१॥ इस संसार का क्या लक्षण है ? इसका आधार क्या है ? इसका निर्माण किसने किया है ? इसका प्रलय किसमें होता है ? यह किसके अधीन है ? और वास्तव में यह है क्या वस्तु ? आप इसका तत्त्व बतलाइये ॥ २ ॥आप तो यह सब कुछ जानते हैं; क्योंकि जो कुछ हुआ है, हो रहा है या होगा, उसके स्वामी आप ही हैं। यह सारा संसार हथेली पर रखे हुए आँवले के समान आपकी ज्ञान-दृष्टि के अन्तर्गत ही है ॥ ३ ॥ आपको यह ज्ञान कहाँ से मिला ? आप किसके आधार पर ठहरे हुए ? आपका स्वामी कौन है ? और आपका स्वरूप क्या है? आप अकेले ही अपनी माया से पञ्चभूतों के द्वारा प्राणियों की सृष्टि कर लेते हैं, कितना अद्भुत है ! ॥ ४ ॥ जैसे मकड़ी अनायास ही अपने मुँह से जाला निकालकर उसमें खेलने लगती है, वैसे ही आप अपनी शक्ति के आश्रयसे जीवों को अपने में ही उत्पन्न करते हैं और फिर भी आपमें कोई विकार नहीं होता ॥ ५ ॥ जगत् में नाम, रूप और गुणोंसे जो कुछ जाना जाता है, उसमें मैं ऐसी कोई सत्, असत्, उत्तम, मध्यम या अधम वस्तु नहीं देखता, जो आपके सिवा और किसीसे उत्पन्न हुई हो || ६ || इस प्रकार सबके ईश्वर होकर भी आपने एकाग्रचित्त से घोर तपस्या की, इस बात से मुझे मोह के साथ-साथ बहुत बड़ी शङ्का भी हो रही है कि आपसे बड़ा भी कोई है क्या ॥ ७॥ आप सर्वज्ञ और सर्वेश्वर हैं। जो कुछ मैं पूछ रहा हूँ, वह सब आप कृपा करके मुझे इस प्रकार समझाइये कि जिससे मैं आपके उपदेशको ठीक-ठीक समझ सकूँ ॥ ८ ॥

प्रश्नोत्तर में ब्रह्माजी ने कहा – हे वत्स नारद! तुमने जीवों के प्रति करुणा के भावसे भरकर यह बहुत ही सुन्दर प्रश्न किया है; क्योंकि इससे भगवान के गुणों का वर्णन करने की प्रेरणा मुझे प्राप्त हुई है ॥ ९ ॥ तुमने मेरे विषय में जो कुछ कहा है, तुम्हारा वह कथन भी असत्य नहीं है। क्योंकि जब तक मुझसे परे का तत्त्व – जो स्वयं भगवान् ही हैं—जान नहीं लिया जाता, तब तक मेरा ऐसा ही प्रभाव प्रतीत होता है ॥१०॥

इसी क्रम में आगे यहाँ ब्रह्मा जी के द्वारा भगवान के गुणों का वर्णन करते हुए सृष्टि प्रक्रिया की बात की जा रही है -

जैसे सूर्य, अग्नि, चन्द्रमा, ग्रह, नक्षत्र और तारे उन्हीं के प्रकाश से प्रकाशित होकर जगत् में प्रकाश फैलाते हैं, वैसे ही मैं (ब्रह्मा) भी उन्हीं स्वयंप्रकाश भगवान् के चिन्मय प्रकाश से प्रकाशित होकर संसार को प्रकाशित कर रहा हूँ। उन भगवान् वासुदेव की मैं वन्दना करता हूँ और ध्यान भी, जिनकी दुर्जय माया से मोहित होकर लोग मुझे जगद्गुरु कहते हैं। यह माया तो उनकी आँखों के सामने ठहरती ही नहीं, झेंपकर दूर से ही भाग जाती है। परन्तु संसार के अज्ञानी जन उसी से मोहित होकर 'यह मैं हूँ, यह मेरा है' इस प्रकार कहते रहते हैं। द्रव्य, कर्म, काल, स्वभाव और जीव-वास्तवमें भगवान् से भिन्न दूसरी कोई भी वस्तु नहीं है॥ वेद नारायण के परायण हैं। देवता भी नारायण के ही अङ्गों में कल्पित हुए हैं और समस्त यज्ञ भी नारायण की प्रसन्नता के लिये ही हैं तथा उनसे जिन लोकों की प्राप्ति होती है, वे भी नारायण में ही कल्पित हैं। सब प्रकार के योग भी नारायण की प्राप्ति के ही हेतु हैं। सारी तपस्याएँ नारायण की ओर ही ले जाने वाली हैं, ज्ञान के द्वारा भी नारायण ही जाने जाते हैं। समस्त साध्य और साधनों का पर्यवसान भगवान् नारायण में ही है ॥ वे द्रष्टा होने पर भी ईश्वर हैं, स्वामी हैं; निर्विकार होने पर भी सर्वस्वरूप हैं। उन्होंने ही मुझे बनाया है और उनकी दृष्टि से ही प्रेरित होकर मैं (ब्रह्मा) उनके (नारायण के) इच्छानुसार सृष्टि-रचना करता हूँ।

भगवान् माया के गुणों से रहित एवं अनन्त हैं। सृष्टि, स्थिति और प्रलयके लिये रजोगुण, सत्त्वगुण और तमोगुण- ये तीन गुण मायाके द्वारा उनमें स्वीकार किये गये हैं ॥ ये ही तीनों गुण द्रव्य, ज्ञान और क्रिया का आश्रय लेकर मायातीत नित्यमुक्त पुरुष को ही माया में स्थित होने पर कार्य, कारण और कर्तापनके अभिमान से बाँध लेते हैं। इन्द्रियातीत भगवान् गुणों के इन तीन आवरणों से अपने स्वरूप को भलीभाँति ढक लेते हैं, इसलिये लोग उनको नहीं जान पाते। सारे संसारके और मेरे भी एकमात्र स्वामी वे ही हैं। मायापति भगवान् ने एक से बहुत होने की इच्छा होने पर अपनी माया से अपने स्वरूप में स्वयं प्राप्त काल, कर्म और स्वभाव को स्वीकार कर लिया॥ भगवान की शक्ति से ही काल ने तीनों गुणों में क्षोभ उत्पन्न कर दिया, स्वभाव ने उन्हें रूपान्तरित कर दिया और कर्म ने महत्तत्त्व को जन्म दिया ॥ रजोगुण और सत्त्वगुण की वृद्धि होने पर महत्तत्त्व का जो विकार हुआ, उससे ज्ञान, क्रिया और द्रव्यरूप तमः प्रधान विकार हुआ ॥ वह अहंकार कहलाया और विकार को प्राप्त होकर तीन प्रकार का हो गया। उसके भेद हैं—वैकारिक, तैजस और तामस। वे क्रमशः ज्ञानशक्ति, क्रियाशक्ति और द्रव्य शक्तिप्रधान हैं। जब पञ्चमहाभूतों के कारण रूप तामस अहंकार में विकार हुआ, तब उससे आकाश की उत्पत्ति हुई। आकाश की तन्मात्रा और गुण शब्द है। इस शब्द के द्वारा ही द्रष्टा

और दृश्य का बोध होता है ॥ जब आकाश में विकार हुआ, तब उससे वायु की उत्पत्ति हुई; उसका गुण स्पर्श है। अपने कारण का गुण आ जाने से यह शब्दवाला भी है। इन्द्रियों में स्फूर्ति,शरीर में जीवनीशक्ति, ओज और बल इसीके रूप हैं । काल, कर्म और स्वभाव से वायु में भी विकार हुआ। उससे तेज की उत्पत्ति हुई। इसका प्रधान गुण रूप है। साथ ही इसके कारण आकाश और वायुके गुण शब्द एवं स्पर्श भी इसमें हैं ॥तेज के विकार से जल की उत्पत्ति हुई। इसका गुण है कारण-तत्त्वों के गुण शब्द, स्पर्श और रूप भी इसमें हैं ॥ जल के विकार से पृथ्वी की उत्पत्ति हुई, इसका गुण है गन्ध। कारण के गुण कार्य में आते हैं—इस न्याय से शब्द, स्पर्श, रूप और रस – ये चारों गुण भी इसमें विद्यमान हैं। वैकारिक अहङ्कार से मन की और इन्द्रियों के दस अधिष्ठातृ देवताओं की भी उत्पत्ति हुई। उनके नाम हैं—दिशा, वायु, सूर्य, वरुण,अश्विनीकुमार, अग्नि, इन्द्र, विष्णु, मित्र और प्रजापति।। तैजस अहङ्कार के विकार से श्रोत्र, त्वचा, नेत्र, जिह्वा और घ्राण-ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ एवं वाक्, हस्त, पाद, गुदा और जननेन्द्रिय–ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ उत्पन्न हुई। साथ ही ज्ञानशक्ति रूप बुद्धि और क्रियाशक्तिरूप प्राण भी तैजस अहङ्कार से ही उत्पन्न हुए ॥

श्रेष्ठ ब्रह्मवित् ! जिस समय ये पञ्चभूत, इन्द्रिय, मन और सत्त्व आदि तीनों गुण परस्पर संगठित नहीं थे, तब अपने रहने के लिये भोगों के साधन रूप शरीर की रचना नहीं कर सके ॥ जब भगवान् ने इन्हें अपनी शक्ति से प्रेरित किया,तब वे तत्त्व परस्पर एक-दूसरे के साथ मिल गये और उन्होंने आपस में कार्य-कारणभाव स्वीकार करके व्यष्टि-समष्टिरूपपिण्ड और ब्रह्माण्ड दोनों की रचना की ॥ वह ब्रह्माण्ड रूप अंडा एक सहस्र वर्ष तक निर्जीव रूप से जल में पड़ा रहा; फिर काल, कर्म और स्वभाव को स्वीकार करने वाले भगवान ने उसे जीवित कर दिया॥ उस अंडे को फोड़कर उसमें से वही विराट् पुरुष निकला, जिसकी जङ्घा, चरण, भुजाएँ, नेत्र,हैं ॥ मुख और सिर सहस्त्रोंकी संख्या में विद्वान् पुरुष (उपासनाके लिये) उसी के अङ्गों में समस्त लोक और उनमें रहनेवाली वस्तुओंकी कल्पना करते हैं। उसकी कमर से नीचे के अङ्गों में सातों पाताल की और उसके पेड़ से ऊपरके अङ्गों में सातों स्वर्ग की कल्पना की जाती है॥ ब्राह्मण इस विराट् पुरुष का मुख हैं, भुजाएँ क्षत्रिय हैं, जाँघों से वैश्य और पैरों से शूद्र उत्पन्न हुए।। पैरों से लेकर कटिपर्यन्त सातों पाताल तथा भूलोक की कल्पना की गयी है; नाभि में भुवर्लोक की, हृदय में स्वर्लोक की और परमात्मा के वक्षःस्थल में महर्लोक की कल्पना की गयी है। उसके गले में जनलोक, दोनों स्तनों में तपोलोक और मस्तकमें ब्रह्माका नित्य निवास स्थान सत्यलोक है। उस विराट्पुरुष की कमर में अतल, जाँघों में वितल, घुटनों में पवित्र सुतललोक और जङ्घाओं में तलातल की कल्पना की गयी है। एड़ी के ऊपर की गाँठों में महातल, पंजे और एड़ियों में रसातल और तलुओं में पाताल समझना चाहिये। इस प्रकार विराट् पुरुष सर्वलोकमय है॥ विराट्भगवान् के अङ्गों में इस प्रकार भी लोकों की कल्पना की जाती है कि उनके चरणों में पृथ्वी है, नाभि में भुवर्लोक है और सिर में स्वर्लोक है।

पुन: आगे तृतीय स्कन्ध के पंचम अध्याय में विदुर जी के प्रश्न और मैत्रेय जी का सृष्टिक्रम वर्णन -

भगवानेक आसेदमग्र आत्माऽऽत्मनां विभुः।

आत्मेच्छानुगतावात्मानानामत्युपलक्षणः॥२३॥
स वा एष तदा द्रष्टा नापश्यद् दृश्यमेकराट्।
मेनेऽसन्तमिवात्मानं सुप्तशक्तिरसुप्तदृक् ॥२४॥
सा वा एतस्य संद्रष्टुः शक्तिः सदसदात्मिका।
माया नाम महाभाग ययेदं निर्ममे विभुः॥२५॥
कालवृत्त्या तु मायायां गुणमय्यामधोक्षजः ।
पुरुषेणात्मभूतेन वीर्यमाधत्त वीर्यवान् ॥२६॥
ततोऽभवन् महत्तत्त्वमव्यक्तात्कालचोदितात्।
विज्ञानात्माऽऽत्मदेहस्थं विश्वं व्यञ्जंस्तमोनुदः॥२७
सोऽप्यंशगुणकालात्मा भगवदृष्टिगोचरः।
आत्मानं व्यकरोदात्मा विश्वस्यास्य सिसृक्षया ॥ २८॥
महत्तत्त्वाद्विकुर्वाणादहंतत्त्वं व्यजायत।
कार्यकारणकर्त्रात्मा भूतेन्द्रियमनोमयः॥२९॥
वैकारिकस्तैजसश्च तामसश्चेत्यहं त्रिधा।
अहंतत्त्वाद्विकुर्वाणान्मनो वैकारिकादभूत्
वैकारिकाश्च ये देवा अर्थाभिव्यञ्जनं यतः॥३०॥
तैजसानीन्द्रियाण्येव ज्ञानकर्ममयानि च।
तामसो भूतसूक्ष्मादिर्यतः खं लिङ्गमात्मनः॥३१॥
कालमायांशयोगेन भगवद्वीक्षितं नभः।
नभसोऽनुसृतं स्पर्शं विकुर्वन्निर्ममेऽनिलम् ॥३२॥
अनिलोऽपि विकुर्वाणो नभसोरुबलान्वितः ।
ससर्ज रूपतन्मात्रं ज्योतिर्लोकस्य लोचनम् ॥३३॥
अनिलेनान्वितं ज्योतिर्विकुर्वत्परवीक्षितम्।
आधत्ताम्भो रसमयं कालमायांशयोगतः॥३४॥
ज्योतिषाम्भोऽनुसंसृष्टं विकुर्वद्ब्रह्मवीक्षितम्।
महीं गन्धगुणामाधात्कालमायांशयोगतः॥३५॥
भूतानां नभआदीनां यद्यद्भव्यावरावरम्।
तेषां परानुसंसर्गाद्यथासंख्यं गुणान् विदुः॥३६॥
एते देवाः कला विष्णोः कालमायांशलिङ्गिनः ।
नानात्वात्स्वक्रियानीशाः प्रोचुः प्राञ्जलयो विभुम्॥३७॥

अर्थात् सृष्टिरचना के पूर्व समस्त आत्माओं के आत्मा एक पूर्ण परमात्मा ही थे – न द्रष्टा था न दृश्य। सृष्टिकाल में अनेक वृत्तियों के भेद से जो अनेकता दिखायी पड़ती है, वह भी वही थे, क्योंकि उनकी इच्छा अकेले रहने की थी। वे ही द्रष्टा होकर देखने लगे, परन्तु उन्हें दृश्य दिखायी नहीं पड़ा, क्योंकि उस समय वे ही अद्वितीय रूप से प्रकाशित हो रहे थे । ऐसी अवस्था में वे अपने को असत् समान समझने लगे। वस्तुत: वे असत् नहीं थे, क्योंकि उनकी शक्तियाँ ही सोयी थीं। उनके ज्ञान का लोप नही हुआ था। यह द्रष्टा और दृश्य का अनुसन्धान करने वाली शक्ति ही कार्यकारण रूपा 'माया' है। इस भावाभावरूप अनिर्वचनीय माया के द्वारा ही भगवान् ने विश्व का निर्माण किया है। कालशक्ति से जब यह त्रिगुणमयी माया क्षोभ को प्राप्त हुई, तब उन इन्द्रियातीत चिन्मय परमात्मा ने अपने अंश पुरूष रूप से उसमें चिदाभासरूप बीज स्थापित किया। तब काल की प्रेरणा से उस अव्यक्त माया से महत्तत्त्व प्रकट हुआ। वह मिथ्या अज्ञानका नाशक होनेके कारण विज्ञानस्वरूप और अपनेमें सूक्ष्म रूप से स्थित प्रपञ्चकी अभिव्यक्ति करनेवाला था। फिर चिदाभास, गुण और काल के अधीन उस महत्तत्त्व ने भगवान्‌की दृष्टि पड़ने पर इस विश्व की रचना के लिये अपना रूपान्तर किया। महत्तत्त्व के विकृत होने पर अहङ्कार की उत्पत्ति हुई— जो कार्य (अधिभूत), कारण (अध्यात्म) और कर्त्ता (अधिदैव) रूप होनेके कारण भूत, इन्द्रिय और मनका कारण है।

वह अहङ्कार वैकारिक (सात्त्विक), तैजस (राजस) और तामस-भेद से तीन प्रकार का है; अतः अहंतत्त्व में विकार होने पर वैकारिक अहङ्कार से मन और जिनसे विषयों का ज्ञान होता है वे इन्द्रियों के अधिष्ठाता देवता हुए। तैजस अहङ्कार से ज्ञानेन्द्रियाँ और कर्मेन्द्रियाँ हुईं तथा तामस अहङ्कार से सूक्ष्म भूतोंका कारण शब्द तन्मात्र हुआ और उससे दृष्टान्त रूप से आत्मा का बोध कराने वाला आकाश उत्पन्न हुआ।

भगवान् की दृष्टि जब आकाशपर पड़ी, तब उससे फिर काल, माया और चिदाभासके योगसे स्पर्शतन्मात्र हुआ और उसके विकृत होने पर उससे वायु की उत्पत्ति हुई। अत्यन्त बलवान् वायु ने आकाश के सहित विकृत होकर रूपतन्मात्र की रचना की और उससे संसार का प्रकाशक तेज उत्पन्न हुआ। फिर परमात्मा की दृष्टि पड़ने पर वायुयुक्त तेजने काल, माया और चिदंश के योग से विकृत-होकर रसतन्मात्र के कार्य जल को उत्पन्न किया। तदनन्तर तेज से युक्त जलने ब्रह्म का दृष्टिपात होने पर काल, माया और चिदंशके योगसे गन्धगुणमयी पृथ्वीको उत्पन्न किया। इन आकाशादि भूतों में से जो-जो भूत पीछे-पीछे उत्पन्न हुए हैं, उनमें क्रमशः अपने पूर्व-पूर्व भूतों के गुण भी अनुगत समझने चाहिये। ये ६ महत्तत्त्वादि के अभिमानी विकार, विक्षेप और चेतनांशविशिष्ट देवगण श्रीभगवान् के ही अंश हैं। किन्तु पृथक्-पृथक् रहने के कारण जब वे विश्वरचनारूप अपने कार्य में सफल नहीं हुए, तब हाथ जोड़कर भगवान् से अनुनय विनय किया और तब प्रभु कृपा से सृष्टि रचना में वे सहायक हुए।

तृतीय स्कन्ध के दशम अध्याय में 10 प्रकार के सृष्टि का वर्णन -

अन्तर्हिते भगवति ब्रह्मा लोकपितामहः।
प्रजाः ससर्ज कतिधा दैहिकीर्मानसीर्विभुः॥१॥

ये च मे भगवन् पृष्टास्त्वय्यर्था बहुवित्तम ।
तान् वदस्वानुपूर्व्येण छिन्धिनः सर्वसंशयान्॥२॥
सूत उवाच
एवं सञ्चोदितस्तेन क्षत्रा कौषारवो मुनिः।
प्रीतः प्रत्याह तान् प्रश्नान् हृदिस्थानथ भार्गव॥ ३॥
मैत्रेय उवाच
विरिञ्चोऽपि तथा चक्रे दिव्यं वर्षशतं तपः ।
आत्मन्यात्मानमावेश्य यदाह भगवानजः ॥ ४॥
तद्विलोक्याब्जसम्भूतो वायुना यदधिष्ठितः ।
पद्ममम्भश्च तत्कालकृतवीर्येण कम्पितम् ॥ ५॥
तपसा ह्येधमानेन विद्यया चात्मसंस्थया ।
विवृद्धविज्ञानबलो न्यपाद् वायुं सहाम्भसा ॥ ६॥
तद्विलोक्य वियद्व्यापि पुष्करं यदधिष्ठितम्।
अनेन लोकान् प्राग्लीनान् कल्पितास्मीत्यचिन्तयत्॥ ७॥
पद्मकोशं तदाऽऽविश्य भगवत्कर्मचोदितः।
एकं व्यभाङ्क्षीदुरुधा त्रिधा भाव्यं द्विसप्तधा॥ ८॥

अर्थात् विदुर जी ने कहा- मुनिवर ! भगवान् नारायणके अन्तर्धान हो जानेपर सम्पूर्ण लोकोंके पितामह ब्रह्माजीने अपने देह और मनसे कितने प्रकारकी सृष्टि उत्पन्न की?॥१॥ भगवन् ! इनके सिवा मैंने आपसे और जो-जो बातें पूछी हैं, उन सबका भी क्रमशः वर्णन कीजिये और मेरे सब संशयोंको दूर कीजिये; क्योंकि आप सभी बहुज्ञों में श्रेष्ठ हैं ॥ २ ॥ सूतजी कहते हैं- शौनकजी ! विदुरजीके इस प्रकार पूछनेपर मुनिवर मैत्रेयजी बड़े प्रसन्न हुए और अपने हृदयमें स्थित उन प्रश्नोंका इस प्रकार उत्तर देने लगे॥३॥

श्रीमैत्रेयजीने कहा – अजन्मा भगवान् श्रीहरिने जैसा कहा था, ब्रह्माजीने भी उसी प्रकार चित्तको अपने आत्मा श्रीनारायणमें लगाकर सौ दिव्य वर्षोंतक तप किया ॥ ४ ॥ ब्रह्माजीने देखा कि प्रलयकालीन प्रबल वायुके झकोरोंसे, जिससे वे उत्पन्न हुए हैं तथा जिसपर वे बैठे हुए हैं वह कमल तथा जल काँप रहे हैं ॥ ५ ॥ प्रबल तपस्या एवं हृदयमें स्थित आत्मज्ञान से उनका विज्ञानबल बढ़ गया और उन्होंने जलके साथ वायुको पी लिया ॥ ६ ॥ फिर जिसपर स्वयं बैठे हुए थे, उस आकाशव्यापी कमलको देखकर उन्होंने विचार किया कि 'पूर्वकल्पमें लीन हुए लोकोंको मैं इसीसे रचूँगा' ॥ ७॥

तब भगवान् के द्वारा सृष्टि कार्य में नियुक्त ब्रह्माजी ने उस कमलकोश में प्रवेश किया और उस एक कें ही भूः, भुवः स्वः – ये तीन भाग किये, यद्यपि वह कमल इतना बड़ा था कि उसके चौदह भुवन या इससे भी अधिक लोकों के रूप में विभाग किये जा सकते थे॥८॥

एतावाञ्जीवलोकस्य संस्थाभेदः समाहृतः' ।
धर्मस्य ह्यनिमित्तस्य विपाकः परमेष्ठ्यसौ ॥ ९॥
विदुर उवाच
यदात्थ बहुरूपस्य हरेरद्भुतकर्मणः ।
कालाख्यं लक्षणं ब्रह्मन् यथा वर्णय नः प्रभो ॥ १०॥
मैत्रेय उवाच
गुणव्यतिकराकारो निर्विशेषोऽप्रतिष्ठितः ।
पुरुषस्तदुपादानमात्मानं लीलयासृजत् ॥ ११।
विश्वं वै ब्रह्मतन्मात्रं संस्थितं विष्णुमायया ।
ईश्वरेण परिच्छिन्नं कालेनाव्यक्तमूर्तिना ॥ १२॥
यथेदानीं तथाग्रे च पश्चादप्येतदीदृशम्।
सर्गो नवविधस्तस्य प्राकृतो वैकृतस्तु यः ॥१३॥
कालद्रव्यगुणैरस्य त्रिविधः प्रतिसंक्रमः ।
आद्यस्तु महतः सर्गो गुणवैषम्यमात्मनः ॥१४॥
द्वितीयस्त्वहमो यत्र द्रव्यज्ञानक्रियोदयः ।
भूतसर्गस्तृतीयस्तु तन्मात्रो द्रव्यशक्तिमान् ॥१५॥
चतुर्थ ऐन्द्रियः सर्गो यस्तु ज्ञानक्रियात्मकः ।
वैकारिको देवसर्गः पञ्चमो यन्मयं मनः ॥१६॥
षष्ठस्तु तमसः सर्गो यस्त्वबुद्धिकृतः प्रभो ।
षडिमे प्राकृताः सर्गा वैकृतानपि मे शृणु ॥ १७॥
रजोभाजो भगवतो लीलेयं हरिमेधसः ।
सप्तमो मुख्यसर्गस्तु षड्विधस्तस्थुषां च यः॥१८॥
वनस्पत्योषधिलतात्वक्सारा वीरुधो द्रुमाः ।
उत्स्रोतसस्तमः प्राया अन्तःस्पर्शा विशेषिणः ॥ १९ |

जीवों के भोग स्थान के रूप में इन्हीं तीन लोकों का शास्त्रों में वर्णन हुआ है; जो निष्काम कर्म करनेवाले हैं, उन्हें महः, तपः, जनः औ रसत्य लोकरूप ब्रह्म लोक की प्राप्ति होती है। विदुरजी ने कहा–ब्रह्मन् ! आपने अद्भुतकर्मा विश्वरूप श्रीहरि की जिस काल नामक शक्ति की बात कही थी, प्रभो ! उसका कृपया विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये तथा श्रीमैत्रेयजी ने कहा – विषयों का रूपान्तर (बदलना) ही काल का आकार है। स्वयं तो वह निर्विशेष, अनादि और अनन्त है। उसी को निमित्त बनाकर भगवान् खेल-खेलमें अपने-आपको ही सृष्टि के रूपमें प्रकट कर देते हैं। पहले यह सारा विश्व भगवान की माया से लीन होकर ब्रह्म रूप से स्थित था। उसी को

अव्यक्तमूर्ति काल के द्वारा भगवान् ने पुनः पृथक्-रूप से प्रकट किया है। यह जगत् जैसा अब है वैसा ही पहले था और भविष्य में भी वैसा ही रहेगा। इसकी सृष्टि नौ प्रकार की होती है प्राकृत-वैकृत-भेद से एक दसवीं सृष्टि और भी है ॥ और इसका प्रलय काल, द्रव्य तथा गुणों के द्वारा तीन प्रकार से होता है । (अब पहले मैं दस प्रकारकी सृष्टिका वर्णन करता हूँ) पहली सृष्टि महत्तत्त्वकी है। भगवान्की प्रेरणासे सत्त्वादि गुणों में विषमता होना ही इसका स्वरूप है। दूसरी सृष्टि अहङ्कारकी है, जिससे पृथ्वी आदि पञ्चभूत एवं ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रियोंकी उत्पत्ति होती है। तीसरी सृष्टि भूतसर्ग है, जिसमें पञ्चमहाभूतों को उत्पन्न करनेवाला तन्मात्रवर्ग रहता है। चौथी सृष्टि इन्द्रियोंकी है, यह ज्ञान और क्रियाशक्तिसे सम्पन्न होती है। पाँचवीं सृष्टि सात्त्विक अहङ्कार से उत्पन्न हुए इन्द्रियाधिष्ठाता देवताओं की है, मन भी इसी सृष्टि के अन्तर्गत है। छठी सृष्टि अविद्या की है। इसमें तामिस्र, अन्धतामिस्र, तम, मोह और महामोह—ये पाँच गाँठें हैं ।यह जीवोंकी बुद्धिका आवरण और विक्षेप करनेवाली है। ये छः प्राकृत सृष्टियाँ हैं, अब वैकृत सृष्टियोंका भी विवरण सुनो जो भगवान् अपना चिन्तन करनेवालों के समस्त दुःखोंको हर लेते हैं, यह सारी लीला उन्हीं श्रीहरि की है। वे ही ब्रह्माके रूपमें रजोगुण को स्वीकार करके जगत् की रचना करते हैं। छः प्रकारकी प्राकृत सृष्टियोंके बाद सातवीं प्रधान वैकृत सृष्टि इन छः प्रकार के स्थावर वृक्षोंकी होती है। वनस्पति, ओषधि, लता, 'त्वक्सार, वीरुध्" और द्रुम' इनका संचार नीचे (जड़) ऊपरकी ओर होता है, इनमें प्रायः ज्ञानशक्ति प्रकट नहीं रहती, ये से भीतर-ही-भीतर केवल स्पर्शका अनुभव करते हैं तथा इनमें से प्रत्येकमें कोई विशेष गुण रहता है। आठवीं सृष्टितिर्यग्योनियों (पशु-पक्षियों) की है। वह अट्ठाईस प्रकारकी मानी जाती है। इन्हें कालका ज्ञान नहीं होता, तमोगुण की अधिकता के कारण ये केवल खाना-पीना, मैथुन करना, सोना आदि ही जानते हैं, इन्हें सूँघनेमात्रसे वस्तुओंका ज्ञान हो जाता है। इनके हृदयमें विचारशक्ति या दूरदर्शिता नहीं होती। इन तिर्यकोंमें गौ, बकरा, भैंसा, कृष्ण-मृग, सूअर, नील-गाय, रुरु नामका मृग, भेड़ और ऊँट – ये द्विशफ (दो खुरोंवाले) पशु कहलाते हैं,। गधा, घोड़ा, खच्चर, गौरमृग, शरफ और चमरी–ये एकशफ (एक खुरवाले हैं। अब पाँच नखवाले पशु-पक्षियोंके नाम सुनो। कुत्ता, गीदड़, भेड़िया, बाघ, बिलाव, खरगोश, साही, सिंह, बंदर, हाथी, कछुआ, गोह और मगर आदि (पशु) हैं। कंक (बगुला), गिद्ध, बटेर, बाज, भास, भल्लूक, मोर, हंस, सारस, चकवा, कौआ और उल्लू आदि उड़नेवाले जीव पक्षी कहलाते हैं। नवीं सृष्टि मनुष्योंकी है। यह एक ही प्रकारकी है । इसके आहारका प्रवाह ऊपर (मुँह) से नीचेकी ओर होता है। मनुष्य रजोगुणप्रधान, कर्मपरायण और दुःखरूप विषयोंमें ही सुख माननेवाले होते हैं। स्थावर, पशु-पक्षी और मनुष्य – ये तीनों प्रकारकी सृष्टियाँ तथा आगे कहा जानेवाला देवसर्ग वैकृत सृष्टि हैं तथा जो महत्तत्त्वादिरूप वैकारिक देवसर्ग है, उसकी गणना पहले प्राकृत सृष्टिमें की जा चुकी है।

इनके अतिरिक्त सनत्कुमार आदि ऋषियों का जो कौमार सर्ग है वह प्राकृत-वैकृत दोनों प्रकारका है। देवता, पितर, असुर, गन्धर्व-अप्सरा, यक्ष-राक्षस,सिद्ध-चारण-विद्याधर, भूत-प्रेत-पिशाच और किन्नर-किम्पुरुष-

अश्वमुख आदि भेदसे देवसृष्टि आठ प्रकार की है। इस प्रकार जगत्कर्त्ता श्रीब्रह्मा जी की रची हुई यह दस प्रकार की सृष्टि का वर्णन मैत्रेय जी के द्वारा किया गया है।

भागवत में सृष्टि का विस्तार कथन –

मैत्रेय उवाच

इति ते वर्णितः क्षत्तः कालाख्यः परमात्मनः।
महिमा वेदगर्भोऽथ यथास्त्राक्षीन्निबोध मे ॥ १॥
ससर्जाग्रेऽन्धतामित्रमथ तामिस्त्रमादिकृत्।
महामोहं च मोहं च तमश्चाज्ञानवृत्तयः ॥ २॥
दृष्ट्वा पापीयसीं सृष्टिं नात्मानं बह्वमन्यत।
भगवद्ध्यानपूतेन मनसान्यां ततोऽसृजत् ॥ ३॥

श्रीमैत्रेयजीने कहा – विदुरजी ! यहाँतक मैंने आपको भगवान् की कालरूप महिमा सुनायी। अब जिस प्रकार ब्रह्माजी ने जगत् की रचना की, वह सुनिये। सबसे पहले उन्होंने अज्ञानकी पाँच वृत्तियाँ – तम(अविद्या), मोह (अस्मिता), महामोह (राग), तामिस्र (द्वेष) और अन्धतामिस्र (अभिनिवेश) रचीं। किन्तु इस अत्यन्त पापमयी सृष्टि को देखकर उन्हें प्रसन्नता नहीं हुई। तब उन्होंने अपने मनको भगवान्के ध्यानसे पवित्र कर उससे दूसरी सृष्टि रची।

इस बार ब्रह्माजी ने सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार—ये चार निवृत्ति परायण ऊर्ध्वरेता मुनि उत्पन्न किये। अपने इन पुत्रों से ब्रह्माजी ने कहा,'पुत्रो ! तुमलोग सृष्टि उत्पन्न करो।' किंतु वे जन्म से ही मोक्षमार्ग-(निवृत्तिमार्ग-) का अनुसरण करने वाले और भगवान् के ध्यान में तत्पर थे, इसलिये उन्होंने ऐसा करना नहीं चाहा। जब ब्रह्मा जी ने देखा कि मेरी आज्ञा न मानकर ये मेरे पुत्र मेरा तिरस्कार कर रहे हैं, तब उन्हें असह्य क्रोध हुआ। उन्होंने उसे रोकने का प्रयत्न किया ॥ ६ ॥ किंतु बुद्धि द्वारा उनके बहुत रोकने पर भी वह क्रोध तत्काल प्रजापति की भौंहों के बीच में से एक नीललोहित (नीले और लाल रंगके) बालक के रूप में प्रकट हो गया। वे देवताओं के पूर्वज भगवान् भव(रुद्र) रो-रोकर कहने लगे— 'जगत्पिता! विधाता ! मेरे नाम और रहनेके स्थान बतलाइये। तब कमलयोनि भगवान् ब्रह्माने उस बालक की प्रार्थना पूर्ण करनेके लिये मधुर वाणीमें कहा, 'रोओ मत, मैं अभी तुम्हारी इच्छा पूरी करता हूँ। देवश्रेष्ठ ! तुम जन्म लेते ही बालकके समान फूट-फूटकर रोने लगे, इसलिये प्रजा तुम्हें 'रुद्र' नाम से पुकारेगी। तुम्हारे रहने के लिये मैंने पहले से ही हृदय, इन्द्रिय, प्राण, आकाश, वायु, अग्नि, जल,पृथ्वी, सूर्य, चन्द्रमा और तप-ये स्थान रच दिये हैं। तुम्हारे नाम मन्यु, मनु, महिनस, महान्,शिव, ऋतध्वज, उग्ररेता, भव, काल, वामदेव औरधृतव्रत होंगे तथा धी, वृत्ति, उशना, उमा,नियुत्, सर्पि, इला, अम्बिका, इरावती, सुधा औरदीक्षा – ये रुद्राणियाँ तुम्हारी पत्नियाँ होंगी। तुम उपर्युक्त नाम, स्थान और स्त्रियों को स्वीकार करो और इनके द्वारा बहुत-सी प्रजा उत्पन्न करो; क्योंकि तुम प्रजापति हो'। ग्यारह लोकपिता ब्रह्माजीसे ऐसी आज्ञा पाकर भगवान नीललोहित बल, आकार और स्वभाव

में अपने ही-जैसी प्रजा उत्पन्न करने लगे। भगवान् रुद्र के द्वारा उत्पन्न हुए उन रुद्रोंको असंख्य यूथ बनाकर सारे संसार भक्षण करते देख ब्रह्माजीको बड़ी शङ्का हुई। तब उन्होंने रुद्र से कहा, तुम्हारी प्रजा तो अपनी भयङ्कर दृष्टिसे मुझे और सारीदिशाओंको भस्म किये डालती है; अतः ऐसी सृष्टि और नरचो ॥ तुम्हारा कल्याण हो, अब तुम समस्तप्राणियोंको सुख देनेके लिये तप करो। फिर उस तपकेप्रभावसे ही तुम पूर्ववत् इस संसारकी रचना करना। पुरुष तपके द्वारा ही इन्द्रियातीत, सर्वान्तर्यामी, ज्योतिःस्वरूपश्रीहरिको सुगमतासे प्राप्त कर सकता है'। श्रीमैत्रेयजी कहते हैं- जब ब्रह्माजीने ऐसी आज्ञादी, तब रुद्रने 'बहुत अच्छा' कहकर उसे शिरोधार्य किया और फिर उनकी अनुमति लेकर तथा उनकी परिक्रमा करके वे तपस्या करनेके लिये वनको चले गये। इसके पश्चात् जब भगवान्की शक्तिसे सम्पन्न ब्रह्माजीने सृष्टिके लिये सङ्कल्प किया, तब उनके दस पुत्र और उत्पन्न हुए। उनसे लोककी बहुत वृद्धि हुई। उनके नाम मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, भृगु, वसिष्ठ, दक्ष और दसवें नारद थे। इनमें नारदजी प्रजापति ब्रह्माजीकी गोदसे, दक्ष अँगूठेसे, वसिष्ठ प्राणसे, भृगु त्वचासे, क्रतु हाथसे, पुलह नाभिसे, पुलस्त्यऋषि कानोंसे, अङ्गिरा मुखसे, अत्रि नेत्रोंसे और मरीचि मनसे उत्पन्न हुए। फिर उनके दायें स्तनसे धर्म उत्पन्न हुआ, जिसकी पत्नी मूर्तिसे स्वयं नारायण अवतीर्ण हुए तथा उनकी पीठसे अधर्मका जन्म हुआ और उससे संसारको भयभीत करनेवाला मृत्यु उत्पन्न हुआ। इसी प्रकार ब्रह्माजीके हृदयसे काम, भौंहोंसे क्रोध, नीचेके होठसे लोभ, मुखसे वाणीकी अधिष्ठात्री देवी सरस्वती, लिङ्गसे समुद्र, गुदासे पापका निवासस्थान

(राक्षसोंका अधिपति) निरृति। छाया से देवहूतिके पति भगवान् कर्दमजी उत्पन्न हुए। इस तरह यह सारा जगत् जगत्कर्ता ब्रह्माजीके शरीर और मनसे उत्पन्न हुआ। भगवान् ब्रह्माकी कन्या सरस्वती बड़ी ही सुकुमारी और मनोहर थी। हमने सुना है- एक बार उसे देखकर ब्रह्माजी काममोहित हो गये थे, यद्यपि वह स्वयं वासनाहीन थी।

उन्हें ऐसा अधर्ममय सङ्कल्प करते देख, उनके पुत्र मरीचि आदि ऋषियोंने उन्हें विश्वासपूर्वक समझाया- आप समर्थ हैं, फिर भी अपने मनमें उत्पन्न हुए कामके वेगको न रोककर पुत्रीगमन- जैसा दुस्तर पाप करनेका सङ्कल्प कर रहे हैं! ऐसा तो आपसे पूर्ववर्ती किसी भी ब्रह्माने नहीं किया और न आगे ही कोई करेगा। आप-जैसे तेजस्वी पुरुषोंको भी ऐसा काम शोभा नहीं देता; क्योंकि आपलोगोंके आचरणोंका अनुसरण करनेसे ही तो संसारका कल्याण होता है। जिन श्रीभगवान्ने अपने स्वरूपमें स्थित इस जगत्को अपने ही तेजसे प्रकट किया है, उन्हें नमस्कार है। इस समय वे ही धर्मकी रक्षा कर सकते हैं'। अपने पुत्र मरीचि आदि प्रजापतियोंको अपने सामने इस प्रकार कहते देख प्रजापतियोंके पति ब्रह्माजी बड़े लज्जित हुए और उन्होंने उस शरीरको उसी समय छोड़ दिया। तब उस घोर शरीरको दिशाओं ये चार भेद इसी क्रमसे षोडशी और उक्थ, चयन और अग्निष्टोम,आप्तोर्याम और अतिरात्र तथा वाजपेय औरदो-दो याग भी उनके पूर्वादि मुखोंसे ही उत्पन्न हुए। विद्या, दान, तप और सत्य- ये धर्मके चारपाद और वृत्तियोंके सहित चार आश्रम भी इसी क्रम से प्रकट हुए। सावित्र, प्राजापत्य, ब्राह्म और बृहत् – ये चार वृत्तियाँ ब्रह्मचारीकी हैं तथा वार्ता ,सञ्चय , शालीन और

शिलोञ्छ——ये चार वृत्तियाँ गृहस्थ की हैं। इसी प्रकार वृत्तिभेद से वैखानस,वालखिल्य, औदुम्बर और फेनप - ये चारभेद वानप्रस्थों के तथा कुटीचक और निष्क्रिय (परमहंस १६)संन्यासियोंके हैं । इसी क्रम से आन्वीक्षिकी त्रयी वार्ता और दण्डनीति –ये चार विद्याएँ तथा चार व्याहतियाँ १ भी ब्रह्मा जी के चार मुखों से उत्पन्नहुईं तथा उनके हृदयाकाश से ॐकार प्रकट हुआ। उनके रोमों से उष्णिक्, त्वचासे गायत्री, मांससे त्रिष्टुप्,स्नायुसे अनुष्टुप्, अस्थियोंसे जगती, मज्जासे पंक्ति और प्राणों से बृहती छन्द उत्पन्न हुआ। ऐसे ही उनका जीवस्पर्शवर्ण (कवर्गादि पञ्चवर्ग) और देह स्वरवर्ण(अकारादि) कहलाया। उनकी इन्द्रियों को ऊष्पवर्ण (श ष स ह) और बलको अन्तःस्थ (य र लव) कहते हैं, तथा उनकी क्रीडा से निषाद, ऋषभ, गान्धार,षड्ज, मध्यम, धैवत और पञ्चम– ये सात स्वर हुए।। ४७ ॥ हे तात ! ब्रह्माजी शब्दब्रह्मस्वरूप हैं। वेवैखरी रूप से व्यक्त और ओङ्कार रूप से अव्यक्त हैं। तथा उन से परे जो सर्वत्र परिपूर्ण परब्रह्म है, वही अनेकों प्रकार की शक्तियों से विकसित होकर इन्द्रादि रूपों में भास रहा है।

ब्रह्माजी ने पहला कामासक्त शरीर जिससे कुहरा बना था— छोड़ने के बाद दूसरा शरीर धारण करके विश्व विस्तार का विचार किया; वे देख चुके थे कि मरीचि आदि महान् शक्तिशाली ऋषियों से भी सृष्टि का विस्तार अधिक नहीं हुआ, अतः वे मन-ही-मन पुनः चिन्ता करने लगे—'अहो ! बड़ा आश्चर्य है, मेरे निरन्तर प्रयत्न करने पर भी प्रजा की वृद्धि नहीं हो रही है। मालूम होता है इसमें दैवही कुछ विघ्न डाल रहा है। जिस समय यथोचित क्रिया करने वाले श्रीब्रह्माजी इस प्रकार दैवके विषयमें विचार कररहे थे उसी समय अकस्मात् उनके शरीर के दो भाग हो गये। 'क' ब्रह्माजी का नाम है, उन्हीं से विभक्त होने के कारण शरीर को 'काय' कहते हैं। उन दोनों विभागों से एकस्त्री—पुरुष का जोड़ा प्रकट हुआ। उनमें जोपुरुष था वह सार्वभौम सम्राट् स्वायम्भुव मनु हुए और जोस्त्री थी, वह उनकी महारानी शतरूपा हुईं। तब से मिथुन धर्म (स्त्री-पुरुष-सम्भोग) से प्रजा की वृद्धि होने लगी। महाराज स्वायम्भुव मनु ने शतरूपा से पाँच सन्तानें उत्पन्न कीं। साधुशिरोमणि विदुरजी ! उनमें प्रियव्रत और उत्तानपाद दो पुत्र थे तथा आकूति, देवहूति और प्रसूति – तीन कन्याएँ थीं। मनु जी ने आकूति का विवाह रुचि प्रजापति से किया, मझली कन्या देवहूति-कर्दम जी को दी और प्रसूति दक्ष प्रजापति को । इन तीनों कन्याओं की सन्तति से सारा संसार भर गया।

बोध प्रश्न -1

बहुवैकल्पिक प्रश्न –

1. भारतीय ज्ञान परम्परा में पुराणों की संख्या कितनी है।

क. 15 ख. 12 ग. 18 घ. 20

2. सृष्टि का पर्याय है?

क. निसर्ग ख. रचना ग. Creation घ. उपयुक्त सभी

3. विष्णु पुराण के अनुसार सृष्टि का एकमात्र रचयिता है?

क. हिरण्यगर्भ ख. जनार्दन ग. ब्रह्मदेव घ. रूद्र

4. पुराणों में सृष्टिकर्ता किसे कहा गया है?

क. ब्रह्मा ख. विष्णु ग. महेश घ. दुर्गा

5. संहारकर्ता कौन है?

क. शिव ख. विष्णु ग. ब्रह्मा घ. सूर्य

6. अष्टादश पुराणों की रचना किसने की?

क. लोमहर्ष ख. गणेश ग. वेदव्यास घ. शिव

7. प्रियव्रत के पिता का नाम क्या था?

क. उतानपाद ख. स्वायम्भुव मनु ग. ब्रह्मा घ. स्वारोचिस मनु

8. भागवत के तृतीय स्कनध के दशम अध्याय में कितने प्रकार की सृष्टि का वर्णन है?

क. 8 ख. 9 ग. 10 घ. 11

ब्रह्मपुराण में सृष्टि वर्णन –

नैमिषारण्य में अनेक ऋषियों के साथ वेदव्यास शिष्य लोमहर्षण का सृष्टि विषयक संवाद होता है कि जो नित्य, सदसत्स्वरूप तथा कारणभूत अव्यक्त प्रकृति है, उसी को 'प्रधान' कहते हैं। उसी से विराट पुरुष ने इस सृष्टि का निर्माण किया है। यहाँ अमित तेजस्वी ब्रह्माजी को ही विराट पुरुष समझने के लिए कहा है। वे समस्त प्राणियों की सृष्टि करनेवाले तथा भगवान् नारायण के आश्रित हैं। प्रकृति से महत्तत्त्व, महत्तत्त्व से अहङ्कार तथा अहङ्कार से सब सूक्ष्म भूत उत्पन्न हुए। भूतों के जो भेद हैं, वे भी उन सूक्ष्म भूतों से ही प्रकट हुए हैं। यह सनातन सर्ग है। तदनन्तर स्वयम्भू भगवान् नारायण ने नाना प्रकारकी प्रजा उत्पन्न करने की इच्छा से सबसे पहले जल की ही सृष्टि की। फिर जलमें अपनी शक्ति का आधान किया। जलका दूसरा नाम 'नार' है, क्योंकि उसकी उत्पत्ति भगवान् नर से हुई है। वह जल पूर्वकालमें भगवान् का अयन (निवासस्थान) हुआ, इसलिये वे नारायण कहलाते हैं। भगवान् ने जो जल में अपनी शक्तिका आधान किया, उससे एक बहुत विशाल सुवर्णमय अण्ड प्रकट हुआ। उसी में स्वयम्भू ब्रह्माजी उत्पन्न हुए - ऐसा सुना जाता है। सुवर्ण के समान कान्तिमान् भगवान ब्रह्मा ने एक वर्ष तक उस अण्ड में निवास करके उसके दो टुकड़े कर दिये। फिर एक टुकड़े से द्युलोक बनाया और दूसरे से भूलोक। उन दोनों के बीच में आकाश रखा। जलके ऊपर तैरती हुई पृथ्वी को स्थापित किया। फिर दसों दिशाएँ निश्चित कीं। साथ ही काल, मन, वाणी, काम,क्रोध और रति की सृष्टि की। इन भावों के अनुरूप सृष्टि करने की इच्छा से ब्रह्माजी ने सात प्रजापतियों को अपने मन से उत्पन्न किया। उनके नाम इस प्रकारहैं— मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतुतथा वसिष्ठ। पुराणों में ये सात ब्रह्मा निश्चित किये गये हैं। तत्पश्चात् ब्रह्माजी ने अपने रोष से रुद्र को प्रकट किया। फिर पूर्वजों के भी पूर्वज सनत्कुमार जी को उत्पन्न किया। इन्हीं सात महर्षियों से समस्त प्रजा तथा ग्यारह रुद्रों का प्रादुर्भाव हुआ। उक्त सात महर्षियों के सात बड़े-बड़े दिव्य वंश हैं, देवता भी इन्हीं के अन्तर्गत हैं। उक्त सातों वंशों के लोग कर्मनिष्ठ एवं संतानवान् हैं। उन वंशों को बड़े-बड़े ऋषियों ने सुशोभित किया है। इसके बाद ब्रह्माजी ने विद्युत्, वज्र, मेघ, रोहित,

इन्द्रधनुष,पक्षी तथा मेघोंकी सृष्टि की। फिर यज्ञों की सिद्धिके लिये उन्होंने ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा सामवेद प्रकट किये। तदनन्तर साध्य देवताओं की उत्पत्ति बतायी जाती है। छोटे-बड़े सभी भूतभगवान् ब्रह्माके अङ्गोंसे उत्पन्न हुए हैं। इस प्रकारप्रजाकी सृष्टि करते रहनेपर भी जब प्रजा की वृद्धि नहीं हुई, तब प्रजापति अपने शरीरके दो भाग करके आधे से पुरुष और आधे से स्त्री हो गये। पुरुषका नाम मनु हुआ। उन्हीं के नाम पर 'मन्वन्तर' काल माना गया है। स्त्री अयोनिजा शतरूपा थी,जो मनुको पत्नी रूप में प्राप्त हुई। उसने दस हजार वर्षों तक अत्यन्त दुष्कर तपस्या करके परम तेजस्वी पुरुष को पति रूप में प्राप्त किया। वे ही पुरुष स्वायम्भुव मनु कहे गये हैं (वैराज पुरुष भी उन्हीं का नाम है)। उनका 'मन्वन्तर-काल' इकहत्तर चतुर्युगी का बताया जाता है। शतरूपा ने वैराज पुरुष के अंश से वीर, प्रियव्रत और उत्तानपाद नामक पुत्र उत्पन्न किये । वीर से काम्या नामक श्रेष्ठ कन्या उत्पन्न हुई जो कर्दम प्रजापति की धर्मपत्नी हुई। काम्या के गर्भ से चार पुत्र हुए — सम्राट्, कुक्षि, विराट् और प्रभु । प्रजापति अत्रि ने राजा उत्तानपाद को गोद ले लिया। प्रजापति उत्तानपाद ने अपनी पत्नी सूनृता के गर्भ से ध्रुव,कीर्तिमान्, आयुष्मान् तथा वसु- ये चार पुत्र उत्पन्न किये। ध्रुवसे उनकी पत्नी शम्भु ने श्लिष्टि और भव्य-इन दो पुत्रोंको जन्म दिया। श्लिष्टिकेउसकी पत्नी सुछायाके गर्भसे रिपु, रिपुञ्जय, वीर,वकल और वृकतेजा-ये पाँच पुत्र उत्पन्न हुए। रिपु से बृहती ने चक्षुष् नामके तेजस्वी पुत्रको जन्मदिया। चक्षुष् के उनकी पत्नी पुष्करिणी से, जो महात्मा प्रजापति वीरण की कन्या थी, चाक्षुष मनु उत्पन्न हुए। चाक्षुष मनु से वैराज प्रजापति की कन्यानड्वला के गर्भ से दस महाबली पुत्र हुए, जिनके नाम इस प्रकार हैं–कुत्स, पुरु, शतद्युम्न, तपस्वी,सत्यवाक्, कवि, अग्निष्टुत्, अतिरात्र, सुद्युम्न तथा अभिमन्यु । पुरुसे आग्नेयी ने अङ्ग, सुमना,स्वाति, क्रतु, अङ्गिरा तथा मय- ये छः पुत्रउत्पन्न किये। अङ्ग से सुनीथा ने वेन नामक एक पुत्र पैदा किया । वेन के अत्याचार से ऋषियों कोबड़ा क्रोध हुआ; अतः प्रजाजनों की रक्षा के लिये उन्होंने उसके दाहिने हाथ का मन्थन किया, उससे महाराज पृथु प्रकट हुए। उन्हें देखकर मुनियों ने कहा – 'ये महातेजस्वी नरेश प्रजा को प्रसन्न रखेंगे तथा महान् यशके भागी होंगे ।'वेनकुमार पृथु धनुष और कवच धारण किये अग्नि के समान तेजस्वी रूप में प्रकट हुए थे। उन्होंने इस पृथ्वीका पालन किया। राजसूय यज्ञ के लिये अभिषिक्त होनेवाले राजाओं में वेसर्वप्रथम थे। उनसे ही स्तुति-गान में निपुण सूत और मागध प्रकट हुए। उन्होंने इस पृथ्वी से सबप्रकार के अनाज दुहे थे। प्रजाकी जीविका चले, इसी उद्देश्य से उन्होंने देवताओं, ऋषियों, पितरों,दानवों, गन्धर्वों तथा अप्सराओं आदि के साथ पृथ्वी का दोहन किया था।

कूर्म पुराण में सृष्टि का वर्णन -

श्रीकूर्म जी कहते है – भगवान नारायण की इच्छा से समस्त संसार के पितामह चतुर्मुख ब्रह्मा का आविर्भाव हुआ। इसी बीच किसी कारण से अकस्मात् उस समय क्रोध उत्पन्न हुआ। हे मुनिश्रेष्ठो! (उससमय) क्रोधात्मज अपने तेज के द्वारा मानो त्रैलोक्य का संहार करने के लिये हाथ में त्रिशूल धारण किये, तीन नेत्रों वाले सूर्यके समान प्रकाशमान महेश्वर रुद्रदेव वहाँ उत्पन्न हुए। तदनन्तर कमल के समान विशाल नेत्रोंवाली, सुन्दररूप एवं प्रसन्न मुखवाली तथा सभी प्राणियों को मोहित करनेवाली देवी लक्ष्मी उत्पन्न हुई। पवित्र

मुस्कानवाली,अत्यन्त प्रसन्न, मङ्गलमयी, अपनी महिमा में प्रतिष्ठित,दिव्य कान्ति से सुसम्पन्न, दिव्य माल्य आदि से सुशोभित,अविनाशिनी महामाया मूलप्रकृतिरूपा वे नारायणी अपने तेज से इस (संसार) - को आपूरित करती हुई मेरे समीप में आकर बैठ गयीं। उन्हें देखकर संसारके स्वामी भगवान् ब्रह्मा मुझसे कहने लगे- हे माधव! सम्पूर्णप्राणियोंको मोहित करनेके लिये इन सुरूपिणी (देवी)-को नियुक्त करो, जिससे यह मेरी सृष्टि और भी अधिक बढ़ने लगे। ब्रह्मा के द्वारा ऐसा कहे जाने पर मैंने (कूर्मावतार नारायण) ने मुसकराते हुए देवी लक्ष्मी से कहा- हे देवि! मेरे आदेश से तुम देवताओं,असुरों तथा मनुष्यों से युक्त सम्पूर्ण विश्व को (अपनीमायासे) मोहित कर संसार में प्रवृत्त करो। (किंतु) जो ज्ञानयोग में निरत हैं, जितेन्द्रिय हैं, ब्रह्मनिष्ठ हैं, ब्रह्मवादी हैं, क्रोधशून्य हैं तथा सत्य-परायण हैं-ऐसे लोगों को दूर से ही छोड़ देना।

ध्यान करनेवाले, ममतारहित, शान्त, धार्मिक, वेद में पारंगत, जप-परायण और तपस्वी विप्रों को दूर से ही छोड़ देना। वेद एवं वेदान्त के विशेष ज्ञान से जिनके सम्पूर्ण संशय सर्वथा दूर हो गये हैं ऐसे तथा बड़े-बड़े यज्ञों में परायण द्विजों को दूर से ही छोड़ देना। जो जप, होम, यज्ञ एवं स्वाध्याय के द्वारा देवाधिदेव महेश्वर का यजन करते हैं, उनका प्रयत्नपूर्वक दूर से ही परित्याग कर देना। जो भक्तियोग में लगे हुए हैं, जिन्होंने अपना चित्तभगवान् को अर्पण कर दिया है और जो प्राणायाम(धारणा, ध्यान तथा समाधि) आदिमें निरत हैं, ऐसे अमलात्माओं का दूर से ही त्याग कर देना। जिनका मन प्रणवोपासना में आसक्त है, जो रुद्र (मन्त्रों) का जप करनेवाले हैं और जो अथर्व शिरस् के अध्येता हैं, उन धर्मज्ञ व्यक्तियों को छोड़ देना। और अधिक क्या कहा जाय, जो अपने धर्म का पालन करनेवाले हैं, ईश्वर की आराधना में सतत रत हैं, (हे देवि!) उन्हें मेरे आदेश से कदापि मोहित न करना। इस प्रकार मेरे द्वारा प्रेरित हरिप्रिया महामाया ने जैसी मेरी आज्ञा थी, उसी प्रकार किया, इसलिये (उन)लक्ष्मी की आराधना करनी चाहिये। भगवत्पत्नी (देवीमहालक्ष्मी) पूजा किये जानेपर विपुल ऐश्वर्य, पुष्टि,मेधा, यश एवं बल प्रदान करती हैं, इसलिये लक्ष्मी की भलीभाँति पूजा करनी चाहिये ॥

तदनन्तर लोक पितामह सूतजी ने कहा – आश्रमों के सम्बन्ध में पूरे विधि-विधान को सुनकर प्रसन्न मनवाले ऋषियों ने भगवान् हृषीकेश को नमस्कार करके पुनः इस प्रकार का वचन कहा - मुनिजन बोले – (भगवन्!) आपने श्रेष्ठ चारों आश्रमों के विषय में सब कुछ बतलाया, अब इस समय हमें यह सुनने की इच्छा है कि इस जगत्की सृष्टि कैसे होती है। हे पुरुषोत्तम ! यह सब (संसार) कहाँ से उत्पन्नहुआ, किस में विलीन होगा और इन सबका नियामक कौन है ? यह सब आप बतलायें। ऋषियोंका वचन सुनकर कूर्मरूप धारण करनेवाले तथा सभी भूत-प्राणियोंके उत्पत्ति और विनाश के स्थान भगवान् नारायण। गम्भीर वाणी में बोले। श्रीकूर्म ने कहा – सर्वत्र (चारों ओर) मुखवाले महेश्वर (प्रकृतिसे) पर, अव्यक्त, चतुर्व्यूह, सनातन, अनन्त,अप्रमेय तथा (समस्त जगत्के) नियन्ता हैं। तत्त्वचिन्तकजिसे प्रधान और प्रकृति कहते हैं और जो सत्-असत्-रूप हैं, वही अव्यक्त नित्य कारण है। गन्ध, वर्ण और रससे हीन, शब्द-स्पर्शसे रहित,अजर, ध्रुव, अक्षय्य (कभी नाश न होनेवाला), नित्य॥अपनी आत्मामें स्थित संसारका बीजरूप, महाभूत,सनातन, परब्रह्म, सभी प्राणियोंकी मूर्तिरूप, आत्मा से अधिष्ठित, महत्तत्त्व, अनादि, अनन्त, अजन्मा, सूक्ष्म,त्रिगुण, उत्पत्ति और प्रलयका स्थान, शाश्वत

तथाअविज्ञेय ब्रह्म ही आदिमें विद्यमान था। उस समय गुणोंकी साम्यावस्थारूप उस पुरुषकेआत्मस्वरूपमें स्थित होनेपर जबतक विश्वकी सृष्टि नहींहो जाती, प्राकृत प्रलय (-का समय) जानना चाहिये।यह ब्रह्माकी रात्रि कही गयी है और सृष्टिको ब्रह्माकादिन कहा गया है, (वास्तवमें) उसका न दिन होता हैऔर न रात होती है। आदिसे रहित वह जगत्का आदि कारण, सर्वभूतमय,अव्यक्त, अन्तर्यामी परात्पर ईश्वर रात्रि व्यतीत होनेपरजाग्रत् हुआ। परमेश्वर महेश्वरने प्रकृति एवं पुरुष में शीघ्र ही प्रविष्ट होकर परम योगके द्वारा (उनमें) क्षोभ(गति) उत्पन्न किया। जैसे वसन्त ऋतु की वायु अथवा मद पुरुष एवं स्त्रियों को (क्षुब्ध करता है) वैसे ही वह योग विग्रह(योगबलसे विविध शरीर-धारणमें समर्थ ईश्वर) प्रकृति एवं पुरुष में अनुप्रविष्ट होकर क्षोभ का कारण बनता है। हे ब्राह्मणो! वही परमेश्वर क्षोभ उत्पन्न करनेवाला है एवं स्वयं क्षुब्ध होनेवाला है, वह प्रलय एवं सृष्टि करने के कारण प्रधान भी कहलाता है। प्रधान पुरातन पुरुष के क्षुब्ध होने से प्रधान (प्रकृति) पुरुषात्मक महद् बीज का आविर्भाव हुआ। इसी कारणसे (वह महद्बीज) महान् आत्मा, मति,ब्रह्मा, प्रबुद्धि, ख्याति, ईश्वर, प्रज्ञा, धृति, स्मृति तथासंवित् कहलाता है। महत्तत्त्व से समस्त प्राणियों की सृष्टि का आदि कारण-वैकारिक, तैजस तथा तामस - यह तीन प्रकार का अहंकार उत्पन्न हुआ। वह अहंकार अभिमान, कर्ता, मन्ता, आत्मा, पुद्गलतथा जीव (नामों) से कहा गया है। उसी अहंकार से सभी प्रवृत्तियाँ होती हैं। अहंकार से पाँच महाभूत(पृथ्वी, जल, तेज, वायु तथा आकाश), पाँच तन्मात्राएँ(शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गन्ध), सभी इन्द्रियाँ तथा उन इन्द्रियों के अधिष्ठातृ देवता उत्पन्न हुए। यह सम्पूर्ण जगत् या सृष्टि उससे ही उत्पन्न हुआ है। अव्यक्त से उत्पन्न मन को प्रथम विकार माना गयाहै। इस कारण यह कर्ता एवं भूतादिकों को देखनेवालाहै। वैकारिक अहंकारसे वैकारिक सृष्टि उत्पन्न हुई।इन्द्रियाँ तैजस हैं और (उन इन्द्रियोंके अधिष्ठाता) दसदेवता वैकारिक हैं। उनमें (ग्यारहवाँ) इन्द्रिय मन अपने गुणके कारणउभयात्मक' है। यह भूततन्मात्राओंकी सृष्टि है। भूतादिकोंसेही प्रजा उत्पन्न हुई। विकारप्राप्त भूतोंने शब्दतन्मात्राकोउत्पन्न किया। उस (शब्द तन्मात्रा) - से शब्द लक्षण-वाले तथा अवकाशस्वरूप आकाशकी उत्पत्ति हुई।

वैकारिक आकाशने स्पर्श तन्मात्राको उत्पन्न किया।उससे वायु उत्पन्न हुआ और वायुका गुण स्पर्श कहागया है ॥२३ – २५ ॥विकारप्राप्त वायुने रूप तन्मात्राको उत्पन्न किया,कलावायुसे तेज उत्पन्न हुआ और इसका 'रूप' गुण कहाजाता है। विकारको प्राप्त हुए तेजने भी रस तन्मात्राकीसृष्टि की और उससे फिर जलकी उत्पत्ति हुई, वह जलइस 'रस' गुणका आधारहै। विकारको प्राप्त हो रहेजलने गन्ध तन्मात्राको उत्पन्न किया, उससे संघात(पृथ्वीतत्त्व) उत्पन्न हुआ और उसका गुण 'गन्ध' मानागया है। आकाशकी शब्द नामक तन्मात्रा है, उसने स्पर्शनामक तन्मात्राको आवृत किया है, इसलिये वायु शब्दतथा स्पर्श — इन दो गुणोंवाला है। उसी प्रकार रूप(नामक) गुण, शब्द एवं स्पर्श दो गुणोंसे आविष्ट है, अतः तेज या अग्नि- शब्द, स्पर्श तथा रूप – इन तीनगुणोंवाला है। शब्द, स्पर्श तथा रूप एवं रस तन्मात्रामेंप्रविष्ट हुए, इसलिये रसात्मक जल-तत्त्वको चार गुणों। (शब्द, स्पर्श, रूप तथा रस) से युक्त समझना चाहिये।

शब्द, स्पर्श, रूप तथा रस-ये चार गुण गन्ध तन्मात्रा में प्रविष्ट हुए, इसलिये पञ्च स्थूल महाभूतसे युक्त पृथ्वी॥ तत्त्व पाँच गुणोंवाला कहा गया है। इसी कारण ये शान्त, घोर, मूढ तथा विशेष कहलातेहैं। ये परस्पर एक-दूसरेमें प्रविष्ट होनेके कारण आपसमेंएक दूसरेको धारण किये रहते हैं।

श्रीकूर्म बोले- उनके (ब्रह्माके) द्वारा सृष्टि के विषय में सोचते रहने पर अबुद्धिपूर्वक अन्धकार रूप वैसी ही सृष्टि हुई जैसी कि पूर्व के कल्पों में हुई थी। उन महात्मा से तम, मोह, महामोह, तामिस्र तथा अन्धनाम वाली यह पञ्चपर्वा अविद्या उत्पन्न हुई। उस अभिमानी (देव) -के द्वारा ध्यान करते समय अन्धकार से ढकी हुई बीज-सदृश तथा लोकों से आवृत वह सृष्टि पाँच भागों में विभाजित होकर स्थित हुई। बाहर एवं भीतरके प्रकाश (ज्ञान) - से शून्य, स्तब्ध(जड) तथा संज्ञा (चेतना) - विहीन नग (अर्थात् पर्वत,वृक्ष आदि) 'मुख्य' इस नाम से कहे जाते हैं और वही मुख्य सर्ग (मुख्य सृष्टि) कहलाता है। प्रभु ने उस(मुख्य सर्ग)-को (सृष्टिके विस्तारमें) साधक (समर्थ) न देखकर दूसरी सृष्टिके लिये विचार किया। उनके ऐसा विचार करते ही 'तिर्यक्त्रोत' नामक (पशु-पक्षियोंआदिकी) सृष्टि हुई। हे ब्राह्मणो! क्योंकि वह स…तदनन्तर निरन्तर सत्यका ध्यान करनेवाले उन देव के चिन्तन करने पर उसी समय अव्यक्त (प्रकृति) -से (सृष्टि-विस्तार का) साधक अर्वाक्त्रोत वाला साधक(सर्ग) उत्पन्न हुआ। वे (अर्वाक्स्त्रोत प्राणी) प्रकाश(ज्ञान) - के बाहुल्य वाले, तमोगुण तथा रजोगुण की अधिकता वाले, अधिक दुःखवाले और सत्त्वगुण से सम्पन्न मनुष्य नाम से कहे जाते हैं । उस (मानुषसर्ग) को देखकर अजन्मा भगवान्ने अन्य सर्ग की रचना का विचार किया और उनके ऐसे सर्ग-विषयक ध्यान करते ही भूतादि सर्ग उत्पन्न हुआ।वे सभी संग्रह न करनेवाले, फिर भी बाँटनेके स्वभाववाले,उपभोग करनेवाले तथा शीलरहित 'भूतादि' इस नाम से कहे गये हैं। इस प्रकार ये पाँच सर्ग कहे गये हैं। ब्रह्मा का वह पहला सर्ग महत्सर्ग कहा गया है। तन्मात्राओं का दूसरा सर्ग भूतसर्ग कहलाता है। तीसरा वैकारिक सर्ग ऐन्द्रियक सर्ग कहा जाता है। इस प्रकार यह प्राकृत सर्ग अबुद्धिपूर्वक हुआ। चौथा सर्ग मुख्य सर्ग है। स्थावर (जड पदार्थ) मुख्य कहलाते हैं। तिर्यक्त्रोत से जिस सर्गको बतलाया है वह तिर्यग्योनि वाला पाँचवाँ सर्ग है। तदनन्तर ऊर्ध्वस्रोतसों का छठा सर्ग है जो देवसर्ग कहलाता है। तदनन्तर अर्वाक्स्रोतसों का सातवाँ सर्ग है जो मानुष सर्ग है। भूतादिकों का आठवाँ सर्ग भौतिक सर्ग कहा गया है। नवाँ सर्ग कौमार सर्ग है। इस प्रकार ये नवों सर्ग प्राकृत तथा वैकृत दोनों प्रकार के हैं।

मुनिश्रेष्ठो! पहले के तीन सर्ग (महत्सर्ग, भूतसर्गतथा ऐन्द्रियक सर्ग) प्राकृत सर्ग हैं, जो अबुद्धिपूर्वक होते हैं। और मुख्य आदि सर्ग (अवशिष्ट ६ सर्ग) बुद्धिपूर्वक होते हैं। प्रजापति ब्रह्माजी ने सबसे पहले अपने ही समानसनक, सनातन, सनन्दन, ऋभु तथा सनत्कुमार नामक मानस पुत्रों को उत्पन्न किया। हे ब्राह्मणो! ये पाँचों योगी थे, परम वैराग्यवान् थे और ईश्वर में उनका मन आसक्त था। (इसलिये) उन्होंने सृष्टि के विस्तार में अपनी बुद्धि नहीं लगायी।

मार्कण्डेय पुराण में सृष्टि वर्णन -

क्रौष्टकिने कहा – भगवन्! आपने ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति का यथावत् वर्णन किया तथा महात्मा ब्रह्माजी के प्रादुर्भाव की बात भी बतलायी। अब मैं आपसे यह सुनना चाहता हूँ कि प्रलय के अन्त में, जब कि सबका उपसंहार हो जाता है और प्राणियों की सृष्टि नहीं हुई होती,क्या शेष रहता है? अथवा कुछ रहता ही नहीं ? मार्कण्डेयजी बोले– मुने! जब यह सम्पूर्णजगत् प्रकृतिमें लीन होता है, उस समय की स्थितिको विद्वान् पुरुष प्राकृत प्रलय कहते हैं। जब अव्यक्त प्रकृति अपने स्वरूप (गुणों की साम्यावस्था) में स्थित होती है तथा महत्तत्त्वादि सम्पूर्ण विकारों का उपसंहार हो जाता है, उस समय प्रकृति और पुरुष समानधर्मा (निष्क्रिय,निर्विकार) होकर रहते हैं। उस समय सत्त्व और तम समान रूप में और परस्पर ओत-प्रोत रहते हैं तथा जैसे तिल में तेल और दूध में घी रहता है, उसी प्रकार तमोगुण और सत्त्वगुण में रजोगुण घुला-मिला होता है। जब परमेश्वर की योगदृष्टि से प्रकृति में क्षोभ होता है, तब महान् अण्डके-भीतर से ब्रह्माजी प्रकट होते हैं - यह बात आपको बतलायी जा चुकी है। यद्यपि ब्रह्माजी सम्पूर्ण जगत् की उत्पत्ति के स्थान और निर्गुण हैं, तथापि रजोगुण का उपभोग करते हुए सृष्टि में प्रवृत्त होते हैं और ब्रह्मा के कर्तव्य का पालन करते हैं। फिर परमेश्वर सत्त्वगुण के उत्कर्ष से युक्त हो श्रीविष्णु का स्वरूप धारण कर धर्म पूर्वक प्रजाका पालन करतेहैं। फिर तमोगुण की अधिकता से युक्त हो रुद्ररूप धारण करके सम्पूर्ण जगत् का संहार करते और निश्चिन्त सोते हैं। इस प्रकार सृष्टि, पालन और संहार - इन तीनों कालोंमें तीन गुणोंसे युक्त होकर भी वे परमेश्वर वास्तव में निर्गुण ही हैं। जैसे खेतिहर पहले बीज को बोता, फिर पौधे की रक्षा करता और अन्त में खेती पक जाने पर उसे काटता है तथा इन कार्यों के अनुसार बोनेवाला, रक्षा करनेवाला और काटने वाला- ये तीन नाम धारण करता है, उसी प्रकार एक ही परमेश्वर भिन्न-भिन्न कार्यों के अनुसार ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्र नाम धारण करते हैं। ब्रह्मा होकर संसार की सृष्टि करते और रुद्र होकर उसका संहार करते हैं तथा विष्णु रूप में इन दोनों कार्यों से उदासीन रहकर सबका पालन करते हैं। इस तरह स्वयम्भू परमात्मा की तीन अवस्थाएँ होती हैं। रजोगुण ब्रह्मा, तमोगुण प्रधान रुद्र और सत्त्वप्रधान विश्वपालक विष्णु हैं। ये ही तीन देवता हैं और ये ही तीनगुण हैं। ये परस्पर एक-दूसरेके आश्रित और एक-दूसरे से मिले रहते हैं। इनमें एक क्षण का भी वियोग नहीं होता। ये एक-दूसरेका कभी त्याग नहीं करते। इस प्रकार जगत् के आदिकारण देवाधिदेव चतुर्मुख ब्रह्माजी रजोगुण का आश्रय लेकर सृष्टि केकार्य में संलग्न रहते हैं। उनकी आयु अपने ही मान से सौ वर्षों की होती है। उसका परिमाण बतलाता हूँ, सुनो। पंद्रह निमेषों की एक काष्ठा होती है, तीस काष्ठाओं की एक कला, तीस कलाओं का एक मुहूर्त तथा तीस मुहूर्तों का एक दिन-रात होता है। यह मनुष्यों के दिन-रातका मान है। तीस दिन-रात व्यतीत होने पर दो पक्ष अथवा एक मासपूर्ण होता है। छः मासों का एक अयन और दो अयनों का एक वर्ष होता है। दो अयनोंका नामक्रमशः दक्षिणायन और उत्तरायण है। इस प्रकार मनुष्यों का एक वर्ष देवताओं का एक दिन-रात है। उसमें दिन तो उत्तरायण और रात दक्षिणायन है। देवताओं के बारह हजार वर्षों की एक चतुर्युगीहोती है, जिसे सत्ययुग, त्रेता आदि कहते हैं।अब इनका विभाग सुनो। चार हजार दिव्यवर्षों का सत्ययुग होता है, चार सौ दिव्य वर्षों की उसकी सन्ध्या और उतने ही वर्षोंका सन्ध्यांशहोता है। तीन हजार दिव्य वर्षोंका त्रेतायुग है।

उसकी सन्ध्या और सन्ध्यांश का समय तीन-तीनसौ दिव्य वर्षोंका है। दो हजार दिव्य वर्षों का द्वापरयुग होता है और दो-दो सौ दिव्य वर्ष उसकी सन्ध्या तथा सन्ध्यांशके होते हैं।

एक हजार दिव्य वर्षों का कलियुग होता है तथा सौ-सौ दिव्य वर्ष उसकी सन्ध्या एवं सन्ध्यांश के बताये गये हैं। इस प्रकार विद्वानों ने बारह हजार दिव्य वर्षों की एक चतुर्युगी बतायी है। एक हजार चतुर्युगी बीतने पर ब्रह्मा का एक दिन होता है। ब्रह्मन्! ब्रह्माजी के एक दिनमें बारी-बारी से चौदह मनु होते हैं। देवता, सप्तर्षि, इन्द्र, मनु और मनुपुत्र - ये सब लोग एक ही साथ उत्पन्न होते हैं और एक ही साथ इनका संहार भी होता है। इस प्रकार इकहत्तर चतुर्युगों से कुछ अधिक काल का एक मन्वन्तर होता है।

7.4.2 अन्य मुख्य पुराणों में सृष्टि प्रक्रिया

विष्णु पुराण में प्रतिपादित सृष्टि उत्पत्ति प्रक्रिया का मूल रहस्य -

त्रिगुणं तज्ज्गद्योनिरनादिप्रभवाप्ययम्।
तेनाग्रे सर्वमेवासीद्व्याप्तं वै प्रलयादनु।।

अर्थात् भगवान विष्णु त्रिगुणमय और जगत् का कारण है तथा स्वयं अनादि एवं उत्पत्ति और लय से रहित है। यह सृष्ट्योत्पत्ति सम्बन्धित समस्त प्रपंच प्रलयकाल से लेकर सृष्टि के आदि तक सभी उसी विष्णु में समाहित है।

सृष्टिस्थित्यन्तकरणीं ब्रह्मविष्णुशिवात्मिकाम्।
स संज्ञां याति भगवानेक एव जनार्दन:।।

अर्थात् वह एक ही भगवान जनार्दन जगत् की सृष्टि, स्थिति और संहार के लिए ब्रह्मा, विष्णु और शिव – ये तीन संज्ञाओं को धारण करता है।

स एव सृज्य: स च सर्गकर्ता
स एव पात्यत्ति च पाल्यते च।
ब्रह्माद्यवथाभिरशेषमूर्ति
र्विष्णुर्वरिष्ठो वरदो वरेण्य:।।

अर्थात् वे सर्वस्वरूप, श्रेष्ठ, वरदायक और वरेण्य भगवान विष्णु ही ब्रह्मा आदि अवस्थाओं द्वारा रचने वाले हैं, वे ही रचे जाते हैं, वे ही पालते हैं, वे ही पालित होते हैं तथा वे ही संहार करते हैं।

उपर्युक्त श्लोकों का विवरण विशेष रूप से सृष्टि रहस्य को समझने के लिए दिये गये हैं।

विष्णु पुराण में सृष्टि रचना के पूर्व की स्थिति का वर्णन करते हुए कहते हैं कि –

नाहो न रात्रिर्न नभो न भूमि
र्नासीत्तमोज्योतिरभूच्च नान्यत्।
श्रोत्रादिबुद्धयानुपलभ्यमेकं
प्राधानिकं ब्रह्म पुमांस्तदासीत्।।

अर्थात् प्रलयकाल में न दिन था, न रात्रि थी, न आकाश था, न पृथ्वी थी, न अंधकार था, न प्रकाश था और न इनके अतिरिक्त कुछ और ही था। बस, श्रोत्रादि इन्द्रियों और बुद्धि आदि का अविषय एक प्रधान ब्रह्म और पुरूष ही था।

विष्णु के परम स्वरूप से प्रधान और पुरूष – ये दो रूप हुए उसी के जिस अन्य रूप के द्वारा वे दोनों सृष्टि और प्रलयकाल में संयुक्त और वियुक्त होते हैं, उस रूपान्तर का ही नाम 'काल' है। इसी प्रकार पूर्ववत् प्रधान पुरूष से महत् , महत् से अहंकार, अहंकार से पंचमहाभूत, पुन: पंचतन्मात्रा एवं समस्त इन्द्रियां तथा उसके अधिष्ठातृ देव

बोध प्रश्न – 2

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें –

1. महत् से .... की उत्पत्ति हुई।
2. मार्कण्डेय पुराण के अनुसार .... हजार दिव्य वर्ष का कलियुग होता है।
3. स एव सृज्य: स च .... ।
4. ब्रह्मा का एक अहोरात्र .... होता है।
5. त्रिगुण होता है ....।

शिव पुराण में सृष्टि प्रक्रिया –

शिव पुराण के रूद्र संहिता में इस बात का वर्णन किया गया है कि जब नारदजी ने परमपिता ब्रह्मा से सृष्टि की उत्पत्ति के बारे में पूछा तो ब्रह्मा जी ने कहा कि देवर्षि जैसा कि आप जानते हैं कि मेरी उत्पत्ति श्री हरि के नाभि कमल से हुई है ! जब मेरी उत्पत्ति हुई तो देवों के देव महादेव में मुझसे सृष्टि रचना का आदेश दिया और वह अर्न्तध्यान हो गए ! उसके बाद में उनकी आज्ञा का पालन करने के लिए ध्यानमग्न हो कर्तव्य का विचार करने लगा। और फिर भगवान शंकर को नमस्कार करके श्रीहरि से ज्ञान पाकर परमानंद की प्राप्ति कर मैंने सृष्टि की रचना करने का निश्चय किया।

उसके पश्चात मैंने सृष्टि की रचना की इच्छा से भगवान शिव और उनका स्मरण करके पहले उनके द्वारा रचे हुए जल में अपनी ऊँगली डालकर जल को ऊपर की ओर उछाला ! इससे वहां एक अंड प्रकट हुआ, जिसे 24 तत्वों का समूह कहा जाता है ! है मुनिश्रेष्ठ वह विराट आकार वाला अंड जड़ रूप ही था ! उसमें चेतना ना देखकर मुझे पड़ा संशय हुआ और मैं अत्यंत कठोर तप करने लगा !

इस तरह परम पिता ब्रह्मा 12 वर्षों तक भगवान विष्णु के चिंतन में लगा रहा ! उसके बाद भगवान श्रीहरि स्वयं प्रकट हुए और बड़े प्रेम से मेरे अंगों का स्पर्श करते हुए मुझसे प्रसन्नता पूर्वक बोले- "हे ब्रह्मा तुम वर मानगो, मैं तुम्हारी तपस्या से अति प्रसन्न हूं, मुझे तुम्हारे लिए कुछ भी अच्छा नहीं है" ! "भगवान शिव की कृपा से मैं सब कुछ देने में असमर्थ हूं"।

यह सुन मैंने भगवान श्रीहरि से कहा "हे प्रभु आपने जो मुझ पर कृपा की है, वह सर्वथा उचित ई है" क्योंकि भगवान शंकर ने मुझे आपके हाथों में सौंप दिया है"! "हे विष्णु आपको नमस्कार है' आज मैं आपसे जो कुछ मांगता हूं उसे दीजिए"। हे प्रभु "यह प्रारूप 24 तत्वों से बना हुआ अंड किसी तरह का चेतन नहीं हो रहा है, जड़ी भूत दिखाई देता है" ! ब्रह्मा ने फिर कहा "हे नारायण इस समय आप भगवान शिव की कृपा से यहां प्रकट हुए हैं, अतः शंकर की शक्ति या विभूति से प्राप्त हुए इस अंड में चेतनता लाइए" !

मेरे ऐसा कहने पर शिव की आज्ञा में तत्पर रहने वाले महा विष्णु ने अनंत रूप का आश्रय ले उस अंड में प्रवेश किया ! उस समय उन परम पुरुष की शहस्त्रों मस्तक,सहस्त्रो नेत्र, और शास्त्रों पैर थे ! उन्होंने भूमि को चारों ओर से घेरकर उस अंड को व्याप्त कर लिया ! मेरे द्वारा भली-भांति स्तुति की जाने पर जब श्री विष्णु ने उस अंड में प्रवेश किया था, तब वह 24 तत्वों का बिकाल रूप अंड सचेतन हो गया।

पाताल से लेकर सत्यलोक तक की अवधि वाले उस अंड के रूप में वहां साक्षात श्रीहरि ही विराजने लगे ! उस विराट अंड में व्यापक होने से भी प्रभु बैराज पुरुष कहलाए। प्रसन्न मुख महादेव ने ना केवल अपने रहने के लिए सुगम्य कैलाश नगर का निर्माण किया जो सब लोगों से ऊपर सुशोभित होता है,बल्कि संपूर्ण ब्रह्मांड का नाश हो जाने पर भी बैकुंठ और कैलाश इंदु धामों का कभी नष्ट नहीं होता है। हे नारद, में सत्य लोग का आश्रय लेकर रहता हूं और महादेव जी की आज्ञा से ही मुझ में सृष्टि रचाने की इच्छा उत्पन्न हुई है। उसके बाद जब में सृष्टि की रचना की इच्छा से चिंतन करने लगा, उस समय पहले मुझ में अनजान में ही बापूगुण, तमोगुण सृष्टि का प्रादुर्भाब हुआ,जिसे अबिध्या पंचक कहते हैं !

तदनंतर प्रसन्न चित्त होकर शंभू की आज्ञा से मैं पुनः अनासक्त भाव से सृष्टि का चिंतन करने लगा ! उस समय मेरे द्वारा स्थावर संज्ञक वृक्ष आदि की सृष्टि हुई, जिससे मुख्य सर्ग कहते हैं ! यह पहला सर्क है, वह अपने लिए पुरुषार्थ का साधक नहीं है ! यह जानकर सृष्टि की इच्छा वाले मुझ ब्रह्मा से दूसरा सर्ग प्रकट हुआ, जो दुख से भरा हुआ है ! उसका नाम है त्रियक श्रोता ! वह सर्ग भी पुरुषार्थ साधक नहीं था ! उसे भी पुरुषार्थ साधन की शक्ति से रहित जान जब मैं पुनः सृष्टि का चिंतन करने लगा, तब मुझ में शीघ्र ही तीसरे सात्विक सर्ग का प्रादुर्भाव हुआ,जिसे उधर्व श्रोता कहते है !

यह देवसर के नाम से विख्यात हुआ। देवसर के सत्यवादी तथा अत्यंत सुखदायक है। उसे भी पुरुषार्थ साधन की रूचि एवं अधिकार से रहित जानकर मैंने अन्य सर्ग के लिए अपने स्वामी श्री शिव का चिंतन आरंभ किया। तब जाकर भगवान शंकर की आज्ञा से एक रजोगुणी सृष्टि का प्रादुर्भाव हुआ। जिसे आवर्क श्रोता कहा गया है। इस सर्ग के प्राणी मनुष्य है, जो पुरुषार्थ साधन के उद्धधिकारी हैं। तदनंतर महादेव जी की आज्ञा से भूत आदि की सृष्टि हुई। इस प्रकार मैंने 5 तरह की विकृत सृष्टि का वर्णन किया है। इनकी सेवा तीन प्राकृत सर्ग भी कहे गए हैं, जो मुझ ब्रह्मा के सानिध्य से प्रकृति से ही प्रकट हुए हैं ! इनमें पहला महत्व का सर्ग है, दूसरा सुक्ष्म भूतों अर्थात तन्मात्म्यों का स्वर्ग है, और तीसरा वैकारिक सर्ग कहलाता है

7.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन से आप जान गये हैं कि इस ब्रह्माण्ड के अन्तर्गत सहज रूप में आपके या हमारे सामने उपस्थित ग्रह-नक्षत्रादि पिण्ड, तारे या अन्य पिण्ड, पंचभूत जैसे पृथिवी, जल, अग्नि, आकाश एवं वायु, पेड़-पौधे, वनस्पतियाँ, नदी, समुद्र, पर्वत, पशु, पक्षी, मनुष्य, कीट, पतंगादि सभी चराचरों की उत्पत्ति को ही 'सृष्टि' के नाम से जाना जाता है। सृष्टि शब्द इकारान्त एवं स्त्रीलिंग है जिसका अर्थ है – निसर्ग, रचना तथा Creation आदि। यह सृष्टि अपने अन्दर अनेक विषमताओं एवं विविधताओं को धारण किए हुए है। इसीलिए आप जैसे-जैसे अपने जीवन पथ पर बढ़ते हुए एक स्थान से दूसरे की यात्रा करते हैं वैसे-वैसे सृष्टि की ये विशिष्टताएँ स्वयं ही आपके समक्ष उपस्थित होकर आपको अपना आभास कराती रहती हैं। यह परिवर्त्तन सबके लिए एक समान ही होता है परन्तु सभी लोग अपनी बुद्धि, आवश्यकता एवं स्थिति के अनुसार इसका पृथक्-पृथक् आभास करते हैं। सृष्टि का निर्माण क्षिति, जल, पावक, अग्नि एवं वायु से हुआ है। किन्तु केवल यही सत्य नहीं है। पुराणों में स्वयं भगवान नारायण को ही सृष्ट्योत्पत्ति का मूल कहा है और ब्रह्मा जी को सृष्टिकर्ता। देवीभागवत पुराण में भगवती शक्ति दुर्गा को सृष्टि का मूल कहा है तो शिवमहापुराण में शिव को सृष्टि का मूल कहा है।

7.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

बहुवैकल्पिक प्रश्नों के उत्तर

1. ग
2. घ
3. ख
4. क
5. क
6. ग
7. ख
8. ग

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें का उत्तर -

1. अहंकार
2. एक हजार
3. सर्गकर्ता
4. 2 कल्प के बराबर
5. सत्व, रज एवं तम

7.7 पारिभाषिक शब्दावली

सृष्टिकर्ता – सृष्टि की रचना करने वाला

अजन्मा - जिसका जन्म नहीं होता

निर्गुण - जिनसे सभी गुणों का प्राकट्य होता है

अनन्त - जिसका अन्त नहीं होता

त्रिदेव - ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश

रूद्र - भगवान शिव का नाम

जगत् पालक – सृष्टि का पालन करने वाला

पुराण – प्राचीन बातों को कहने या बतलाने वाला

सृष्टि – समस्त चराचर जगत्

7.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

श्री भागवतमहापुराण – गीता प्रेस

श्री विष्णु पुराण – गीता प्रेस

कूर्म पुराण – गीता प्रेस

ब्रह्म पुराण – गीता प्रेस

मार्कण्डेय पुराण – गीता प्रेस

नारद पुराण– गीता प्रेस

स्कन्द पुराण– गीता प्रेस

शिव पुराण– गीता प्रेस

7.9 सहायक पाठ्यसामग्री

अग्नि पुराण

स्कन्द पुराण

वामन पुराण

ब्रह्मवैवर्त पुराण

मत्स्य पुराण

देवीभागवत महापुराण

7.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. पुराण एवं सृष्टि का विस्तृत परिचय दीजिये।
2. सृष्टि की उत्पत्ति का वर्णन कीजिये।
3. कूर्म एवं विष्णु पुराण में प्रतिपादित सृष्टि प्रक्रिया का उल्लेख कीजिये।
4. सृष्टि क्रम बोधक चक्र का निर्माण करते हुए समझाइये।
5. पुराणों में प्रतिपादित सृष्टि प्रक्रिया का प्रतिपादन कीजिये।

इकाई - 8 वेदाङ्गों में सृष्टि प्रक्रिया

इकाई की रूपरेखा

8.1 प्रस्तावना

8.2 उद्देश्य

8.3 वेदाङ्ग परिचय

8.3.1 शिक्षा एवं कल्प में सृष्टि प्रक्रिया

8.3.2 व्याकरण एवं निरूक्त में सृष्टि प्रक्रिया

8.4 छन्द शास्त्र में सृष्टि प्रक्रिया

8.5 ज्योतिष शास्त्र में सृष्टि प्रक्रिया

8.6 सारांश

8.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

8.8 पारिभाषिक शब्दावली

8.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

8.10 सहायक पाठ्यसामग्री

8.11 निबन्धात्मक प्रश्न

8.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई वैदिक सृष्टि विज्ञान (CVC-21) में प्रमाण पत्र पाठ्यक्रम से सम्बन्धित है। इस इकाई में आप सभी शिक्षार्थियों का स्वागत है। प्रस्तुत इकाई का शीर्षक है – वेदाङ्गों में सृष्टि प्रक्रिया। भारतीय ज्ञान परम्परा में वेद के छ: अंग बतलाये गये हैं – शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरूक्त, छन्द एवं ज्योतिष। इन्हें वेदाङ्ग या शास्त्र भी कहा जाता है।

वेद के अंग होने के कारण शिक्षादि छ: अंगों को वेदांग की संज्ञा दी गयी है। समस्त वेद-वेदांग ज्ञान एवं विज्ञान का ही प्रतिपादन करता है। वेदांगों में भी सृष्टि प्रक्रिया विषयक विषय प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। यहाँ इस इकाई में हम सभी उसी का अध्ययन करने जा रहे हैं।

इस इकाई में आप सभी शिक्षार्थीयों के ज्ञानार्थ वेदांगों में सृष्टिप्रक्रिया का वर्णन किस प्रकार किया गया है? कौन-कौन से वेदांग में सृष्टि प्रक्रिया का स्पष्ट वर्णन है? उनमें सृष्टि विषयक विशेष क्या-क्या है। इसका प्रतिपादन करने का प्रयास किया गया है।

इस इकाई के अध्ययन से आप सभी पाठकों को वेदांगों में सृष्टि प्रक्रिया के बारे में बोध हो सकेगा, ऐसा मेरा विश्वास है।

8.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप –

6. सृष्टि विज्ञान किसे कहते है, इसे बता सकेगें।
7. वेदांगों का विश्लेषण कर पायेगें।
8. वेदांगों में 'सृष्टि प्रक्रिया' के महत्व को बता सकेगें।
9. प्रमुखता के दृष्टिकोण से वेदांगों में सृष्टि प्रक्रिया के रहस्य को प्रतिपादित कर लेंगे।
10. वेदांगों में प्रतिपादित सृष्टि विषयक सिद्धान्तों का प्रतिपादन कर सकेगें।

8.3 वेदाङ्ग परिचय

सृष्टि की उत्पत्ति का सिद्धान्त अतीव प्राचीन काल से ही महान अतीत के गर्भ में व्यवस्थित है। इसकी उत्पत्ति काल से ही गवेषकों ने इसके रहस्य को जानने के लिए अनेक अथक प्रयास किए कितने ही सिद्धान्त बनें परन्तु कालक्रम से वे सभी स्थूल होते गए तथा अनेक परवर्ति अन्वेषकों नें पूर्ववर्त्ति सिद्धान्तों को खण्डित कर नवीन सिद्धान्तों की स्थापना की परन्तु अब तक कोई भी ऐसा सर्वमान्य सृष्टि विषयक सिद्धान्त स्थापित नहीं हो सका जिस पर सर्वसम्मति या मतैक्य हो। सभी वैज्ञानिक एवं चिन्तक अपनी-अपनी परम्परा एवं मेधा से आज भी इसके अन्वेषण में संलग्न है।

वैदिक साहित्य में वेदाङ्ग बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। वेदों को समझने के लिए जो शास्त्र आवश्यक होते हैं, उन को वेदाङ्ग कहते हैं। वेद + अंग मिलकर वेदाङ्ग शब्द बना है। वेद से आप सभी पूर्व में ही परिचित होगें। अंग के लिए कहा गया है कि 'अङ्ग्यन्ते ज्ञायन्ते एभिरिति अङ्गानि' अर्थात् जिनके द्वारा किसी वस्तु की जानकारी

मिलती है, उसका स्वरूप पहचानने में सहायता मिलती है उन्हे ‘अंग’ कहते हैं। इस प्रकार वेदस्य अंग: ‘वेदांग:’ कथ्यते। अर्थात् वेद के अंग को ‘वेदांग’ कहते हैं। वे वेदाङ्ग हैं -

शिक्षा व्याकरणं छन्दो निरुक्तं ज्योतिषं तथा।
कल्पश्चेति षडङ्गानि वेदस्याहुर्मनीषिणः॥

वेदांगों के नाम है – 1. शिक्षा 2. कल्प 3. व्याकरण 4. निरूक्त, 5. छन्द और 6. ज्योतिष।

आचार्यों द्वारा वेद रूपी पुरुष के शारीरिक अंग बतलायें गये हैं –

छन्दः पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते।
ज्योतिषामयनं चक्षुर्निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते॥
शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम्।
तस्मात् साङ्गमधीत्यैव ब्रह्मलोके महीयते॥

वेदपुरूष का पैर – छन्द
वेदपुरूष का हाथ – कल्प
वेदपुरूष का नेत्र – ज्योतिष
वेदपुरूष का कान – निरुक्त
वेदपुरूष की नासिका – शिक्षा
वेदपुरूष का मुख – व्याकरण

1. शिक्षा -

यह उच्चारण का विज्ञान है, जो स्वर-व्यंजन के उच्चारण का विधान करता है। इसका विस्तार प्रातिशाख्य ग्रन्थों में मिलता है। वेदों की पृथक् –पृथक् शाखाओं का उच्चारण बतलाने के कारण इसे प्रातिशाख्य कहा जाता है। शिक्षा को वेदांग की नासिका कहा गया है। स्वर, व्यंजन आदि वर्णों के उच्चारण के विषय में शिक्षा ग्रन्थों में उपदेश मिलता है। प्राचीन शिक्षाग्रन्थ प्रातिशाख्यरूप में उपलब्ध हैं।

ऋग्वेद – ऋक्प्रातिशाख्य – शौनक रचित ग्रन्थ
यजुर्वेद –वाजसनेयिप्रातिशाख्य, तैत्तिरीयप्रातिशाख्य
अथर्ववेद – अथर्ववेद प्रातिशाख्य
सामवेद – पुष्पसूत्र प्रातिशाख्य

इनके अलावा पाणिनीय शिक्षा, भारद्वाजशिक्षा, याज्ञवल्क्य शिक्षा, मांडव्य शिक्षा, वाशिष्ठी शिक्षा आदि और भी अनेको शिक्षा ग्रन्थ उपलब्ध हैं।

पाणिनीय शिक्षा

महर्षि पाणिनी द्वारा प्रणीत शिक्षा पाणिनीय शिक्षा है। महर्षि पाणिनी व्याकरण के क्षेत्र में बहुप्रसिद्ध हैं। और इनकी पाणिनीय शिक्षा भी बहुप्रचलित है।

2. कल्प -

यह मुख्यत: वैदिक कर्मकाण्ड का प्रतिपादन करने वाला वेदांग है। कल्प (वेदांग) को वेदपुरुष का हस्त या हाथ माना है। कल्प का अर्थ है - कल्पो वेदविहितानां कर्मणाम् अनुपूर्व्येण कल्पनाशास्त्रम्। अर्थात् वेदों के द्वारा विहित कर्मों का भली-भाँति विचार की कल्पना का शास्त्र कल्प कहलाता है। कल्प्यन्ते समर्थ्यन्ते यज्ञयागादिप्रयोगाः यत्र इति कल्पः। अर्थात् यज्ञयागादि क्रियाओं का महत्त्वपूर्ण विवेचन जिन ग्रन्थ में किए जाते हैं उन को कल्प कहते हैं।

कल्पग्रन्थों का स्वरूप

कल्प ग्रन्थ छोटे छोटे सूत्रों में निबद्ध हैं। परन्तु वे छोटे छोटे सूत्रात्मक वाक्य अर्थ की दृष्टि से सारगर्भित हैं। अतः कल्पों को – कल्पसूत्र भी कहते हैं। कल्पसूत्रों को निम्न चार श्रेणियों में विभक्ति किया गया है –

- श्रौतसूत्र
- गृह्यसूत्र
- धर्मसूत्र
- शुल्बसूत्र

3. व्याकरण -

व्याकरण को वेदपुरुष का 'मुख' माना जाता है। व्याकरण शब्द की व्याख्या है - व्याक्रियन्ते व्युत्पाद्यन्ते शब्दाः अनेनेति व्याकरणम्।

अर्थात् जिस शास्त्र से शब्दों का प्रकृति-प्रत्यय के रूप विभाजन करके अर्थज्ञान किया जाता है तथा नवीन शब्दों की व्युत्पत्ति की जाती है उस को व्याकरण कहते हैं।

वोपदेव जी के मतानुसार व्याकरण के आठ संप्रदाय हैं –

इन्द्रश्चन्द्रः काशकृत्स्नापिशली शाकटायनः। पाणिन्यमरजैनेन्द्राः जयन्त्यष्टादि शाब्दिकाः॥

व्याकरणशास्त्र में पाणिनीय व्याकरण अतिप्रसिद्ध है।

4. निरुक्त -

निरुक्त इस वेदांग को वेदपुरुष के कान माना गया है।। निरुक्त का अर्थ है - अर्थावबोधे निरपेक्षतया पदजातं यत्रोक्तं तन्निरुक्तम्। अर्थात् (वैदिक शब्दों के) अर्थ को समझने के लिए निरपेक्ष रीति से जिस ग्रन्थ में समझाया गया है वह निरुक्त है।

व्याकरण केवल शब्दों के मूल अर्थों की व्यत्पत्ति बताता है। परन्तु निरुक्त शब्दों का सन्दर्भ के साथ पारिभाषिक अर्थ की खोज करता है। निरुक्त को व्याकरण का पूरक कहा जाता है।

वर्तमान समय में उपलब्ध निरुक्त -

वस्तुतः दुर्गाचार्य ने अपने दुर्गावृत्ति में १४ निरुक्तकारों का उल्लेख किया है। परन्तु साम्प्रत काल में केवल एक ही निघण्टु उपलब्ध है। इस निघण्टु को लेकर महर्षि यास्क के द्वारा लिखित निरुक्त आज उपलब्ध है। परन्तु दुर्दैव से निघण्टु आज अनुपलब्ध है और उस पर लिखित भाष्य ही आज का निरुक्त है।

5. छन्द

छन्द इस वेदांग को वेदों के पैर कहा जाता है। वेदों का गायन करने के लिए उनको छन्दोबद्ध किया गया है। आप सामान्य भाषा में यह समझ सकते हैं की वेदों के गायन का ताल (ऱ्हिदम) छन्द है।

वैसे तो वैदिक और लौकिक छन्दों में अन्तर है। परन्तु चूँकि हम वेदांगों की बात कर रहे हैं, तो हम केवल वैदिक छन्दों की जानकारी लेंगे।

छन्द का अर्थ

महर्षि कात्यायन के अनुसार छन्द की व्याख्या - यदक्षरपरिमाणकं तच्छन्दः अर्थात् जिस के द्वारा अक्षरों की गणना होती है वह छन्द है।

यानी वैदिक मन्त्रों की एक पंक्ति में समाविष्ट अक्षरों के आधार पर अलग-अलग छन्द बनाए गए हैं। इन छन्दों को अलग अलग ताल में गाया जाता है।

प्रमुख वैदिक छन्द

यूँ तो वेदों में अनेक छन्द हैं तथापि वेदों में प्रमुख सात छन्द हैं –

- गायत्री
- अनुष्टुप्
- पंक्ति
- बृहती
- उष्णिक्
- त्रिष्टुप्
- जगति

छन्द के अंग

छन्द के निम्नलिखित अंग है-

(1)चरण /पद /पाद

(2) वर्ण और मात्रा

(3) संख्या क्रम और गण

(4)लघु और गुरु

(5) गति

(6) यति /विराम

(7) तुक

(1) चरण /पद /पादा

- छंद के प्रायः 4 भाग होते हैं। इनमें से प्रत्येक को 'चरण' कहते हैं।

दूसरे शब्दों में- छंद के चतुर्थाश (चतुर्थ भाग) को चरण कहते हैं।

- कुछ छंदों में चरण तो चार होते है लेकिन वे लिखे दो ही पंक्तियों में जाते हैं, जैसे- दोहा, सोरठा आदि। ऐसे छंद की प्रत्येक को 'दल' कहते हैं।

- हिन्दी में कुछ छंद छः-छः पंक्तियों (दलों) में लिखे जाते हैं। ऐसे छंद दो छंदों के योग से बनते है, जैसे कुण्डलिया (दोहा +रोला), छप्पय (रोला +उल्लाला) आदि।

- चरण 2 प्रकार के होते है- सम चरण और विषम चरण।

प्रथम व तृतीय चरण को विषम चरण तथा द्वितीय व चतुर्थ चरण को सम चरण कहते हैं।

(2) वर्ण और मात्रा

वर्ण/अक्षर

- एक स्वर वाली ध्वनि को वर्ण कहते हैं, चाहे वह स्वर हस्व हो या दीर्घ।

- जिस ध्वनि में स्वर नहीं हो (जैसे हलन्त शब्द राजन् का 'न्', संयुक्ताक्षर का पहला अक्षर- कृष्ण का 'ष्') उसे वर्ण नहीं माना जाता।

- वर्ण को ही अक्षर कहते हैं। 'वर्णिक छंद' में चाहे हस्व वर्ण हो या दीर्घ- वह एक ही वर्ण माना जाता है; जैसे- राम, रामा, रम, रमा इन चारों शब्दों में दो-दो ही वर्ण हैं।

वर्ण 2 प्रकार के होते हैं-

(i)हस्व स्वर वाले वर्ण (हस्व वर्ण): अ, इ, उ, ऋ; क, कि, कु, कृ

(ii)दीर्घ स्वर वाले वर्ण (दीर्घ वर्ण) : आ, ई, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ; का, की, कू, के, कै, को, कौ

मात्रा

किसी वर्ण या ध्वनि के उच्चारण-काल को मात्रा कहते हैं।

दूसरे शब्दों में- किसी वर्ण के उच्चारण में जो अवधि लगती है, उसे मात्रा कहते हैं।

हस्व वर्ण के उच्चारण में जो समय लगता है उसे एक मात्रा तथा दीर्घ वर्ण के उच्चारण में जो समय लगता है उसे दो मात्रा माना जाता है।

मात्रा दो प्रकार के होते है-

हस्व : अ, इ, उ, ऋ

दीर्घ : आ, ई, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ

वर्ण और मात्रा की गणना

वर्ण की गणना

- हस्व स्वर वाले वर्ण (हस्व वर्ण)- एकवर्णिक- अ, इ, उ, ऋ; क, कि, कु, कृ
- दीर्घ स्वर वाले वर्ण (दीर्घ वर्ण)- एकवर्णिक- आ, ई, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ; का, की, कू, के, कै, को, कौ

मात्रा की गणना

- हस्व स्वर- एकमात्रिक- अ, इ, उ, ऋ

दीर्घ स्वर- द्विमात्रिक- आ, ई, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ

- वर्णो और मात्राओं की गिनती में स्थूल भेद यही है कि वर्ण 'सस्वर अक्षर' को और मात्रा 'सिर्फ स्वर' को कहते है।

वर्ण और मात्रा में अंतर- वर्ण में हस्व और दीर्घ रहने पर वर्ण-गणना में कोई अंतर नहीं पड़ता है, किंतु मात्रा-गणना में हस्व-दीर्घ से बहुत अंतर पड़ जाता है। उदाहरण के लिए, 'भरत' और 'भारती' शब्द कोलें। दोनों में तीन वर्ण हैं, किन्तु पहले में तीन मात्राएँ और दूसरे में पाँच मात्राएँ हैं।

(3) संख्या क्रम और गण

वर्णो और मात्राओं की सामान्य गणना को संख्या कहते हैं, किन्तु कहाँ लघुवर्ण हों और कहाँ गुरुवर्ण हों- इसके नियोजन को क्रम कहते है।

छंद-शास्त्र में तीन मात्रिक वर्णो के समुदाय को गण कहते है।

वर्णिक छंद में न केवल वर्णो की संख्या नियत रहती है वरन वर्णो का लघु-गुरु-क्रम भी नियत रहता है।

मात्राओं और वर्णों की 'संख्या' और 'क्रम' की सुविधा के लिए तीन वर्णो का एक-एक गण मान लिया गया है।

इन गणों के अनुसार मात्राओं का क्रम वार्णिक वृतों या छन्दों में होता है, अतः इन्हें 'वार्णिक गण' भी कहते है।

इन गणों की संख्या आठ है। इनके ही उलटफेर से छन्दों की रचना होती है।

6. ज्योतिष

ज्योतिष (वेदांग) शास्त्र को वेदों का नेत्र कहा गया हैं। यथा - ज्योतिषामयनं चक्षुः। तिथि, नक्षत्र, मास, ऋतु, संवत्सर, अयन, गोल आदि का अध्ययन यज्ञ की सफलता के लिए आवश्यक है, जिसका अभ्यास ज्योतिष में किया जाता है। वस्तुत: 'काल ज्ञान' के लिए ज्योतिष शास्त्र का प्रतिपादन किया गया है और इसका अध्ययन आवश्यक है। ज्योतिष शास्त्र के प्रधान तीन स्कन्ध कहे गये हैं – सिद्धान्त, संहिता एवं होरा या फलित। त्रुट्यादि से प्रलयकाल पर्यन्त की गयी कालगणना जिस स्कन्ध में होती है, उसे सिद्धान्त कहते है। समस्त विश्व विषयक विषयों का फलादेश जिसमें हो उसे संहिता और व्यक्ति और समष्टिपरक फलादेश जिस स्कन्ध में हो उसे होरा या फलित ज्योतिष कहते है। सामान्यतया आकाश में स्थित ग्रह-नक्षत्रादि पिण्डों की गति, स्थिति एवं उसके प्रभावादि का निरूपण किया जाता है इस शास्त्र में।

8.3.1 शिक्षा एवं कल्प (वेदांग) में सृष्टि प्रक्रिया -

'याज्ञवल्क्य शिक्षा' में प्रणीत सृष्टि विधान –

पैंगलोपनिषद् जो शुक्ल यजुर्वेदीय उपनिषद है। इसमें कुल चार अध्याय हैं। इसमें ऋषि पैंगल और महर्षि याज्ञवल्क्य के प्रश्नोत्तर के माध्यम से परम कैवल्य (ब्रह्म) का रहस्य वर्णित हैं।

प्रथम अध्याय में 'सृष्टि के सृजन' का बड़ा ही वैज्ञानिक और स्पष्ट विवेचन किया गया है। ऋषि याज्ञवल्क्य ने पैंगल ऋषि को बताया कि पूर्व में केवल 'सत' ही था। वही नित्य, मुक्त, अविकारी, सत्य, ज्ञान और आनन्द से पूरित सनातन एकमात्र अद्वैत ब्रह्म है। वह अपने भीतर विलीन सम्पूर्ण जगत् का आविर्भाव करने वाला है। हिरण्यगर्भ में निवास करने वाले उस 'ब्रह्म' ने अपनी विशेष शक्ति से, तमोगुण वाली अहंकार नामक स्थूल शक्ति को प्रकट किया। उसमें जो प्रतिबिम्बित है, वही विराट चैतन्य है। उसी ने पंचतत्त्वों के रूप में अपने आपको प्रकट किया व उनसे अनन्त कोटि ब्रह्माण्डों और लोकों की सृष्टि की। पंचभूतों के रजोगुणयुक्त अंश से चार भाग करके तीन भागों से पांच प्रकार के 'प्राणों' का सृजन किया और चौथे अंश से 'कर्मोन्द्रियां' बनायीं। इसी प्रकार पंचभूतों के सतोगुण युक्त अंश को चार भागों में विभाजित करके उसके तीन भागों से पंचवृत्यात्मक' अन्त:करण' बनाये औ चौथे अंश से 'ज्ञानेन्द्रियों' का सृजन किया है। उसने अपनी सत्त्व समष्टि से पांचों इन्द्रियों के पालक देवताओं का निर्माण किया और उन्हें ब्रह्माण्डों में स्थापित कर दिया। ब्रह्माण्ड में स्थित देवगण उस ब्रह्म की इच्छा के बिना स्पन्दनहीन ही बने रहे। तब उस ब्रह्म ने उन्हें चैतन्य किया। वह स्वयं ब्रह्माण्ड, ब्रह्मरन्ध्र और समस्त व्यष्टि के मस्तक को विदीर्ण करके उसी में प्रवेश कर गया। उनके चैतन्य होते ही सभी कर्म में प्रवृत्त हो गये। यह चेतना-शक्ति ही 'आत्म-शक्ति' कहलाई। इसे ही 'जीव' कहा गया।

द्वितीय अध्याय में पैंगल ऋषि ने पूछा-'समस्त लोकों की सृष्टि, उनका पालन और अन्त करने वाला ईश्वर किस प्रकार जीव-भाव को प्राप्त होता है?'

याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया-'स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीर का निर्माण पंचीकृत पंच महाभूतों-पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश द्वारा किया गया है। पृथ्वी से कपाल, चर्म, अस्थि, मांस और नाख़ून आदि बने, जल से रक्त, मूत्र, लार, पसीना आदि बना, अग्नि से भूख-प्यास, उष्णता, मोह, मैथुन आदि बने, वायु से चलना (गति) उठना-बैठना, श्वास आदि बने और आकाश से काम, क्रोध आदि बने। सबके समुच्चय का स्थूल रूप 'शरीर' है।'

ऋषि ने आगे बताया कि अपंजीकृत महाभूतों के रजोगुण अंश से तीन भागों में 'प्राण' का सृजन किया गया। प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान- ये पांच 'प्राण' हैं। नाग, कूर्म, कृकर, देवदत्त और धनंजय- पांच 'उपप्राण' हैं। हृदय, आसन(मूलाधार), नाभि, कण्ठ और सर्वांग उस प्राण के स्थान हैं। आकाश आदि पंचमहाभूतों के रजोगुण युक्त अंश के चौथे भाग से कर्मेन्द्रियों का निर्माण किया। इसके सत्व अंश के चौथे भाग से पांच ज्ञानेन्द्रियों का निर्माण किया।

दिशाएं, वायु, सूर्य, वरुण, अश्विनीकुमार, अग्नि, इन्द्र, उपेन्द्र, यम, चन्द्र, विष्णु, ब्रह्मा और शिव आदि सभी देवगण इन इन्द्रियों के स्वामी हैं।

इसके उपरान्त 'अन्नमय, 'प्राणमय,' 'मनोमय,' 'विज्ञानमय' और 'आनन्दमय' ये पांच कोश हैं। ईश्वर शरीर में स्थित होकर इन्हीं समस्त इन्द्रियों, कोशों और प्राणतत्त्व के द्वारा जीव का पालन करता है। मृत्यु के उपरान्त ये सभी क्रियाएं नष्ट हो जाती हैं और जीव उसी परमात्मा का अंश बनकर पुन: परमात्मा की दिव्य ज्योति में समाहित हो जाता है।

तृतीय अध्याय में पैंगल ऋषि ने महावाक्यों का विवरण समझाने के लिए कहा, तो याज्ञवल्क्य ने कहा कि 'वह तुम हो' (तत्त्वमसि)', 'तुम वह हो' (त्वं तदसि), 'तुम ब्रह्म हो' (तवं ब्रह्मासि), 'मैं ब्रह्म हूं' (अहं ब्रह्मास्मि) ये महावाक्य हैं। 'तत्वमसि'- से सर्वज्ञ, मायावी, सच्चिदानन्द, जगत् योनि अर्थात् मूल कारण अव्यक्त ईश्वर का बोध होता है।

'तत्त्वमसि' और 'अहं ब्रह्मास्मि' के अर्थ पर विचार करना श्रवण कहलाता है। श्रवण किये अर्थ का एकान्त में अनुसन्धान मनन कहलाता है। दोनों के द्वारा एकाग्रतापूर्वक चित्त का स्थापन निदिध्यासन कहलाता है। जब चित्तवृत्ति केवल ध्येय में स्थिर हो जाये, तब वह अवस्था समाधि कहलाती है। 'ब्रह्म' का साक्षात्कार होते ही योगी जीवन्मुक्त हो जाता है।

चतुर्थ अध्याय में 'ज्ञानियों के कर्मों' के विषय में प्रश्न किया गया है। उसके उत्तर में ऋषि याज्ञवल्क्य कहते हैं कि 'इन्द्रिय' और 'मन' से युक्त होकर ही यह 'आत्मा' भोक्ता बन जाता है। इसके बाद हृदय में साक्षात नारायण प्रतिष्ठित होते हैं। यह शरीर नाशवान है। इसका मोह व्यर्थ है। अत: जब तक इस शरीर के साथ सांसारिक उपाधियां जुड़ी हैं, तब तक ज्ञानी व्यक्ति को गुरु की सेवा करनी चाहिए। ज्ञानामृत से तृप्त योगी के लिए कोई कर्तव्य शेष नहीं रह जाता। यदि कोई कर्तव्य शेष है, तो वह तत्त्वविद् नहीं है। जब ज्ञान के द्वारा देह में स्थित अभिमान नष्ट हो जाता है और बुद्धि अखण्ड सृष्टि में लीन हो जाती है, तब ज्ञानी पुरुष 'ब्रह्मज्ञान-रूपी' अग्नि से समस्त कर्म-बन्धनों को भस्म कर देता है। ज्ञानी कहीं भी और कैसे भी मृत्यु को प्राप्त करे, वह हर स्थिति में 'ब्रह्म' में लय हो जाता है। मैं ब्रह्म हूं (अहम् ब्रह्माऽस्मि) यही भाव महात्मा पुरुषों के मोक्ष का आधार है। बन्धन और मोक्ष के कारण-रूप, ये दो पद हैं। 'यह मेरा है,' 'बन्धन' है और 'यह मेरा नहीं है', 'मोक्ष' है। जब द्वैत भाव समाप्त हो जाता है, तभी परमपद प्राप्त होता है। जो यह नहीं जानता, उसकी मुक्ति आकाश में मुष्टिप्रहार के समान है। जो इस उपनिषद का पाठ करता है, वह अग्नि, वायु, आदित्य, ब्रह्म, विष्णु और रुद्र के समान पवित्र होता है। उसे दस सहस्त्र 'प्रणव' (ओंकार) नाम के जप का फल प्राप्त होता हैं। ज्ञानी जन विश्वव्यापी भगवान विष्णु के परमपद के द्युलोक में व्याप्त दिव्य प्रकाश की भांति देखते हैं- तद्विष्णों: परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरय:।दिवीब चक्षुराततम्।

इस प्रकार ब्रह्मनिष्ठ जीवन-यापन करने वाले ज्ञानी पुरुष प्रमादादि से रहित होकर सदैव श्रेष्ठ कर्म करने वाले विष्णु के परमपद को प्राप्त करते हैं। इस उपनिषद का यही सार तत्त्व है।

कल्प (वेदांग) में सृष्टि प्रक्रिया –

नासदीय सूक्त ऋग्वेद के 10 वें मंडल का 129 वां सूक्त है। इसका सम्बन्ध ब्रह्माण्ड विज्ञान और ब्रह्मांड की उत्पत्ति के साथ है। माना जाता है की यह सूक्त ब्रह्माण्ड के निर्माण के बारे में अत्यधिक प्रामाणिक है। इसी कारण से यह सुप्रसिद्ध है। नासदीय सूक्त के रचयिता ऋषि प्रजापति परमेष्ठी हैं। इस सूक्त के देवता भाववृत्त है। यह सूक्त मुख्य रूप से इस तथ्य पर आधारित है कि ब्रह्मांड की रचना कैसे हुई होगी।

नासदासीन्नो सदासात्तदानीं नासीद्रजो नोव्योमा परोयत्।
किमावरीवः कुहकस्य शर्मन्नंभः किमासीद् गहनंगभीरम्॥

अन्वय- तदानीम् असत् न आसीत् सत् नो आसीत्; रजः न आसीत्; व्योम नोयत् परः अवरीवः, कुह कस्य शर्मन् गहनं गभीरम्।

अर्थ- उस समय अर्थात् सृष्टि की उत्पत्ति से पहले प्रलय दशा में असत् अर्थात् अभावात्मक तत्त्व नहीं था। सत्= भाव तत्त्व भी नहीं था, रजः=स्वर्गलोक मृत्युलोक और पाताल लोक नहीं थे, अन्तरिक्ष नहीं था और उससे परे जो कुछ है वह भी नहीं था, वह आवरण करने वाला तत्त्व कहाँ था और किसके संरक्षण में था। उस समय गहन= कठिनाई से प्रवेश करने योग्य गहरा क्या था, अर्थात् वे सब नहीं थे।

न मृत्युरासीदमृतं न तर्हि न रात्र्या अह्न आसीत्प्रकेतः।
अनीद वातं स्वधया तदेकं तस्मादधान्यन्न पर किं च नास॥

अन्वय- तर्हि मृत्युः नासीत् न अमृतम्, रात्र्याः अह्नः प्रकेतः नासीत् तत् अनीत अवातम, स्वधया एकम् ह तस्मात् अन्यत् किञ्चन न आस न परः।

अर्थ– उस प्रलय कालिक समय में मृत्यु नहीं थी और अमृत = मृत्यु का अभाव भी नहीं था। रात्री और दिन का ज्ञान भी नहीं था उस समय वह ब्रह्म तत्व ही केवल प्राण युक्त, क्रिया से शून्य और माया के साथ जुड़ा हुआ एक रूप में विद्यमान था, उस माया सहित ब्रह्म से कुछ भी नहीं था और उस से परे भी कुछ नहीं था।

तम आसीत्तमसा गूढमग्रेऽप्रकेतं सलिलं सर्वमा इदं।
तुच्छयेनाभ्वपिहितं यदासीत्तपसस्तन्महिना जायतैकं॥

अन्वय- अग्रे तमसा गूढम् तमः आसीत्, अप्रकेतम् इदम् सर्वम् सलिलम्, आःयत्आभु तुच्छेन अपिहितम आसीत् तत् एकम् तपस महिना अजायत।

अर्थ- सृष्टि के उत्पन्न होने से पहले अर्थात् प्रलय अवस्था में यह जगत् अन्धकार से आच्छादित था और यह जगत् तमस रूप मूल कारण में विद्यमान था, आज्ञायमान यह सम्पूर्ण जगत् सलिल=जल रूप में था। अर्थात् उस समय कार्य और कारण दोंनों मिले हुए थे यह जगत् है वह व्यापक एवं निम्न स्तरीय अभाव रूप अज्ञान से आच्छादित था इसीलिए कारण के साथ कार्य एकरूप होकर यह जगत् ईश्वर के संकल्प और तप की महिमा से उत्पन्न हुआ।

कामस्तदग्रे समवर्तताधि मनसो रेतः प्रथमं यदासीत्।
सतो बन्धुमसति निरविन्दन्हदि प्रतीष्या कवयो मनीषा॥

अन्वय- अग्रे तत् कामः समवर्तत;यत्मनसःअधिप्रथमं रेतःआसीत्, सतः बन्धुं कवयःमनीषाहृदि प्रतीष्या असति निरविन्दन

अर्थ- सृष्टि की उत्पत्ति होने के समय सब से पहले काम=अर्थात् सृष्टि रचना करने की इच्छा शक्ति उत्पन्न हुयी, जो परमेश्वर के मन मे सबसे पहला बीज रूप कारण हुआ; भौतिक रूप से विद्यमान जगत् के बन्धन-कामरूप कारण को क्रान्तदर्शी ऋषियो ने अपने ज्ञान द्वारा भाव से विलक्षण अभाव मे खोज डाला।

तिरश्चीनो विततो रश्मिरेषामधः स्विदासी3दुपरि स्विदासी3त्।

रेतोधा आसन्महिमान आसन्त्स्वधा अवस्तात्प्रयतिः परस्तात् ॥

अन्वय- एषाम् रश्मिःविततः तिरश्चीन अधःस्वित् आसीत्, उपरिस्वित् आसीत्रेतोधाः आसन् महिमानःआसन् स्वधाअवस्तात प्रयति पुरस्तात्।

अर्थ- पूर्वोक्त मन्त्रों में नासदासीत् कामस्तदग्रे मनसारेतः में अविद्या, काम-सङ्कल्प और सृष्टि बीज-कारण को सूर्य-किरणों के समान बहुत व्यापकता उनमें विद्यमान थी। यह सबसे पहले तिरछा था या मध्य में या अन्त में? क्या वह तत्त्व नीचे विद्यमान था या ऊपर विद्यमान था? वह सर्वत्र समान भाव से भाव उत्पन्न था इस प्रकार इस उत्पन्न जगत् में कुछ पदार्थ बीज रूप कर्म को धारण करने वाले जीव रूप में थे और कुछ तत्त्व आकाशादि महान् रूप में प्रकृति रूप थे; स्वधा=भोग्य पदार्थ निम्नस्तर के होते हैं और भोक्ता पदार्थ उत्कृष्टता से परिपूर्ण होते हैं।

को आद्धा वेद क इह प्र वोचत्कुत आजाता कुत इयं विसृष्टिः।

अर्वाग्देवा अस्य विसर्जनेनाथा को वेद यत आबभूव॥

अन्वय- कः अद्धा वेद कः इह प्रवोचत् इयं विसृष्टिः कुतः कुतः आजाता, देवा अस्य विसर्जन अर्वाक् अथ कः वेद यतः आ बभूव।

अर्थ- कौन इस बात को वास्तविक रूप से जानता है और कौन इस लोक में सृष्टि के उत्पन्न होने के विवरण को बता सकता है कि यह विविध प्रकार की सृष्टि किस उपादान कारण से और किस निमित्त कारण से सब ओर से उत्पन्न हुयी। देवता भी इस विविध प्रकार की सृष्टि उत्पन्न होने से बाद के हैं अतः ये देवगण भी अपने से पहले की बात के विषय में नहीं बता सकते इसलिए कौन मनुष्य जानता है जिस कारण यह सारा संसार उत्पन्न हुआ।

इयं विसृष्टिर्यत आबभूव यदि वा दधे यदि वा न।

यो अस्याध्यक्षः परमे व्योमन्त्सो अङ्ग वेद यदि वा न वेद॥

अन्वय- इयं विसृष्टिः यतः आबभूव यदि वा दधे यदि वा न। अस्य यः अध्यक्ष परमे व्यामन् अंग सा वेद यदि न वेद।

अर्थ- यह विविध प्रकार की सृष्टि जिस प्रकार के उपादान और निमित्त कारण से उत्पन्न हुई इस का मुख्या कारण है ईश्वर के द्वारा इसे धारण करना। इसके अतिरिक्त अन्य कोई धारण नहीं कर सकता। इस सृष्टि का जो

स्वामी ईश्वर है, अपने प्रकाश या आनंद स्वरूप में प्रतिष्ठित है। हे प्रिय श्रोताओं ! वह आनंद स्वरूप परमात्मा ही इस विषय को जानता है उस के अतिरिक्त (इस सृष्टि उत्पत्ति तत्व को) कोई नहीं जानता है।

8.3.2 व्याकरण एवं निरूक्त शास्त्र में प्रतिपादित सृष्टि प्रक्रिया –

व्याकरण शास्त्र के प्रमुख ग्रन्थ 'वाक्यपदीयम्' में लिखा है कि –

अनादिनिधनं ब्रह्म शब्दतवायदक्षरम्।

विवर्तते अर्थभावेन प्रक्रिया जगतोयतः॥

अर्थात् शब्द रूपी ब्रह्म अनादि, विनाश रहित और अक्षर (नष्ट न होने वाला) है तथा उसकी विवर्त प्रक्रिया से ही यह जगत भासित होता है। वस्तुत: व्याकरण शास्त्र में मुख्य रूप से 'शब्द' को ही प्रधान माना है और शब्द से ही सृष्टि प्रक्रिया होने की बात कही गयी है। 'अक्षरं परं ब्रह्म', 'शब्दैव ब्रह्म' आदि सूक्तियाँ भी शब्द और अक्षर को परब्रह्म मानकर उससे ही समस्त जगत् की उत्पत्ति की बात को बतलाया है। इसके अतिरिक्त व्याकरण में 'स्फोटवाद' प्रक्रिया की बात भी की गयी है।

निरूक्त में सृष्टि प्रक्रिया –

निरूक्त के रचयिता यास्क थे। उन्होंने वेद को ब्रह्म की संज्ञा दी है और उसे इतिहास ऋचाओं और गाथाओं का समुच्चय माना है। यास्क को शाकटायन का उत्तराधिकारी माना जाता है, जो वेदों के व्याख्यानकर्ता थे ; उनका उल्लेख यास्क की रचनाओं में मिलता है। निरुक्त में यह समझाने का प्रयास किया गया है कि कुछ विशेष शब्दों को उनका अर्थ कैसे मिला विशेषकर वेदों में दिये गये शब्दों को। ये धातुओं , प्रत्ययों व असामान्य शब्द संग्रहों से शब्दों को बनाने के नियम तन्त्र से युक्त है।

वर्णागमो वर्णविपर्ययश्च द्वौ चापरौ वर्णविकारनाशौ |

धातोस्तथार्थतिशयेन योगस्तदुच्यते पञ्चविधं निरुक्तम्॥

निरुक्त के तीन काण्ड हैं- नैघण्टुक, नैगम और दैवत। इसमें परिशिष्ट सहित कुल चौदह अध्याय हैं। यास्क ने शब्दों को धातुज माना है और धातुओं से व्युत्पत्ति करके उनका अर्थ निकाला है।

यास्क ने शब्दों के चार वर्गों (पदचतुष्टय) का वर्णन किया है:

(१) नाम = संज्ञा या मूल रूप।

(२) आख्यात = क्रिया

(३) उपसर्ग

(४) निपात

यास्क ने सत्व विद्या से सम्बंधित दो वर्गों को एक किया :

- क्रिया या कार्य (भावः) ,
- तत्त्व या जीव (सत्वः)।

इसके बाद सर्वप्रथम इन्होंने क्रिया का वर्णन किया जिसमें भावः (क्रिया) प्रबल होता है जबकि दूसरी ओर सत्वः (वस्तु) प्रबल होता है।

निरूक्तकार ने इसी कार्य (भाव) और जीव (सत्व) के आधार पर सृष्टि की रचना की बात करते हैं। इसके अतिरिक्त कुछ और विशेष नहीं मिलता है निरूक्त में।

8.4 छन्द शास्त्र में सृष्टि प्रक्रिया

वर्णो या मात्राओं के नियमित संख्या के विन्यास से यदि आहाद पैदा हो, तो उसे छंद कहते है।

दूसरे शब्दो में-अक्षरों की संख्या एवं क्रम, मात्रा गणना तथा यति-गति से सम्बद्ध विशिष्ट नियमों से नियोजित पद्यरचना 'छन्द' कहलाती है।

महर्षि पाणिनी के अनुसार जो आह्लादित करे, प्रसन्न करे, वह छंद है (चन्दति हृष्यति येन दीप्यते वा तच्छन्द)। उनके विचार से छंद 'चदि' धातु से निकला है। यास्क ने निरुक्त में 'छन्द' की व्युत्पत्ति 'छदि' धातु से मानी है जिसका अर्थ है 'संवरण या आच्छादन' (छन्दांसि छादनात्)।

इन दोनों अतिप्राचीन परिभाषाओं से स्पष्ट हो जाता है कि छंदोबद्ध रचना केवल आह्लादकारिणी ही नहीं होती, वरन् वह चिरस्थायिनी भी होती है। जो रचना छंद में बँधी नहीं है उसे हम याद नहीं रख पाते और जिसे याद नहीं रख पाते, उसका नष्ट हो जाना स्वाभाविक ही है। इन परिभाषाओं के अतिरिक्त सुगमता के लिए यह समझ लेना चाहिए कि जो पदरचना अक्षर, अक्षरों की गणना, क्रम, मात्रा, मात्रा की गणना, यति-गति आदि नियमों से नियोजित हो, वह छंदोबद्ध कहलाती है।

छंद शब्द 'छद्' धातु से बना है जिसका अर्थ है 'आह्लादित करना', 'खुश करना।' 'छंद का दूसरा नाम पिंगल भी है। इसका कारण यह है कि छंद-शास्त्र के आदि प्रणेता पिंगल नाम के ऋषि थे।

'छन्द' की प्रथम चर्चा ऋग्वेद में हुई है। यदि गद्य का नियामक व्याकरण है, तो कविता का छन्दशास्त्र। छन्द पद्य की रचना का मानक है और इसी के अनुसार पद्य की सृष्टि होती है। पद्यरचना का समुचित ज्ञान 'छन्दशास्त्र' का अध्ययन किये बिना नहीं होता। छन्द हृदय की सौन्दर्यभावना जागरित करते है। छन्दोबद्ध कथन में एक विचित्र प्रकार का आह्लाद रहता है, जो आप ही जगता है। तुक छन्द का प्राण है- यही हमारी आनन्द-भावना को प्रेरित करती है। गद्य में शुष्कता रहती है और छन्द में भाव की तरलता। यही कारण है कि गद्य की अपेक्षा छन्दोबद्ध पद्य हमें अधिक भाता है।

सौन्दर्यचेतना के अतिरिक्त छन्द का प्रभाव स्थायी होता है। इसमें वह शक्ति है, जो गद्य में नहीं होती। छन्दोबद्ध रचना का हृदय पर सीधा प्रभाव पड़ता है। गद्य की बातें हवा में उड़ जाती है, लेकिन छन्दों में कही गयी कोई बात हमारे हृदय पर अमिट छाप छोड़ती है। मानवीय भावों को आकृष्ट करने और झंकृत करने की अदभुत क्षमता छन्दों में होती है। छन्दोबद्ध रचना में स्थायित्व अधिक है। अपनी स्मृति में ऐसी रचनाओं को दीर्घकाल तक सँजोकर रखा जा सकता है। इन्हीं कारणों से हिन्दी के कवियों ने छन्दों को इतनी सहृदयता से अपनाया। अतः छन्द अनावश्यक और निराधार नहीं हैं। इनकी भी अपनी उपयोगिता और महत्ता है।

छन्द सृष्टि के अनुरूप ही पिंगल ने सृष्टि की रचना को माना है। वस्तुत: वह भी ब्रह्म की सत्ता को स्वीकार करते हैं। और यमाताराजभगणा आदि आठ प्रकार के भगणों के अनुरूप सृष्टि का मूल क्रम अनन्त- महत्-अधंकार-आकाश-वायु-अग्नि-जल-पृथ्वी रूप में ही मानते हैं।

8.5 ज्योतिष में सृष्टि सिद्धान्त

अब तक आपने वैदिक साहित्यों में उपलब्ध सृष्टि सिद्धान्त को जाना अब आप ज्योतिष के ग्रन्थों में उपलब्ध सृष्टि सिद्धान्त का ज्ञान प्राप्त करेंगे। ज्योतिष भी वेदांग होने के कारण प्रायः वेद विहित सिद्धान्तों का ही अनुगमन करता है परन्तु अपनी विषयगत वैशिष्ट्य के कारण विषयों का निरूपण यहाँ स्पष्टरूप में प्रत्यक्ष, आगम एवं युक्ति प्रमाण के आधार पर करता है। क्यों कि प्रमाण के सन्दर्भ में आचार्य कमलाकर भट्ट ने स्पष्टतया निर्देश करते हुए लिखा है कि-

प्रत्यक्षागमयुक्तिशालितदिदं शास्त्रं विहायान्यथा।
यत् कुर्वन्ति नराधमास्तु सदसत् वेदोक्ति शून्या भृशम्।।

अतः इन प्रमाण सिद्धान्तों का अनुपालन करते हुए किंचित् विशिष्टता पूर्वक यहाँ विषयों का प्रतिपादन किया गया है। प्रस्तुत प्रसंग में मुख्यतया दो सिद्धान्त ज्योतिषशास्त्र में दिखाई पड़ते हैं। जिनमें पहला सूर्यसिद्धान्त का तथा दूसरा सिद्धान्तशिरोमणि ग्रन्थ का। अब हम यहाँ इन दोनों मतों को अलग-अलग जानेगें।

सूर्यसिद्धान्तीय सृष्टि सिद्धान्त-

भारतीय मान्यता के अनुसार सूर्यसिद्धान्त स्वयं भगवान सूर्य द्वारा उपदिष्ट सिद्धान्त स्कन्ध का एक सुविख्यात, प्रामाणिक एवं अपौरुषेय ग्रन्थ है। इसमें ज्योतिष के समस्त सैद्धान्तिक विषयों का वर्णन विस्तारपूर्वक प्राप्त होता है। इसके अनुसार सृष्टि के आदि काल में इस ब्रह्माण्ड में परमब्रह्म रूपी परमात्मा भगवान वासुदेव की अंशरूपी सत्ता विराजमान थी। सामान्यतया वासुदेव पद से ''वासुदेवस्यापत्यं पुमान् वासुदेवः'' इस व्युत्पत्ति के अनुसार भगवान श्रीकृष्ण का बोध होता है। परन्तु ''वसति विश्वमखिलमस्मिन्नमिति'' अर्थात् जिसमें पुरा विश्व ही निवास करता है या ''विश्वस्मिनखिले वसतीति वासुः'' के अनुसार इस पूरे विश्व में निवास करने वाले परम विश्वप्रकाशक तथा विश्वव्यापक परमब्रह्म का स्वरूप भी सिद्ध होता हैं। यद्यपि श्रीमद्भागवत के ''कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्'' उपदेश वचन के अनुसार श्रीकृष्ण भी परमब्रह्म स्वरूप ही सिद्ध होते हैं। परन्तु साक्षात् द्वापर युग में इनकी प्रत्यक्ष उत्पत्ति होने के कारण समस्त विश्व के कर्त्ता के रूप में इस स्वरूप का उपयोग नहीं करते हुए पूर्वोक्त युक्तिजन्य परमब्रह्मरूपी वासुदेव का ग्रहण ही व्याख्याकार लोग स्वीकार करते हैं। अतः सृष्ट्यारम्भ काल में इस परमब्रह्म सच्चिदानन्द विश्वव्यापक भगवान के अंशरूप प्रधानपुरुष (पुरुषोत्तम) जो अव्यक्त (अतिन्द्रिय होने के कारण सामान्य चक्षुः से न दिखाई देने वाला), निर्गुण (सत्त्व, रज, तमरूपी तीनों गुणों से रहित), शुद्धस्वरूप (सर्वदोष रहित), पच्चीस विकृति आदि से रहित (16 विकृति + 7 प्रकृति की विकृतियाँ + 1 मूल + 1 जीव), अव्यय (जिसका कभी नाश न हो अर्थात् सर्वदा विद्यमान रहने वाला), प्रकृति के अन्तर्गत ही विराजमान रहने वाला, सर्वव्यापी

भगवान संकर्षण (वासुदेव के अंश रूप) ने सर्वप्रथम जल का सृजन कर उस सृजित जल में शक्ति विशेष रूपी वीर्य को निक्षिप्त किया। भगवान संकर्षण द्वारा जल में निक्षिप्त होते ही शक्ति विशेष रूपी वीर्य जल के संयोग से गोलाकार चारों ओर से अन्धकार से ढका हुआ अण्डस्वरूपाकार तेज स्वरूप एक स्वर्णपिण्ड की उत्पत्ति हुई जिसके गर्भ से नित्य सनातन रूप में विद्यमान रहने वाले भगवान अरिरूद्ध साक्षात् प्रकट हुए –

वासुदेवः परब्रह्म तन्मूर्त्तिः पुरुषः परः।
अव्यक्तो निर्गुणः शान्तः पंचविंशात्परोऽव्ययः।
प्रकृत्यन्तर्गतो देवो बहिरन्तश्च सर्वगः।
संकर्षणोऽपः सृष्ट्वादौ तासु वीर्यमवासृजत्।।
तदण्डमभवद् हैमं सर्वत्र तमसा वृत्तम्।
तत्रानिरूद्धः प्रथमं व्यक्तीभूतः सनातनः।

इस प्रकार आपने जाना कि वासुदेवांश संकर्षण के द्वारा वीर्य एवं जल के संयोग से भगवान अनिरूद्ध प्रकट हुए। इन्हीं को वेदों में भगवान हिरण्यगर्भ के नाम से पढ़ा गया है। आदिभूतत्वात् (सर्वप्रथम उत्पन्न होने के कारण) आदित्य एवं जगत् की उत्वत्ति करने के कारण इन्हें ही सूर्य भी कहा गया है (प्रसूत्या सूर्य उच्यते)। यथा-

हिरण्यगर्भो भगवानेषच्छन्दसि पठ्यते।
आदित्यो ह्यादिभूतत्वात् प्रसूत्या सूर्य उच्यते।।

आप सबको यह स्पष्ट हो गया होगा कि स्वर्णाण्ड से उद्भूत भगवान अनिरूद्ध का नाम ही हिरण्यगर्भ, आदित्य एवं सूर्य भी है। यह सूर्य समस्त लोक से अन्धकार का नाशक एवं स्वयं प्रकाश स्वरूप है यही भूतभावन अर्थात् सकल चराचरों की उत्पत्ति, स्थिति एवं विनाश का कारक है। वेद, पुराण तथा दर्शन शास्त्रों में इसे ही महान् शब्द से सम्बोधित किया गया है। वेदों में ऋग्वेद इसका मण्डल, सामवेद रश्मियाँ तथा यजुर्वेद स्वरूप है इस प्रकार वेदत्रयात्मक यह भगवान सूर्य, काल का ज्ञान कराते हुए काल की आत्मा एवं काल का कारण भी है। यह ब्रह्माण्डरूपी रथ में विराजमान होकर संवत्सररूपी बारह मासात्मक चक्र (पहिया) की सहायता से गायत्र्यादि छन्दरूपी सात घोड़ों पर सवार होकर पूरे विश्व का भ्रमण करता हुआ तीनों लोकों को प्रकाशित कर काल का बोध कराता है। सूर्यसिद्धान्त के अनुसार सूर्य ही परमब्रह्म रूप में सर्वदा विद्यमान रहता है। इसी वेद अंशरूप संकर्षण से अनिरूद्धादि की उत्पत्ति सूचित है। यह जगत् की उत्पत्ति में समर्थ है तथा समग्र विश्व इसी में प्रतिष्ठित है।

सृष्टिक्रम में सर्वप्रथम भगवान अनिरूद्ध नें विश्वसृष्टि के निमित्त सर्वशक्ति सम्पन्न अहंकारतत्त्वरूप ब्रह्मा को उत्पन्न किया तथा इस स्वोत्पादित ब्रह्मा को विश्वोत्पादन पद्धति के रूप में वेदों का वरदान देते हुए पूर्वोक्त स्वर्णाण्ड के गर्भ में प्रतिष्ठापित कर यह आदेश दिया कि ''अत्रस्थेन त्वया विश्वानि स्रष्टव्यानि'' यहीं स्थित होकर तुम जगत् की सृष्टि करो तथा स्वयं विश्व को प्रकाशित करते हुए भ्रमण में संलग्न हो गये। यथा-

तस्मै वेदान् वरान् दत्त्वा सर्वलोकपितामहम्।
प्रतिष्ठाप्याण्डमध्येऽथ स्वयं पर्येति भावयन्।।

इस प्रकार आपने पढ़ा कि अनिरूद्ध ने ब्रह्मा की उत्पत्ति कर उनको सृष्टि का अधिकार प्रदान किया। सृष्टि का अधिकार प्राप्त करने के बाद अहंकारमूर्त्ति ब्रह्मा के मन में सृष्टि की ईच्छा जागृत हुई और इसी क्रम में ब्रह्मा के मन से सर्वप्रथम चन्द्रमा का तथा दोनों नेत्रों से तेजरूपी सूर्य का प्रादुर्भाव हुआ। इसीलिए वेदों में भी ''चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत'' यह उक्ति निरूपित है। पुनः इस सृष्टि प्रक्रिया के अन्तर्गत ब्रह्मा के मन से आकाश, आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल, तथा जल से पृथिवी के द्वारा एक-एक गुणों की वृद्धि से इन पंचमहाभूतों की उत्पत्ति हुई। पुनः इन पंचमहाभूतों के द्वारा अग्नि तत्त्व से भौम (मंगल), पृथ्वी तत्त्व से बुध, आकाश तत्त्व से बृहस्पति, जल तत्त्व से शुक्र एवं वायु तत्त्व से शनि की उत्पत्ति होकर ग्रहमण्डल की रचना हुई। सूर्यसिद्धान्त में इसका निम्न प्रकार से प्रतिपादन किया गया है-

अथ सृष्ट्यां मनश्चक्रे ब्रह्माऽहंकारमूर्त्तिभृत्।
मनसश्चन्द्रमा जज्ञे सूर्योऽक्षणोस्तेजसां निधिः।।

मनसः खं ततो वायुरग्निरापो धराक्रमात्।
गुणैकवृद्ध्या पंचेति महाभूतानि जज्ञिरे।।
अग्नीषोमौ भानुचन्द्रौ ततस्त्वंगारकादयः।
तेजोभूखाम्बूवातेभ्यः क्रमशः पंच जज्ञिरे।।

सूर्यादि सात ग्रहों की सृष्टि के अनन्तर वशी ब्रह्मा ने ब्रह्माण्डगोलरूपी स्वयं को बारह समान भागों में विभक्त कर मेषादि राशियों के रूप में तथा पुनः सत्ताईस समान भागों में विभक्त कर अश्विन्यादि नक्षत्रों के रूप में प्रातिष्ठापित किया। इस प्रकार ब्रह्माण्ड के द्वादशांश रूपी राशि एवं सप्तविशांश रूपी नक्षत्र स्थित हुए।

ग्रह-नक्षत्र-राशियों की सृष्टि करने के बाद स्रष्टा ब्रह्मा ने उत्तम-मध्यम-अधम रूपों में गुणों के नियमानुसार सत्त्व-रज-तम के भेद से देव, मनुष्य, दानव, पशु, पक्षी, कीट, पतंगादि सहित सकल चराचरों की रचना की। इसमें सतोगुण प्रधान देवता, रजोगुण प्रधान मनुष्य एवं तमोगुण प्रधान राक्षसों की सृष्टि सम्पन्न हुई।

पुनर्द्वादशधाऽऽत्मानं व्यभजद् राशिसंज्ञकम्।
नक्षत्ररूपिणं भूयः सप्तविंशात्मकं वशी।।
ततश्चराचरं विश्वं निर्ममे देवपूर्वकम्।
उर्ध्वमध्याधरेभ्योऽथ स्रोतेभ्यः प्रकृतिः सृजन्।।

सूर्यसिद्धान्तीय सृष्टिक्रम

सिद्धान्त शिरोमणि के अनुसार सृष्टि सिद्धान्त-

अब तक आपने वेदादि एवं ज्योतिषशास्त्र के अन्तर्गत सूर्यसिद्धान्तीय मतानुसार सृष्टि के सिद्धान्त को समझा। अब आप ज्योतिष के सिद्धान्त ग्रन्थों में अग्रगण्य भास्कराचार्य विरचित सिद्धान्त शिरोमणि के अनुसार सृष्टि सिद्धान्त को समझेगें।

सिद्धान्तशिरोमणि ग्रन्थ में आचार्य भास्कर नें सूर्यसिद्धान्त से किंचित् भिन्न सांख्यदर्शन के अनुरूप सृष्टि सिद्धान्त का वर्णन किया है। जैसा कि हम सब जानते है कि सांख्य दर्शन में प्रकृति की गुणसाम्यता प्रधान अव्यक्त रूप में सृष्टि का कारण होती है। अतः यहाँ प्रकृति-पुरुष में क्षोभ उत्पन्न होने पर इन दोनों के द्वारा बुद्धि तत्त्व अर्थात् महत्तत्त्व की उत्पत्ति हुई तथा पुनः बुद्धि तत्त्व (महत्) से अहंकार तत्त्व की उत्पत्ति हुई। इसका वर्णन विष्णुपुराण में भी प्राप्त होता है। यथा-

वैकारिकस्तैजसश्च भूतादिश्चैव तामसः।

त्रिविधोऽयमहंकारो महत्तत्त्वादजायत्।।

प्रकृति-पुरुष द्वारा उत्पन्न महत् एवं महत् तत्त्व से उत्पन्न अहंकार तत्त्व के द्वारा सूर्यसिद्धान्तोक्तवत् सृष्टि की प्रक्रिया आरम्भ हुई अर्थात् यहाँ भी पूर्व की भांति अहंकार तत्त्व से आकाश तत्त्व, आकाश तत्त्व से वायु तत्त्व, वायु तत्त्व से अग्नि तत्त्व, अग्नि तत्त्व से जल तत्त्व तथा जल तत्त्व से पृथ्वी तत्त्व की उत्पत्ति हुई जिसमें क्रमशः एक-एक की वृद्धि क्रम से गुणाधिक्य प्राप्त होता है अर्थात् आकाश में केवल शब्द गुण प्राप्त होता है। वायु में शब्द और स्पर्श; तेज में शब्द, स्पर्श और रूप; जल में शब्द, स्पर्श, रूप और रस तथा पृथ्वी में शब्द, स्पर्श, रूप, रस एवं गन्ध का गुण प्राप्त होता है। इसमें भी पहले इनकी तन्मात्राएँ एवं इन तन्मात्राओं से भूतों की उत्पत्ति सूचित है अर्थात् उपर लिखे हुए क्रम में अहंकार तत्त्व से शब्द तन्मात्रा तथा शब्द तन्मात्रा से आकाश की उत्पत्ति हुई इसी प्रकार आकाश से स्पर्श तन्मात्रा तथा स्पर्श तन्मात्रा से वायु, वायु से रूप तन्मात्रा एवं इससे तेज, तेज से रस तन्मात्रा एवं इससे जल, जल से गन्ध तन्मात्रा तथा इससे पृथ्वी की उत्पत्ति हुई। क्यों कि यहां तन्मात्राएँ ही विशेष गुण से सम्पन्न होकर भूतों की उत्पत्ति का कारक हैं।

आपने जाना की किस प्रकार इस समग्र ब्रह्माण्ड के कारण रूप पंचमहाभूतों की उत्पत्ति हुई। अब आप इन पंचभूतों की सहायता से ब्रह्माण्ड एवं अन्य ग्रह-नक्षत्रादि पिण्डों के सहित चराचरों की सृष्टि को जानेगें।

पंचमहाभूतों की उत्पत्ति के बाद उनके सम्मिश्रण से गोलाकार ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति हुई तथा इस ब्रह्माण्ड के अन्तर्गत ही ब्रह्माण्ड में स्थित अन्य सभी ग्रह-नक्षत्रादि पिण्डों की उत्पत्ति हुई जिनमें सूर्य अग्नि तत्त्व प्रधान, चन्द्रमा सोम तत्त्व प्रधान, भौम तेज तत्त्व प्रधान, बुध भू तत्त्व प्रधान, बृहस्पति आकाश तत्त्व प्रधान, शुक्र जल तत्त्व प्रधान तथा शनैश्चर वायु तत्त्व प्रधान ग्रहपिण्ड है। पंचभूत निर्मित इस ब्रह्माण्ड में बीचो-बीच (मध्यकेन्द्र) में पंचतत्त्वों की समाहार रूपी भूमि स्थित है तथा इसके उत्तर में सुमेरू विद्यमान है जिस पर देवताओं का निवास होता है। इसी सुमेरू की एक पü कणिका पर विराजमान होकर ब्रह्मा इस भूपृष्ठ पर सकल चराचरों की सृष्टि करते हैं। जैसा कि शिरोमणि में कहा गया है-

यस्मात्क्षुब्धप्रकृतिपुरुषाभ्यां महानस्यगर्भे-

ऽहंकारोभूत्खकशिखिजलोर्व्यस्ततः संहतेश्च।
ब्रह्माण्डं यज्जठरगमहीपृष्ठनिष्ठाद्विरंचे-
विश्वं शश्वज्जयति परमं ब्रह्मतत्तत्त्वमाद्यम्।।

प्रस्तुत प्रसंग में भास्कराचार्य नें वर्णन करते हुए लिखा है कि पंचभूतों से निर्मित यह भूखण्ड क्रमशः चन्द्रमा, बुध, शुक्र, रवि, कुज, बृहस्पति, शनि एवं नक्षत्रों के भ्रमणपथ रूपी कक्षा वृत्तों से आवृत्त होकर इस ब्रह्माण्ड के मध्य में आकर्षण शक्ति नामक परमब्रह्म की धारणात्मिका शक्ति से बिना किसी आधार के ही आकाश में स्थित है तथा इसके (भूपिण्ड के) पृष्ठभाग पर चारों तरफ शाश्वत् रूप में मानव, दानव, वन, उपवन आदि विद्यमान हैं। जिस प्रकार कदम्ब पुष्प की ग्रन्थि के चारों ओर ऊर्ध्वाधः तिर्यक रूप में उसके केसर स्थित होते है ठीक उसी प्रकार इस भूपिण्ड के चतुर्दिक्षु वन, उपवन, पर्वत, ग्राम, नगर आदि विद्यमान होकर इस पृथ्वी को सुशोभित कर रहे हैं।

भूमेः पिण्डः शशांकज्ञकविरविकुजेज्यार्किनक्षत्रकक्षा-
वृत्तैर्वृत्तो वृत्तः सन् मृदनिलसलिलव्योमतेजो मयोऽयम्।
नान्याधारः स्वशक्त्यैव वियति नियतं तिष्ठतीहास्य पृष्ठे
निष्ठं विश्वं च शश्वत्सदुजमनुजादित्यदैत्यं समन्तात्।।
सर्वतः पर्वतारामग्रामचैत्यचयैश्चितः।
कदम्बकुसुमग्रन्थिः केसरप्रसरैरिव।।

बोध प्रश्न – 1

(1) इस ब्रह्माण्ड में कितने सौरमण्डल है?
(क) एक (ख) पाँच (ग) असंख्य (घ) बारह
(2) सृष्टि क्या है?
(क) पृथ्वी (ख) मनुष्य (ग) समस्त चराचरों की संरचना (घ) सूर्य
(3) भारतीय मान्यता के अनुसार समस्त ज्ञान–विज्ञान का स्रोत है।
(क) वेद (ख) पुराण (ग) साहित्य (घ) लोक
(4) भूपृष्ठ पर विद्यमान चराचर सृष्टि के स्रष्टा कौन है?
(क) वायुदेव (ख) परमब्रह्म (ग) ब्रह्मा (घ) विष्णु
(5) ज्योतिष में प्रत्यक्ष, आगम और युक्ति प्रमाण को किसने माना है?
(क) भास्कराचार्य (ख) सूर्य (ग) वराहमिहिर (घ) कमलाकर भट्ट
(6) स्वर्णाण्ड के गर्भ से उत्पन्न पुरुष का क्या नाम था?
(क) वासुदेव (ख) अनिरूद्ध (ग) संकर्षण (घ) ब्रह्मा
(7) काल की आत्मा कौन है?

(क) सूर्य (ख) चन्द्र (ग) ब्रह्म (घ) ब्रह्मा

(8) ब्रह्मा के मन से किस ग्रह की उत्पत्ति हुई?

(क) सूर्य (ख) मंगल (ग) बुध (घ) चन्द्रमा

(9) आकाश तत्त्व युक्त ग्रह है।

(क) सूर्य (ख) मंगल (ग) गुरु (घ) शनि

(10) तमोगुण प्रधान कौन होता है?

(क) राक्षस (ख) मनुष्य (ग) देवता (घ) ब्रह्मा

बोध प्रश्न – 2

(1) महत् तत्त्व से किसकी उत्पत्ति हुई?

(क) अहंकार (ख) जल (ग) आकाश (घ) अग्नि

(2) पृथ्वी तत्त्व की उत्पत्ति किससे हुई?

(क) अग्नि तत्त्व से (ख) वायु तत्त्व से (ग) जल तत्त्व से (घ) आकाश तत्त्व से

(3) अग्नि तत्त्व की कितनी तन्मात्राएँ होती है?

(क) 02 (ख) 03 (ग) 04 (घ) 05

(4) शब्द तन्मात्रा की उत्पत्ति किससे हुई?

(क) महत् (ख) ब्रह्म (ग) अहंकार (घ) आकाश

(5) भू तत्त्व प्रधान ग्रह कौन है?

(क) सूर्य (ख) मंगल (ग) चन्द्रमा (घ) बुध

(6) ब्रह्माण्ड के मध्य में कौन सा पिण्ड स्थित है?

(क) पृथ्वी (ख) सूर्य (ग) चन्द्र (घ) उल्का

(7) ब्रह्माण्ड के अन्दर सूर्य के उपर किस ग्रह की कक्षा है?

(क) शुक्र की (ख) मंगल की (ग) गुरु की (घ) शनि की

(8) प्रकृति–पुरुष के क्षोभ से सर्वप्रथम कौन सा तत्त्व उत्पन्न हुआ?

(क) अहंकार (ख) महत् (ग) वासुदेव (घ) शब्द

8.6 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप जान लेंगे कि सृष्टि की उत्पत्ति का सिद्धान्त अतीव प्राचीन काल से ही महान अतीत के गर्भ में व्यवस्थित है। इसकी उत्पत्ति काल से ही गवेषकों ने इसके रहस्य को जानने के लिए अनेक अथक प्रयास किए कितने ही सिद्धान्त बनें परन्तु कालक्रम से वे सभी स्थूल होते गए तथा अनेक परवर्ति अन्वेषकों नें पूर्ववर्त्ति सिद्धान्तों को खण्डित कर नवीन सिद्धान्तों की स्थापना की परन्तु अब तक कोई भी ऐसा सर्वमान्य सृष्टि विषयक सिद्धान्त स्थापित नहीं हो सका जिस पर सर्वसम्मति या मतैक्य हो। सभी वैज्ञानिक एवं चिन्तक अपनी-अपनी परम्परा एवं मेधा से आज भी इसके अन्वेषण में संलग्न है।

वैदिक साहित्य में वेदाङ्ग बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। वेदों को समझने के लिए जो शास्त्र आवश्यक होते हैं, उन को वेदाङ्ग कहते हैं। वेद + अंग मिलकर वेदाङ्ग शब्द बना है। वेद से आप सभी पूर्व में ही परिचित होगें। अंग के लिए कहा गया है कि 'अङ्ग्यन्ते ज्ञायन्ते एभिरिति अङ्गानि' अर्थात् जिनके द्वारा किसी वस्तु की जानकारी मिलती है, उसका स्वरूप पहचानने में सहायता मिलती है उन्हे 'अंग' कहते हैं। इस प्रकार वेदस्य अंग: 'वेदांग:' कथ्यते। अर्थात् वेद के अंग को 'वेदांग' कहते हैं।

वेदांगों में सृष्टि प्रक्रिया का उल्लेख सर्वाधिक ज्योतिष और कल्प शास्त्र में मिलता है। अन्य वेदांगों में अल्प मात्रा में सृष्टि विषयक विषयों का उल्लेख है।

8.7 बोधात्मक प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्नों के उत्तर – 1

1. ग
2. ग
3. क
4. ग
5. घ
6. ख
7. क
8. घ
9. ग
10. क

बोध प्रश्नों के उत्तर – 2

1. क
2. ग
3. ख
4. ग
5. घ
6. क
7. ख
8. ख

8.8 पारिभाषिक शब्दावली

वेदांग - वेद का अंग

शिक्षा - वेदपुरूष की नासिका

ज्योतिष - वेदपुरूष का चक्षु रूपी अंग

कल्प – वेद का हस्त

छन्द – वेद का पैर

व्याकरण – वेदपुरूष का मुख

8.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

वेदांग ज्योतिष

सूर्यसिद्धान्त

सिद्धान्तशिरोमणि

वाक्यपदीयम्

याज्ञवल्क्यीय शिक्षा

पाणिनी व्याकरण

8.10 सहायक पाठ्यसामग्री

वैदिक साहित्य

वेदांग ज्योतिष

सूर्यसिद्धान्त

वाक्यपदीयम्

सांख्यदर्शन

8.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. वेदांग को परिभाषित करते हुए विस्तृत परिचय दीजिये।
2. वेदांगों में सृष्टि प्रक्रिया का उल्लेख कीजिये।
3. ज्योतिष शास्त्र पर निबन्ध लिखिये।
4. सांख्य दर्शन में प्रतिपादित सृष्टि प्रक्रिया का वर्णन कीजिये।
5. सूर्यसिद्धान्त एवं सिद्धान्तशिरोमणि में प्रतिपादित सृष्टि प्रक्रिया का विश्लेषण कीजिये।

इकाई – 9 स्मृति ग्रन्थों में सृष्टि प्रक्रिया

इकाई की संरचना

9.1 प्रस्तावना

9.2 उद्देश्य

9.3 स्मृति एवं स्मृति ग्रन्थों का परिचय

9.4 स्मृति ग्रन्थों में सृष्टि प्रक्रिया

9.5 सारांश

9.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

9.7 पारिभाषिक शब्दावली

9.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

9.9 सहायक पाठ्यसामग्री

9.10 निबन्धात्मक प्रश्न

9.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई CVC-101 से सम्बन्धित है, जिसका शीर्षक है – स्मृतिग्रन्थों में सृष्टि प्रक्रिया। इससे पूर्व की इकाईयों में आपने पुराणों एवं वेदांगों में सृष्टि प्रक्रिया को समझ लिया है। अब आप सभी स्मृति ग्रन्थों में प्रतिपादित सृष्टि के बारे में अध्ययन करने जा रहे हैं।

स्मृति ग्रन्थ का तात्पर्य उन रचनाओं से है जो प्राय: श्लोकों में है तथा उन्हीं विषयों का प्रतिपादन करती हैं जिनका विवेचन धर्मसूत्रों में किया गया है। स्मृतियों की संख्या के विषय में अनेक मत-मतान्तर अध्ययन से बोध होता हैं। स्मृतियों की संख्या 100 के समकक्ष मानी जाती है किन्तु डॉ. काणे के अुनसार प्रधान रूप से स्मृतियों की संख्या 18 कही गयी है। वीरमित्रोदय ग्रन्थानुसार स्मृतिकारों की संख्या 21 कही गयी है।

सृष्टि से सम्बन्धित विषय सभी स्मृति ग्रन्थों में नहीं मिलता, अपितु कुछेक प्रधान स्मृति ग्रन्थों में ही मिलता है। यथा – मनु स्मृति, विष्णु स्मृति, याज्ञवल्क्य स्मृति आदि। आइए हम सभी उन स्मृति ग्रन्थों का यहाँ अध्ययन करते हैं जिसमें सृष्टि विषयक विषयों का उल्लेख मिलता है |

9.2 उदेश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप जान लेंगे कि –

- ❖ स्मृति ग्रन्थ किसे कहते है।
- ❖ कौन-कौन से प्रमुख स्मृति ग्रन्थ है।
- ❖ स्मृति ग्रन्थों में सृष्टि के बारे में क्या कहा गया है।
- ❖ सृष्टि प्रक्रिया का मर्म क्या है।

9.3 स्मृति ग्रन्थों का परिचय

स्मृति का शाब्दिक अर्थ है –जो याद किये जाने योग्य हो। स्मृतियाँ हमारे धर्म का मूल उपादान है। जिस प्रकार श्रुति को वेद माना जाता है उसी प्रकार धर्मसूत्र भी स्मृति ग्रन्थ मानी जाती है।

आचार्य मनु का कथन है कि – ‘‘स्मृति तथा धर्मशास्त्र का अर्थ एक ही जानना चाहिए।’’ वेद को श्रुति तथा धर्मशास्त्र को स्मृति जानना चाहिए वे सभी विषयों में प्रतिकूल तर्क के योग्य नहीं हैं क्योंकि उन दोनों से ही धर्म का प्रादुर्भाव हुआ है। स्मृति के अन्तर्गत षड्वेदाङ्ग, धर्मशास्त्र, इतिहास, पुराण, अर्थशास्त्र तथा नीतिशास्त्र इन सभी विषयों का अन्तर्भाव किया गया है। स्मृतियों पर धर्मशास्त्र का प्रभाव अधिक दिखायी पड़ता है। धर्मशास्त्र उन शास्त्रों को कहा जाता है जिनमें, प्रजा के अधिकार, कर्तव्य, सामाजिक आचार-विचार, वर्णाश्रम धर्म-व्यवस्था, नीति,सदाचार आदि शासन सम्बन्धी नियमों का वर्णन किया जाता है इसलिए यह कहा जा सकता है कि स्मृतियों की रचना धर्मसूत्रों के आधार पर की गयी हैं। स्मृतियाँ हमारी संस्कृति, आचार, व्यवहार को स्मरण रखने में सहायक है। पी0वी0काणे ने अपने ग्रन्थ धर्मशास्त्र के इतिहास में स्मृति शब्द के अर्थ के सम्बन्ध में कहा है कि स्मृति शब्द दो अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। एक अर्थ में यह वेद वाङ्मय से

इतर ग्रन्थों यथा पाणिनि के व्याकरण श्रौत, गृह्य, धर्मसूत्रों , महाभारत, मनु, याज्ञवल्क्य एवं अन्य ग्रन्थों से सम्बद्ध है किन्तु संकीर्ण अर्थ में स्मृति एवं धर्मशास्त्र का अर्थ एक ही है।

तैत्तरीय आरण्यक में स्मृति की व्याख्या करते हुए कहा है कि – स्मृतिरनुमेयश्रुतिमूलं मन्वादिशास्त्रम्। प्रत्यक्षं सर्वपुरूषाणां श्रोत्रेण ग्राह्यं वेद वाक्यं च। अनुमान: शिष्टाचार:। तेन हि मूलभूतं श्रुतिस्मृतिलक्षणं प्रमाणनुमीयते। तदेतत्स्मृत्यादिचतुष्मवगतिकारण भूतं प्रमाणम्। एतै: स्मृत्यादिभि: सर्वैरेव प्रमाणैरादित्यमण्डलं विधास्यते प्रमीयते, यादृशमिदं मण्डलं भवति यथा च प्रवर्तते यथा वा मन्वन्तरादिभेदाभिन्नं कालं प्रवर्तयति यथा चोदकसृष्ट्यादिना विश्मुत्पादयति तत्सर्व स्मृत्यादिप्रमाणसिद्धम्।

गौतम धर्मसूत्र में स्मृति को धर्म का उपादान माना है।

वाचस्पत्यम् के अनुसार 'स्मृति' स्त्रीलिंग शब्द है तथा 'स्मृ धातु', क्तिन् प्रत्यय से मिलकर बना है। स्मृति का पहला अर्थ उन्होंने किया है – अनुभूतवस्तुन उद्बोधक – सहकारणेन संस्कारधीने ज्ञानभेदे। अनुभूत की हुई वस्तु उद्बोधन प्रकट या जागृत करने में साधन रूप तथा संस्कार के अधीन है वह 'स्मृति' है।

स्मृतियाँ व्यक्ति के कार्यों पर नियन्त्रण लगाकर, अनुशासित करके, व्यक्ति को समाज से अलग नहीं रखती अपितु स्मृतियाँ व्यक्ति को सुसंस्कृत, सामाजिक प्राणी बनाने में सहायक होती है।

स्मृति ग्रन्थ का तात्पर्य उन रचनाओं से है जो प्राय: श्लोकों में है तथा उन्हीं विषयों का प्रतिपादन करती हैं जिनका विवेचन धर्मसूत्रों में किया गया है। स्मृतियाँ प्राय: पद्य में तथा धर्मसूत्र गद्य में हैं। भाषा की दृष्टि से धर्मसूत्रों की भाषा अत्यन्त क्लिष्ट तथा विद्वज्जनों की भाषा है किन्तु स्मृति की भाषा अत्यन्त सरल एवं आमजन की बोलचाल की भाषा है। विषय वस्तु की दृष्टि से स्मृतियाँधर्मसूत्रों से अधिक व्यवस्थित तथा सुगठित है।

स्मृतियों की संख्या –

स्मृतियों की निश्चित संख्या के बारे में कई मत-मतान्तर प्राप्त होते हैं। डॉ. कोणे अनुसार मुख्य स्मृतियों की संख्या 18 है – मनुस्मृति, वृहस्पति स्मृति, दक्ष स्मृति, गौतम स्मृति, यम स्मृति, अंगिरा स्मृति, योगीश्वर स्मृति, प्रचेता स्मृति, शातातप स्मृति, पराशर स्मृति, संवर्त स्मृति, उशना स्मृति, लिखित स्मृति, शंख स्मृति, अत्रि स्मृति, विष्णु स्मृति, आपस्तम्ब स्मृति तथा हारीत स्मृति।

याज्ञवल्क्य स्मृति के अनुसार –

मन्त्रत्रिविष्णुहारीतयाज्ञवल्क्योशनोऽग्रि।
यमापस्तम्बसंवर्ता: कात्यायनवृहस्पत।।
पराशव्यासंशंखलिखिता वृक्षगौतमौ।
शातातपो वसिष्ठश्च धर्मशास्त्रप्रयोजका:।।

अष्टादश स्मृति में निम्न प्रमुख स्मृतियों का समावेश किया गया है – अत्रि संहिता, विष्णु प्रोक्त धर्म, हारीत स्मृति, औशनस स्मृति, अंगिरा रस स्मृति, संवर्त स्मृति, लघु यम स्मृति, आपस्तम्ब स्मृति, वृहस्पति स्मृति, कात्यायन स्मृति, पराशर स्मृति, दक्ष स्मृति, गौतम स्मृति, शातातप स्मृति।

वीरमित्रोदय के अनुसार स्मृतिकारों की संख्या 21 है –

वसिष्ठो नारदश्चैव सुमन्तुश्च पितामह:।
विष्णु काष्णाजिनि: सत्यव्रतो गार्ग्यश्च देवल।।
जमदग्निर्भरद्वाज: पुलस्य पुलह: क्रतु:।
आत्रेयश्च गवेयश्च मरीचिर्वत्स एव च।
पारस्करश्चष्यंगे वैजावापस्तथैव च।
इत्येते स्मृतिकर्तार एकविंशतिरीरिता:।।

इसके अतिरिक्त उप स्मृतियों के भी नाम गिनाये गये हैं –

जाबालिर्नाचिकेतश्च स्कन्दो लौगाक्षिकाश्यपौ।
व्यास सत्कुमारश्च शन्तनुर्जनस्तथा।।
व्याघ्र: कात्यायश्चैव जातूमकण्य कपिंजल:।
बौधायनश्च काणादो विश्वामित्रस्तथैव च।।
पैठीनसिर्गोभिलश्चेत्युपस्मति विधायका:।

स्मृति सन्दर्भ के प्रथम भाग में – मनुस्मृति, नारदीय, अत्रि स्मृति, अत्रि संहिता, प्रथम विष्णु स्मृति, विष्णु स्मृति, द्वितीय भाग में – पराशर स्मृति, वृहत्पाराशर स्मृति, लघुहारीत स्मृति, वृद्धहारीत स्मृति, तृतीय भाग में – याज्ञवल्क्य स्मृति, कात्यायन स्मृति, लिखित स्मृति, शंखलिखित स्मृति, वसिष्ठ स्मृति, लघुव्यास संहिता, व्यास स्मृति, बौधायन स्मृति, चतुर्थ भाग में – गौतम स्मृति, वृद्ध गौतम स्मृति, यम स्मृति, लघुयम स्मृति, वृद्धद्यम स्मृति, अरूण स्मृति, पुलस्त्य स्मृति, बुध स्मृति, वसिष्ठ स्मृति नं. -2 वृहद्ययोगियाज्ञवल्क्य स्मृति, ब्रह्मोक्तयाज्ञवल्क्यसंहिता काश्यप स्मृति व्याघ्रपाद स्मृति पंचम भाव में - कपिल स्मृति, वाधूल स्मृति, विश्वामित्र स्मृति, लोहित स्मृति, नारायण स्मृति, शाण्डिल्य स्मृति, कण्व स्मृति, दाल्भ्य स्मृति, अंगिरस स्मृति नं.-2 पूर्वांगिरसम् ख. उत्तरांरिसम् षष्ठ भाग में – लौंगाक्षि स्मृति तथा मार्कण्डेय स्मृति का संग्रह है।

स्मृतियों की संख्या में एक मत नहीं है। स्मृतियों की संख्या 100 के समकक्ष मानी जाती है। जिनमें 18 स्मृतियाँ प्रमुख हैं। उपस्मृतियों की संख्या अधिकतम है।

वेद भारतीय संस्कृति का मूलभूत आधार हैं। मनुष्य के समस्त जीवन मूल्यों का समावेश वेदों में निहित है। हजारों वर्षो से वेदों पर ही मानव जीवन का अस्तित्व टिका हुआ है। वेदों का प्रधान विषय ज्ञान, कर्म एवं उपासना है किन्तु इसके अतिरिक्त धार्मिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक, सामाजिक, राजनीतिक, आध्यात्मिक उन्नति का विस्तृत विवेचन किया गया है। वैदिक संस्कृति में न्याय, समानता, विश्वबन्धुत्व जैसे मानवीय

मूल्यों का समावेश है। वेदों में धर्म का कोई व्यवस्थित उल्लेख नहीं है। किन्तु स्मृतियाँ वेदों से अधिक सुगठित शास्त्र है। वेदों के समान ही स्मृतियों में भी धर्म, शिक्षा, संस्कार, आश्रम व्यवस्था, राजधर्म आदि विषयां का चरणबद्ध प्रतिपादन किया गया है। सामाजिक व्यवस्था को अधिक सुदृढ़ बनाने के लिए मनु ने आश्रम व्यवस्था के समान वर्ण व्यवस्था को भी महत्त्वपूर्ण माना है। वेद एवं मनु की वर्ण व्यवस्था जन्मगत न होकर कर्मगत है। अतः हम यह कह सकते हैं कि स्मृतियां वेदों का अनुकरण करती हैं इसलिए स्मृतियां वेदानुवर्ती हैं। मनु ने मनुष्य का जो धर्म कहा है, वह सब धर्म वेदों में कहा गया है। वे मनु सब वेदों के अर्थों के में ज्ञाता हैं। वेदों तथा स्मृतियों में कहे गये धर्म का अनुष्ठान करता हुआ मनुष्य इस संसार में यश पाता है F तथा धर्मानुष्ठाजन्य स्वकर्मादि के अनुत्तम सुख को पाता है। ऋग्वेद में भी वेदानुकूल कर्म करने का आदेश दिया है। "हे देवों ! हम न कभी प्राकृतिक नियमों को तोड़ते हैं तथा न कभी इन नियमों को होने देते हैं। वेद के मन्त्रों के आदेशानुसार आचरण करते हैं। मनु ने वर्णाश्रम धर्म के अन्तर्गत क्रमशः वर्ण (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र) तथा आश्रम (ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, S वानप्रस्थ तथा सन्यास) के विशिष्ट धर्मों का परिगणन कराया है। र ज वर्ण का वर्णन मनु से पूर्व सर्वप्रथम ऋग्वेद के पुरुष सूक्त में मिलता है। यही कथन मनु ने भी कहा है। मनु भी धर्म के उपदेश के लिए वेद को मुख्य प्रमाण मानते हैं। जहां पर श्रुति तथा स्मृति के विधानों में मतभेद मिलता हो वहां पर परस्पर श्रुति को ही प्रमुखता दी गई है। सं क अ - जिस प्रकार मनु ने जीवन में अनुशासित मर्यादाएं निर्धारित की उसी प्रकार का वर्णन ऋग्वेद में भी दृष्टिगोचरचित होता है। "विद्वानों ने जीवन की सात मर्यादाएं निर्धारित की हैं। ये सात मर्यादाएं हैं- सुरापान, जुआ खेलना, नारी व्यसन, मृगया, कटु वचन, कठोर दण्ड व दूसरे पर मिथ्या आरोप। इनकी उ तथा कदापि नहीं जाना चाहिए। इनसे बचने वाला प्रतिष्ठा व उच्च स्थिति को पाता है।" संस् जन जिस प्रकार स्मृतियों में आचार का अधिक वर्णन किया है उसी प्रकार वेदों में भी आचार की शिक्षा दी जाती है। "चरित्र रक्षा के बारे में यजुर्वेद में कहा गया है कि - "मैं तेरी वाणी को शुद्ध करता हूँ। मैं तेरे प्राणों को शुद्ध करता हूँ। मैं तेरी आंखों को शुद्ध करता हूँ। मैं तेरे कानों को शुद्ध करता हूँ। मैं उत्त तेरी नाभि को शुद्ध करता हूँ। मैं तेरे आचरण तथा पैरों को शुद्ध करता हूँ।" ऋग्वेद में दान का महत्व वर्णित किया गया है। दान सभी इष्ट सुखों को देने वाला है तथा मनुष्य की सभी कामनाओं की पूर्ति करता है। इस प्रकार भारतीय संस्कृति का मूल वेदों में ही निहित है।

मनुस्मृति के 9 टीकाकार हैं – मेघातिथि, गोविन्दराज, कुल्लूक भट्ट, सर्वज्ञ नारायण, राघवानन्द, नन्दन, रामचन्द्र, मणिराम, भारूचि। इनमें मेघातिथि प्राचीन भाष्यकार माने जाते हैं।

याज्ञवल्क्य स्मृति के टीकाकार – ब्रह्माण्ड पुराण में याज्ञवल्क्य के पिता का नाम ब्रह्मरात उल्लिखित है। याज्ञवल्क्य के गुरु का नाम वैशम्पायन था। याज्ञावल्क्य स्मृति पर 7 टीकायें हैं- विश्वरूप की बालक्रीड़ा, विज्ञानेश्वर की मिताक्षरा, शूलपाणि की दीपकलिका, अपरार्क, नन्दपण्डित की मिताक्षरा, विश्वेश्वर भट्ट की सुबोधिनी, बालम्भट्ट की बालम्भट्टी टीका प्रसिद्ध है।

पराशर स्मृति – कलौ पाराशर: स्मृति: के अनुसार कलियुग में पराशर स्मृति सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। माधवाचार्य द्वारा इसकी टीका लिखी गयी है।

नारद स्मृति - नारद स्मृति में 18 प्रकरण तथा 1028 श्लोक हैं। नारद स्मृति तथा मनुस्मृति में बहुत कुछ समानता है। नारद स्मृति पर असहाय ने टीका लिखी है।

हारीत स्मृति – हारीत स्मृति में आचार पक्ष पर अधिक बल दिया गया है। इसी कारण इसके व्यवहार संबंधी उद्धरण अन्य ग्रन्थों में प्राप्त होते हैं हारीत स्मृति के दो भाग है – लघु हारीत एवं वृद्ध हारीत।

गौतम स्मृति – याज्ञवल्क्य ने गौतम को धर्मशास्त्रकार माना है। गौतम स्मृति 21 अध्यायों में मिलती है। वसिष्ठ धर्मसूत्र तथा गौतम धर्मसूत्र के बहुत से सूत्र एक ही है।

अंगिरा स्मृति – याज्ञवल्क्य ने 20 धर्मशास्त्रकारों में अंगिरा का भी उल्लेख किया है। इस स्मृति के भी 2 भाग है। इस स्मृति ग्रन्थ पर कोई टीका उपलब्ध नहीं है।

9.4 स्मृति ग्रन्थों में सृष्टि प्रक्रिया

मनु स्मृति में सृष्टि प्रक्रिया -

मनु स्मृति के प्रथम अध्याय में सृष्टि की रचना, पृथ्वी पर जीवों के जन्म तथा उन की प्रकृति के बारे में विस्तरित विवरण इस प्रकार अंकित उपलब्ध है -

आसीदितं तमोभूतमप्रज्ञातमलक्षणम् ।
अप्रतक्यमविज्ञेयं प्रसुप्तमिव सर्वतः ।।
ततः स्वयंभूभर्गवानव्यक्तो व्यञ्जयन्निदम्।
महाभूतादि वृत्तौजाः प्रादुरासीत्तमोनुदः।। (मनुस्मृति 1– 5-6)

अर्थात् – पहले यह संसार तम (अन्धकार) प्रकृति से घिरा था, जिस से कुछ भी ज्ञात नहीं होता था। अनुमान करने योग्य कोई रूप नहीं था जिस से तर्क दूारा लक्षण स्थिर कर सके। सभी ओर अज्ञान और शून्य की अवस्था थी। इस के बाद प्रलयावस्था के नाश करने वाले लक्षण सृष्टि के सामर्थ्य से युक्त, स्वयंभु भगवान महाभूतादि (पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाश और वायु) पंच तत्वों का प्रकाश करते हुए प्रकट हुए। (यहाँ यह स्पष्टीकरण भी जरूरी है कि 'तम' का अपना कोई अस्तीत्व नहीं होता। 'रौशनी का अभाव' ही तम की अवस्था है।)

पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाश और वायु का प्रगट होना आधुनिक भौतिक विज्ञान का जन्म है क्यों कि उन्हीं महाभूतों के मिश्रण से ही सृष्टी के अन्य पदार्थ विकसित हुये या मानव दूारा विकसित किये गये हैं। प्राचीन शास्त्रों के अनुसार प्रथम जीवन जल और गर्मी से उत्पन्न हुआ। जल सूर्याग्नि की तपश और वायु के कारण आकाश में उडता है तथा फिर वर्षा के रूप में पुनः पृथ्वी पर आता है जिस से पैड-पौधे जन्म लेते हैं, जीव उत्पन्न होते हैं और पश्चात मानव का जन्म होता है। यही आस्थायें मानवी विज्ञान का आधार हैं जिन्हें सरलता के साथ समझाने के लिये हम देवी देवता का रूप में चित्रण भी कर सकते हैं और उन्हीं तथ्यों को आधार बना

कर रौचक कथायें भी लिख सकते हैं। समस्त वेदों, उपनिष्दों, पुराणों में मनुस्मृति की तरह ही सृष्टि की उत्पत्ति का बखान किया गया है और कहीं भी विरोधाभास नहीं है।
हमारे पूर्वजों को सभी प्रकार के जीवों से ले कर मानव के जन्म तक का पूर्ण ज्ञान था। बृहत विष्णु पुराण के अनुसार सब से पहले जल में सृष्टि हुई फिर वानर जो कि मानवों के अग्रज हैं। यही विचारधारा कालान्तर डारविन नें अपने नाम से पंजीकृत करवा कर 'एवोलुशन थियोरी ' के नाम से प्रचारित कर ली। आदिकाल से पशु-पक्षी अपने जैसे जीवों को ही उत्पन्न करते चले आ रहे हैं। पशु पक्षियों ने अपनी संतानों को परिशिक्षण देने के लिये कोई विद्यालय नहीं बनाये। फिर भी उन के नवजात अपनी जाति के रहन-सहन को अपने आप ही सीख जाते हैं। डिस्कवरी तथा नेशनल ज्योग्राफिक टी वी चैनलों पर इन सभी तथ्यों को अब प्रत्यक्ष देखा जा सकता है। प्राणी-विज्ञान के इसी तथ्य को डारविन से सैंकडों वर्ष पूर्व मनुस्मृति में इस प्रकार उजागर किया गया थाः-
यं तु कर्मणि यस्मिन्स न्ययुङ्क्त प्रथमं प्रभुः।
स तदेव स्वयं भेजे सृज्यमानः पुनः पुनः ।। (मनु स्मृति1- 28)
अर्थात- पहले ब्रह्मा ने जिस जीव को जिस कार्य में नियुक्त किया, वह बारम्बार उत्पन्न हो कर भी अपने पूर्व-कर्म को करने लगा।
विष्णु के दस अवतार भी सृष्टि सर्जन की कहानी को कलात्मिक ढंग से उजागर करते हैं। सृष्टि की उत्पत्ति से ही समस्त जीवों में आत्मा बार बार उसी परमात्मा की ही पुनर्वृति करती है। इसी विचार को छन्दोग्य उपनिष्द ने भी व्यक्त किया है। पौराणिक कथाओं तथा लोक कथाओं में पशु-पक्षियों और पैड-पौधों का मानवी भाषा में बात करना इस वैज्ञानिक तथ्य को प्रमाणित करता है कि ना केवल पशु-पक्षियों में बल्कि पैड-पौधों में भी जीवन के साथ साथ संवेदनायें भी विद्यमान है। इसी तथ्य की पुनर्वृति करने के लिये विश्व के आधुनिक वैज्ञिनिकों और तर्क शास्त्रियों ने सर जगदीशचन्द्र बोस को नोबल पुरस्कार से सम्मानित किया था।
स्मृति हिन्दू धर्म के उन धर्मग्रन्थों का समूह है जिनकी मान्यता श्रुति से नीची श्रेणी की हैं और जो मानवों द्वारा उत्पन्न थे। इनमें वेद नहीं आते। स्मृति का शाब्दिक अर्थ है - "याद किया हुआ"। यद्यपि स्मृति को वेदों से नीचे का दर्ज़ा हासिल है लेकिन वे (रामायण, महाभारत, गीता, पुराण) अधिकांश हिन्दुओं द्वारा पढ़ी जाती हैं, क्योंकि वेदों को समझना बहुत कठिन है और स्मृतियों में आसान कहानियाँ और नैतिक उपदेश हैं। इसकी सीमा में विभिन्न धार्मिक ग्रन्थों—गीता, महाभारत, विष्णुसहस्रनाम की भी गणना की जाने लगी। शंकराचार्य ने इन सभी ग्रन्थों को स्मृति ही माना है। मनु ने श्रुति तथा स्मृति महत्ता को समान माना है। गौतम ऋषि ने भी यही कहा है कि 'वेदो धर्ममूल तद्विदां च स्मृतिशीले'। हरदत्त ने गौतम की व्खाख्या करते हुए कहा कि स्मृति से अभिप्राय है मनुस्मृति से। परन्तु उनकी यह व्याख्या उचित नहीं प्रतीत होती क्योंकि स्मृति और शील इन शब्दों का प्रयोग स्रोत के रूप में किया है, किसी विशिष्ट स्मृति ग्रन्थ या शील के लिए नहीं। स्मृति से अभिप्राय है वेदविदों की स्मरण शक्ति में पड़ी उन रूढ़ि और परम्पराओं से जिनका उल्लेख वैदिक साहित्य में नहीं किया

गया है तथा शील से अभिप्राय है उन विद्वानों के व्यवहार तथा आचार में उभरते प्रमाणों से। फिर भी आपस्तम्ब ने अपने धर्म-सूत्र के प्रारम्भ में ही कहा है 'धर्मज्ञसमयः प्रमाणं वेदाश्च'। स्मृतियों की रचना वेदों की रचना के बाद लगभग ५०० ईसा पूर्व हुआ।

मनुस्मृति हिन्दू धर्म का एक प्राचीन धर्मशास्त्र (स्मृति) है। इसे मानव-धर्म-शास्त्र, मनुसंहिता आदि नामों से भी जाना जाता है। यह उपदेश के रूप में है जो मनु द्वारा ऋषियों को दिया गया। इसके बाद के धर्मग्रन्थकारों ने मनुस्मृति को एक सन्दर्भ के रूप में स्वीकारते हुए इसका अनुसरण किया है। धर्मशास्त्रीय ग्रंथकारों के अतिरिक्त शंकराचार्य, शबरस्वामी जैसे दार्शनिक भी प्रमाणरूपेण इस ग्रंथ को उद्धृत करते हैं। परंपरानुसार यह स्मृति स्वायंभुव मनु द्वारा रचित है, वैवस्वत मनु या प्राचनेस मनु द्वारा नहीं। मनुस्मृति से यह भी पता चलता है कि स्वायंभुव मनु के मूलशास्त्र का आश्रय कर भृगु ने उस स्मृति का उपवृहण किया था, जो प्रचलित मनुस्मृति के नाम से प्रसिद्ध है। इस 'भार्गवीया मनुस्मृति' की तरह 'नारदीया मनुस्मृति' भी प्रचलित है। मनुस्मृति वह धर्मशास्त्र है जिसकी मान्यता जगविख्यात है। न केवल भारत में अपितु विदेश में भी इसके प्रमाणों के आधार पर निर्णय होते रहे हैं और आज भी होते हैं। अतः धर्मशास्त्र के रूप में मनुस्मृति को विश्व की अमूल्य निधि माना जाता है। भारत में वेदों के उपरान्त सर्वाधिक मान्यता और प्रचलन 'मनुस्मृति' का ही है। इसमें चारों वर्णों, चारों आश्रमों, सोलह संस्कारों तथा सृष्टि उत्पत्ति के अतिरिक्त राज्य की व्यवस्था, राजा के कर्तव्य, भांति-भांति के विवादों, सेना का प्रबन्ध आदि उन सभी विषयों पर परामर्श दिया गया है जो कि मानव मात्र के जीवन में घटित होने सम्भव है। यह सब धर्म-व्यवस्था वेद पर आधारित है। मनु महाराज के जीवन और उनके रचनाकाल के विषय में इतिहास-पुराण स्पष्ट नहीं हैं। तथापि सभी एक स्वर से स्वीकार करते हैं कि मनु आदिपुरुष थे और उनका यह शास्त्र आदिःशास्त्र है। मनुस्मृति में चार वर्णों का व्याख्यान मिलता है वहीं पर शूद्रों को अति नीच का दर्जा दिया गया और शूद्रों का जीवन नर्क से भी बदतर कर दिया गया मनुस्मृति के आधार पर ही शूद्रों को तरह तरह की यातनाएं मनुवादियों द्वारा दी जाने लगी जो कि इसकी थोड़ी सी झलक फिल्म तीसरी आजादी में भी दिखाई गई है आगे चलकर बाबासाहेब आंबेडकर ने सर्वजन हिताय संविधान का निर्माण किया और मनु स्मृति में आग लगा दी गई जो कि समाज के लिए कल्याणकारी साबित हुई और छुआछूत ऊंच-नीच का आडंबर समाप्त हो गया। .

महाभारत

महाभारत हिन्दुओं का एक प्रमुख काव्य ग्रंथ है, जो स्मृति वर्ग में आता है। कभी कभी केवल "भारत" कहा जाने वाला यह काव्यग्रंथ भारत का अनुपम धार्मिक, पौराणिक, ऐतिहासिक और दार्शनिक ग्रंथ हैं। विश्व का सबसे लंबा यह साहित्यिक ग्रंथ और महाकाव्य, हिन्दू धर्म के मुख्यतम ग्रंथों में से एक है। इस ग्रन्थ को हिन्दू धर्म में पंचम वेद माना जाता है। यद्यपि इसे साहित्य की सबसे अनुपम कृतियों में से एक माना जाता है, किन्तु आज भी यह ग्रंथ प्रत्येक भारतीय के लिये एक अनुकरणीय स्रोत है। यह कृति प्राचीन भारत के इतिहास की एक गाथा है। इसी में हिन्दू धर्म का पवित्रतम ग्रंथ भगवद्गीता सन्निहित है। पूरे महाभारत में लगभग

१,१०,००० श्लोक हैं, जो यूनानी काव्यों इलियड और ओडिसी से परिमाण में दस गुणा अधिक हैं। हिन्दू मान्यताओं, पौराणिक संदर्भो एवं स्वयं महाभारत के अनुसार इस काव्य का रचनाकार वेदव्यास जी को माना जाता है। इस काव्य के रचयिता वेदव्यास जी ने अपने इस अनुपम काव्य में वेदों, वेदांगों और उपनिषदों के गुह्यतम रहस्यों का निरुपण किया हैं। इसके अतिरिक्त इस काव्य में न्याय, शिक्षा, चिकित्सा, ज्योतिष, युद्धनीति, योगशास्त्र, अर्थशास्त्र, वास्तुशास्त्र, शिल्पशास्त्र, कामशास्त्र, खगोलविद्या तथा धर्मशास्त्र का भी विस्तार से वर्णन किया गया हैं।

याज्ञवल्क्य स्मृति

याज्ञवल्क्य स्मृति धर्मशास्त्र परम्परा का एक हिन्दू धर्मशास्त्र का ग्रंथ (स्मृति) है। याज्ञवल्क्य स्मृति को अपने तरह की सबसे अच्छी एवं व्यवस्थित रचना माना जाता है। इसकी विषय-निरूपण-पद्धति अत्यंत सुग्रथित है। इसपर विरचित मिताक्षरा टीका हिंदू धर्मशास्त्र के विषय में भारतीय न्यायालयों में प्रमाण मानी जाती रही है। इसके श्लोक अनुष्टुप छंद में हैं - इसी छंद में गीता, वाल्मीकि रामायण और मनुस्मृति लिखी गई है। इसी विषय (यानि धर्मशास्त्र) पर मनुस्मृति को आधुनिक भारत में अधिक मान्यता मिली है। इसमें आचरण, व्यवहार और प्रायश्चित के तीन अलग अलग भाग हैं। .

ऋग्वेद के नासदीय सूक्त में कहा गया है- -ऋग्वेद 10.129.1

नासदासीन्नो सदासीत्तदानीं नासीद्रजो नो व्योमाऽपरोयत्।
किमावरीवः कुहकस्य शर्मन्नभः किमासीद्गहनं गभीरम्।।

यानी सृष्टि की उत्पत्ति से पहले एक सर्वशक्तिमान परमेश्वर मौजूद थे, उस वक्त ना तो आकाश का अस्तित्व था ना ही गुणों का।

ऐतरेय उपनिषद में कहा गया है कि सृष्टि के आरंभ में एकमात्र आत्मा विराट ज्योतिर्मय स्वरूप में विद्यमान थी। बिग बैंग थ्योरी में भी यही कहा गया है सृष्टि की शुरुआत में सिर्फ एक अति संघनित गर्म गोला मौजूद था। –

न मृत्युरासीदमृतं न तर्हि न रात्र्या अह्न आसीत्प्रकेतः।
आनीदवातं स्वधया तदेकं तस्माद्धान्यन्न परः किं चनास।। ऋ. 10.129.2

सृष्टि की उत्पत्ति से पहले न जन्म था न मृत्यु,न दिन था ना रात, सब कुछ मुक्त अवस्था में था, श्लोक में यह भी कहा गया है प्रकृति उस वक्त ऊर्जा के रूप में मौजूद थी | विज्ञान भी यही मानता है कि सृष्टि की शुरुआत में ब्रह्मांड की सारी उर्जा एक ही केंद्र पर कंप्रेस्ड हो गई थी|

फिर सृष्टि की उत्पत्ति कैसे हुई, इस पर तैत्तिरीय उपनिषद् का कहना है-

‘सो कामयत। बहुस्यां प्रजायेयेति।

स तपोऽतप्यत। स तपस्तप्त्वा इदं सर्वमसृजत। यदिद किञ्च। तत सृष्टावा तदेवानु प्राविशत्। तदनुप्रविश्य। सच्चत्यच्यामवत्। निरुक्तं चानिरुक्तं च। निलयन चानिलयन च। विज्ञानं चापिज्ञानं च। सत्यं चानृतं च। सत्यमभवत। यदिद किञ्च। तत्सत्यमित्या चक्षते। -तै.उप. ब्रह्मानन्दवल्ली अनुवाक 6

यह श्लोक गूढ़ वैज्ञानिक अर्थ लिए हुए हैं, इसका अर्थ यह है कि उस ज्योतिर्स्वरूप परमात्मा (जिसे विज्ञान ने उर्जा पिंड कहा) में एक से अनेक होने की कामना पैदा हुयी | विज्ञान कहता है उस उर्जा पिंड में अचानक विस्फोट की प्रक्रिया हो गयी, लेकिन कैसे जो उर्जा पिंड अनंतकाल से एक जैसा था उसमे विस्फोट किसकी इच्छा से हुआ? वेद कहते हैं उस पिंड में ईश्वरीय चेतना थी, उसी महा चेतना के चलते उस एक पिंड में बहुत हो जाने की इच्छा पैदा हुयी| यह परमात्मा की पहली इच्छा कहलाती है|

इस पिंड को शैव दर्शन में परम शिव कहा जाता है, इस पिंड का आकार ठीक वैसा ही था जैसा आज शिवलिंग का अंडाकार होता है, इस पिंड को वेदों में हिरण्यगर्भः (सोने का अंडा) कहा| वह गर्भ जिससे दुनिया उपजी |

अब सवाल उठता है कि क्या वह पिंड सिर्फ ज्योतिर्मय चेतना थी? स्थूल कण का समूह था या उर्जा का अति संघनित रूप? विज्ञान कहता रहा कि सब कुछ पदार्थ से पैदा हुआ है| वेद कहते हैं कि सब कुछ चेतनात्मक स्पन्द से पैदा हुआ| व्यवहारिक ये है कि जैसे मानव में स्थूल, सूक्षम और कारण शरीर होते हैं, उसी तरह उस एक मात्र ब्रम्ह पिंड में भी तीनो शरीर थे स्थूल, सूक्षम और कारण| इन तीन के ऊपर भी एक परम कारण शरीर था जिसे विज्ञान आज गॉड पार्टिकल कहता है|

वेद कहते हैं उस पिंड रुपी ब्रम्ह का पहला ज्ञान था खुद के एक होने का, कि मैं तो सिर्फ एक हूँ| मेरे एक होने में कोई आनंद नहीं| एक से अधिक होने की इच्छा से क्रिया का प्रारंभ हुआ और उस क्रिया से वह पिंड एक से अनेक होकर स्रष्टि की शुरुआत का कारण बना| चूंकी सभी कण उसी पिंड से निकले इसीलिए कण कण में भगवान है कहा गया|

ऋग्वेद के अनुसार सृष्टि उत्पत्ति परमेश्वर ने इस प्रकार की है-

ब्रह्मणस्पतिरेता सं कर्मारइवाधमत्।
देवानां पूर्व्ये युगेऽसतः सद जायत।। – ऋ. 10.72.2

उन पिंड रुपी परम शिव हिरण्यगर्भ ने सम्पूर्ण द्रव्य/पदार्थ को अपने ताप से धोंका और उसी ताप से पदार्थ पूरे आकाश में बिखर गया| इसी को वैज्ञानिकों ने महा विस्फोट (बिग बैंग)कहा है। वेद कहते हैं अव्यक्त व असत पदार्थों से ही व्यक्त व सत जगत की उत्पत्ति हुयी।

तैत्तिरीयोपनिषद् में सृष्टि उत्पत्ति का क्रम भी बताया गया है-

तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः समभूतः। आकाशाद्वायुः। वायोरग्निः। अग्नेरापः। अद्भ्यः पृथिवी। पृथिव्या ओषधय। ओषधीयोऽन्नम् अन्नाद् रेतः। रेतसः पुरुषः।

अर्थात् परम पुरुष परमात्मा से पहले आकाश, फिर वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी उत्पन्न हुई है। पृथ्वी से ओषधियाँ, (अन्न व फल फूल) ओषधियों से वीर्य और वीर्य से मनुष्य उत्पन्न हुए।

यदि हम उस पिंड से पहले की स्थिति पर विचार करें तो जो ज्ञान मार्ग हमें बताता है वह यह है पिंड से पहले ब्रह्मांड की सारी ऊर्जा छोटे-छोटे कणों के रूप में पूरे आकाश में बिखरी हुई थी। धीरे-धीरे सारी ऊर्जा किसी खास आकर्षण में बंधकर संघनित/ एकत्रित/COMPRESSED होने लगी। यूं समझ लीजिए कि पूरी दुनिया की रचना जिन कणों और ऊर्जा के कारण संभव हुई, वह एक छोटे से गेंद जैसी चीज में समाए हुए थे।

अनंत काल तक ये पिंड एक ही अवस्था में रहा लेकिन एक दिन इस परम शिव में संसार को रचने की इच्छा हुयी| यही दुनिया का रचनाकार है जिसने इस पिंड रुपी ऊर्जा को इस तरह विभाजित किया कि चंद सेकेण्ड में अनेक ब्रम्हांड, ब्रह्मांड में गैलेक्सी, गैलेक्सीओं में सौर मंडल जैसे अनेक मंडल, सब कुछ व्यवस्थित रूप में आकार लेते चले गए |

विज्ञान क्या कहता है? बिग बैंग या महाविस्फोट के इस धमाके के मात्र 1-43 सेकेंड समय के बाद समय, अंतरिक्ष की मान्यताएं अस्तित्व में आ चुकी थीं। भौतिकी के नियम लागू होने लगे थे। 1-34 वें सेकेंड में ब्रह्मांड 1+30 गुणा फैल चुका था और अब क्वार्क, लैप्टान और फोटोन का गर्म द्रव्य बन चुका था। 1-4 सेकेंड क्वार्क मिलकर मिलकर प्रोटॉन और न्यूट्रॉन बनाने लगे, ब्रह्मांड अब कुछ ठंडा हो चुका था। हाइड्रोजन, हीलियम आदि की शुरुआत होने लगी और तत्व बनने लगे थे। विज्ञान इस सारी घटना को सिर्फ पदार्थ के क्रिया-प्रतिक्रिया मानता है लेकिन वेद कहते हैं कि इन सारी क्रिया-प्रतिक्रिया के पीछे जो शक्ति काम करती है वही शक्ति तो निराकार ब्रम्ह है।

बाद में विज्ञान ने इसी शक्ति को हिग्स बोसोन (गॉड पार्टिकल) कहा। गॉड पार्टिकल के कारण ही क्वार्क आपस में मिलकर इलेक्ट्रॉन, न्यूट्रॉन और प्रोटॉन बनाते हैं| भारतीय वैज्ञानिक सत्येन्द्र बोस ने गॉड पार्टिकल की मौजूदगी बताई थी इसलिए इस पार्टिकल के नाम में उनके सरनेम बोस को भी जोड़ा गया | इलेक्ट्रॉन, न्यूट्रॉन और प्रोटॉन मिलकर एटम बनाते हैं| हमारे ब्रह्मांड में मौजूद सभी चीजें एटम से मिलकर बनी हैं। विज्ञान के सिद्धांत के मुताबिक, बिग बैंग के तुरंत बाद किसी भी कण में कोई वजन नहीं था। जब ब्रह्मांड ठंडा हुआ और तापमान एक निश्चित सीमा के नीचे गिरता चला गया तो शक्ति की एक फील्ड पूरे ब्रह्मांड में बनती चली गई। उस फील्ड के अंदर बल था और उसे हिग्स फील्ड के नाम से जाना गया। उन फील्ड्स के बीच कुछ कण थे जिनको पीटर हिग्स के सम्मान में हिग्स बोसोन के नाम से जाना गया। इसे ही गॉड पार्टिकल भी कहा जाता है। उस सिद्धांत के मुताबिक, जब कोई कण हिग्स फील्ड के प्रभाव में आता है तो हिग्स बोसोन के माध्यम से उसमें वजन आ जाता है।

विज्ञान पहले कहता था कि जड़ से चेतन की उत्पत्ति होती है आज क्वांटम थ्योरी में ये माना जाने लगा है कि हर कण में चेतना है| चाहे उन कणों से बनी आकृति जड़ या निर्जीव नजर आये| यानी निर्जीव में भी जीवन की

वेदोक्त बात अब प्रमाणित होने जा रही है। इतने बड़े विश्व की रचना करने वाले को भारतीय दर्शन में निराकार, सर्वव्यापक और सर्वशक्तिमान कहा गया है। 'सर्वशक्तिमान्' जो अन्य किसी सहायक की उम्मीद नहीं रखता, उसमें अनन्त शक्ति है, सामर्थ्य असीम है, वह उसी सामर्थ्य से जड़ प्रकृति को प्रेरित करता है, उसकी अनन्त सामर्थ्ययुक्त व्यवस्था सूक्ष्मातिसूक्ष्म तत्त्वों में हर जगह व्याप्त है।

आप खुद उस ब्रम्ह का स्वरूप हैं। आपका शरीर जड़ है लेकिन आपके अंदर एक ऐसी चेतना काम कर रही है| जो आपके मन की मोहताज नहीं है। आप सोचे या न सोचें आपकी सांस चलती रहेगी| आपका हरेक अंग काम करता रहेगा, भले आप बेहोश हो जाएँ।

बिना कारण के कोई कार्य नहीं होता इसी तरह बिना कारण रुपी इश्वर के कार्य रुपी संसार की रचना असंभव है। सत्व रज

तम, इच्छा क्रिया ज्ञान, इलेक्ट्रोन प्रोटोन न्यूट्रान, इन त्रि शक्तियों के पीछे कौन है? वही ईश्वर है।

विष्णु स्मृति में सृष्टि प्रक्रिया -

याज्ञवल्क्य ने 20 धर्मशास्त्रकारों में विष्णु का उल्लेख किया है। इसके अतिरिक्त पैठानसि ने 36 धर्मशास्त्रकारों में विष्णु की चर्चा की है। विष्णु स्मृति 100 अध्यायों में निबद्ध है। विष्णु स्मृति का प्रारम्भ सृष्टि के वर्णन से हुआ है। प्रथम अध्याय तथा अन्तिम के तीन अध्यायों में विष्णु तथा लक्ष्मी की स्तुति की गयी है। विज्ञानेश्वर, अपरार्क, देवणभट्ट तथा माधवाचार्य ने विष्णु स्मृति के श्लोकों को उद्धृत किया है।

विष्णु स्मृति का सम्बन्ध कठ शाखा के चरक संहिता के कृष्ण यजुर्वेद से माना जाता है। विष्णु स्मृति के बहुत से श्लोक मनुस्मृति, याज्ञवल्क्य स्मृति तथा भगवद्गीता के समान है।

विष्णु स्मृति में सृष्टि प्रक्रिया का क्रम विराट् पुरूष द्वारा बतलाया गया है। विराट पुरूष (अनिरूद्ध) से हिरण्यगर्भ, महत से अहंकार रूपी ब्रह्मा, पंचमहाभूत, पंचतन्मात्रा आदि क्रम से सृष्टि का निर्माण क्रम का वर्णन किया गया है। विष्णु स्मृति पर वैजयन्ती नामक टीका नन्द पण्डित के द्वारा लिखी गयी है।

विष्णु स्मृति में भगवान विष्णु को त्रिगुणमय और जगत् का कारण माना है तथा स्वयं अनादि एवं उत्पत्ति और लय से उनको रहित माना है। यह सृष्ट्योत्पत्ति सम्बन्धित समस्त प्रपंच प्रलयकाल से लेकर सृष्टि के आदि तक सभी उसी विष्णु में समाहित है, ऐसा वर्णन मिलता है। यथा -

सृष्टिस्थित्यन्तकरणीं ब्रह्मविष्णुशिवात्मिकाम्।
स संज्ञां याति भगवानेक एव जनार्दन:।।

अर्थात् वह एक ही भगवान जनार्दन जगत् की सृष्टि, स्थिति और संहार के लिए ब्रह्मा, विष्णु और शिव – ये तीन संज्ञाओं को धारण करता है।

स एव सृज्य: स च सर्गकर्ता
स एव पात्यत्ति च पाल्यते च।
ब्रह्माद्यवथाभिरशेषमूर्ति

विंष्णुर्वरिष्ठो वरदो वरेण्य:।।

अर्थात् वे सर्वस्वरूप, श्रेष्ठ, वरदायक और वरेण्य भगवान विष्णु ही ब्रह्मा आदि अवस्थाओं द्वारा रचने वाले हैं, वे ही रचे जाते हैं, वे ही पालते हैं, वे ही पालित होते हैं तथा वे ही संहार करते हैं।

उपर्युक्त श्लोकों का विवरण विशेष रूप से सृष्टि रहस्य को समझने के लिए दिये गये हैं।

विष्णु पुराण में सृष्टि रचना के पूर्व की स्थिति का वर्णन करते हुए कहते हैं कि –

नाहो न रात्रिर्न नभो न भूमि
र्नासीत्तमोज्योतिरभूच्च नान्यत्।
श्रोत्रादिबुद्धयानुपलभ्यमेकं
प्राधानिकं ब्रह्म पुमांस्तदासीत्।।

अर्थात् प्रलयकाल में न दिन था, न रात्रि थी, न आकाश था, न पृथ्वी थी, न अंधकार था, न प्रकाश था और न इनके अतिरिक्त कुछ और ही था। बस, श्रोत्रादि इन्द्रियों और बुद्धि आदि का अविषय एक प्रधान ब्रह्म और पुरूष ही था।

विष्णु के परम स्वरूप से प्रधान और पुरूष – ये दो रूप हुए उसी के जिस अन्य रूप के द्वारा वे दोनों सृष्टि और प्रलयकाल में संयुक्त और वियुक्त होते हैं, उस रूपान्तर का ही नाम 'काल' है। इसी प्रकार पूर्ववत् प्रधान पुरूष से महत् , महत् से अहंकार, अहंकार से पंचमहाभूत, पुन: पंचतन्मात्रा एवं समस्त इन्द्रियां तथा उसके अधिष्ठातृ देव और फिर समस्त सृष्टि की रचना हुई। यहाँ भी यही क्रम है।

बोध प्रश्न –

1. स्मृतियों की संख्या लगभग मानी गयी है।

क. 50 ख. 100 ग. 1000 घ. 100000

2. विष्णु स्मृति का आरम्भ कहाँ से हुआ है?

क. विष्णु की स्तुति से ख. सृष्टि वर्णन से ग. वर्णाश्रम की रचना से घ. राजधर्म से

3. विष्णु स्मृति पर वैजयन्ती नामक टीका किसने लिखी है।

क. दत्तक ख. नन्द पण्डित ग. हरिवंश घ. माधवानन्द

4. 'स्मृतिस्तु धर्मसंहिता' स्मृति यह की परिभाषा कहाँ की गयी है।

क. विष्णु पुराण ख. अमरकोश ग. वीरमित्रोदय घ. वाचस्पत्यम्

5. प्रधान स्मृतियों की संख्या कितनी है।

क. 10 ख. 15 ग. 20 घ. 18

6. वीरमित्रोदय के अनुसार स्मृतिकारों की संख्या कितनी है।

क. 11 ख. 21 ग. 31 घ. 101

7. स्मृति को धर्म का उपादान किसने माना है।

क. तैतरीय आरण्यक ख. वाचस्पत्यम् ग. गौतम धर्मसूत्र घ. अमरकोश

9.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन से आप जान जायेंगे कि स्मृति का शाब्दिक अर्थ है –जो याद किये जाने योग्य हो। स्मृतियाँ हमारे धर्म का मूल उपादान है। जिस प्रकार श्रुति को वेद माना जाता है उसी प्रकार धर्मसूत्र भी स्मृति ग्रन्थ मानी जाती है। आचार्य मनु का कथन है कि – ''स्मृति तथा धर्मशास्त्र का अर्थ एक ही जानना चाहिए।'' वेद को श्रुति तथा धर्मशास्त्र को स्मृति जानना चाहिए वे सभी विषयों में प्रतिकूल तर्क के योग्य नहीं हैं क्योंकि उन दोनों से ही धर्म का प्रादुर्भाव हुआ है। स्मृति के अन्तर्गत षड्वेदाङ्ग, धर्मशास्त्र, इतिहास, पुराण, अर्थशास्त्र तथा नीतिशास्त्र इन सभी विषयों का अन्तर्भाव किया गया है। स्मृतियों पर धर्मशास्त्र का प्रभाव अधिक दिखायी पड़ता है। धर्मशास्त्र उन शास्त्रों को कहा जाता है जिनमें, प्रजा के अधिकार, कर्तव्य, सामाजिक आचार-विचार, वर्णाश्रम धर्म-व्यवस्था, नीति,सदाचार आदि शासन सम्बन्धी नियमों का वर्णन किया जाता है इसलिए यह कहा जा सकता है कि स्मृतियों की रचना धर्मसूत्रों के आधार पर की गयी हैं।

स्मृतियाँ हमारी संस्कृति, आचार, व्यवहार को स्मरण रखने में सहायक है। पी0वी0काणे ने अपने ग्रन्थ धर्मशास्त्र के इतिहास में स्मृति शब्द के अर्थ के सम्बन्ध में कहा है कि स्मृति शब्द दो अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। एक अर्थ में यह वेद वाङ्मय से इतर ग्रन्थों यथा पाणिनि के व्याकरण श्रौत, गृह्य, धर्मसूत्रों, महाभारत, मनु, याज्ञवल्क्य एवं अन्य ग्रन्थों से सम्बद्ध है किन्तु संकीर्ण अर्थ में स्मृति एवं धर्मशास्त्र का अर्थ एक ही है।

9.6 बोधात्मक प्रश्नों के उत्तर

1.ख 2.ख 3.ख 4.ख 5.घ 6.ख 7.ग

9.7 परिभाषिक शब्दावली .

स्मृति – जो याद किये जाने योग्य हो

श्रुति – वेद

आगम - शास्त्र

निगम – वेद

संकीर्ण – संकुचित

उप स्मृति – स्मृति के समीप

9.8 सहायक ग्रन्थ सूची

मनु स्मृति – टीकाकार – कुल्लूक भट्ट, राघवानन्द, नन्दन, रामचन्द्र

याज्ञवल्क्य स्मृति – विज्ञानेश्वर

वैदिक साहित्य का इतिहास – डॉ. रघुवीर विद्यालंकार

स्मृति ग्रन्थों में आचरण की व्यवस्था – डॉ. जगतानन्द झा

वीरमित्रोदय – श्री मित्र मिश्र

9.9 सहायक पाठ्य सामग्री

मनु स्मृति

अमरकोश

वीरमित्रोदय

याज्ञवल्क्य स्मृति

विविध स्मृति मूल ग्रन्थ

9.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. स्मृति से आप क्या समझते है।
2. प्रमुख स्मृति ग्रन्थ तथा उपस्मृतियों का वर्णन करें।
3. मनुस्मृति में प्रतिपादित सृष्टि कथन लिखिये।
4. विष्णु स्मृति में वर्णित सृष्टि प्रक्रिया का वर्णन कीजिये।
5. 'स्मृति' पर निबन्ध लिखिये।

इकाई -10 संस्कृत वाङ्मय में सृष्टि प्रक्रिया

इकाई की संरचना

10.1 प्रस्तावना

10.2 उद्देश्य

10.3 संस्कृत वाङ्मय

10.4 संस्कृत वाङ्मय में सृष्टि प्रक्रिया

10.4.1 वैदिक संहिताओं के अनुसार सृष्टि प्रक्रिया

10.4.2 उपनिषद् एवं ब्राह्मणग्रन्थों के अनुसार सृष्टि सिद्धान्त

10.4.3 सृष्टि उत्पत्ति सूक्त

10.4.4 सृष्टि जगत् के आधुनिक सिद्धान्त

10.4.5 सांख्य दर्शन के अनुसार सृष्टि सिद्धान्त

10.5 सारांश

10.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

10.7 पारिभाषिक शब्दावली

10.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

10.9 सहायक पाठ्यसामग्री

10.10 निबन्धात्मक प्रश्न

10.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई प्र CVC-101 से सम्बन्धित है, जिसका शीर्षक है संस्कृत – वाङ्मय में सृष्टि प्रक्रिया। इससे पूर्व की इकाईयों में आपने पुराणों, वेदांगों, एवं स्मृतिग्रन्थों में सृष्टि प्रक्रिया को समझ लिया है। अब आप सभी संस्कृत वाङ्मय में प्रतिपादित सृष्टि के बारे में अध्ययन करने जा रहे हैं।

संस्कृत वाङ्मय के अन्तर्गत वेद, वेदांग, पुराण, उपनिषद्, ब्राह्मण ग्रन्थ, आरण्यक आदि समस्त विधायें आती हैं। अत: सम्पूर्ण वाङ्मय में सृष्टि प्रक्रिया को जानना और बतलाना दोनों अत्यन्त कठिन है। तथापि मुख्यत्वेन यहाँ सृष्टि क्रम की बात करने का प्रयास किया जा रहा है।

आशा करता हूँ कि आप सभी शिक्षार्थी गण इस इकाई के अध्ययन से संस्कृत वाङ्मय और उसके अन्तर्गत सृष्टि प्रक्रिया को आसानी से समझ लेंगे।

10.2 उदेश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप जान लेंगे कि –

- संस्कृत वाङ्मय क्या है।
- संस्कृत वाङ्मय के अन्तर्गत क्या-क्या आता है।
- संस्कृत वाङ्मय में सृष्टि के बारे में क्या कहा गया है।
- सम्पूर्ण संस्कृत वाङ्मय में सृष्टि प्रक्रिया का मर्म क्या है।

10 .3 संस्कृत वांग्मय में सृष्टि

इस जगत् में जो कुछ भी विशुद्ध है वह संस्कृत है और जो अशुद्ध है वह असंस्कृत है। संस्कृत केवल भाषा नहीं अपितु सम्पूर्ण ज्ञान का प्रतीक है। संस्कृत वाङ्मय की जब हम बात करते हैं तो उसमें सर्वप्रथम 'वेद' जो समस्त विद्याओं का मूल है, का नाम आता है। वेद के पश्चात् वेदाङ्ग, उपनिषद, पुराण, ब्राह्मण ग्रन्थ, आरण्यक ग्रन्थ आदि समस्त संस्कृत वाङ्मय के अन्तर्गत ही आते हैं।

भारत के पश्चिमोत्तर भाग में स्थित सप्तसिन्धु प्रदेश के निवासियों की साहित्यिक अभिव्यक्ति मौखिक रूप से जिस भाषा में हुई उसे 'वैदिक संस्कृत' कहते हैं। इस भाषा में बहुमूल्य साहित्यिक परम्परा चली जो धार्मिक एवं लौकि क विषयों से भी भरी थी। वैदिक साहित्य तात्कालिक समाज की प्रवृत्तियों को समझने में बहुत उपादेय है। वैदिक साहित्य के धार्मिक विषयों में यज्ञ, देवता, उनके स्वभाव, भेद आदि आए हैं, तो लौकिक विषयों में मानव की इच्छाएँ, संकट और उनके निवारण, समाज का स्वरूप, चिकित्सा, दान, विवाह आदि हैं। इनसे समाज के विविध पक्षों का बोध होता है। वैदिक साहित्य के विकास का समय 6000 ई.पू. से 800 ई.पू. तक माना जाता है। इस कालावधि में चार चरणों में साहित्य का विकास देखा जा सकता है –

1. **संहिता** – संहिताओं में वैदिक मन्त्रों का संग्रह है। इनके चार मुख्य रूप है। ऋग्वेदसंहिता, यजुर्वेद संहिता, अथर्ववेदसंहिता, सामवेदसंहिता। इनका विभाजन वैदिक यज्ञों में कार्य करने वाले चार ऋत्विजों (यज्ञ कराने

वाले) के कार्यो को ध्यान में रखकर हुआ था। यज्ञों में ये चार ऋत्विज होते थे— होता, अध्वर्यु , उद्गाता तथा ब्रह्मा। होता देवताओं को यज्ञ में बुलाता है और ऋचाओं का पाठ करते हुए यज्ञ-देवों की स्तुति करता है। होता के प्रयोग के लिए उपयोगी मन्त्रों का संग्रह ऋग्वेदसंहिता में है। अध्वर्यु का काम यज्ञ का विधि पूर्व क सम्पा दन है। इसके लिए आवश्यक मन्त्र यजुर्वेदसंहिता में संकलित है। उद्गाता का काम यज्ञ में ऋचाओं का सस्वर गान करना है। वह मधुर स्वर में देवताओं को प्रसन्न करता है। उसके उपयोग के लिए ऋग्वेदसंहिता के मंत्र सामवेद संहिता में संकलित किए गए हैं। ब्रह्मा नामक ऋत्विज यज्ञ का पूरा निरीक्षण करता है, जिससे कोई त्रुटि न हो। यद्यपि वह सभी वेदों का ज्ञाता होता है, किन्तु उसका अपना विशिष्ट वेद अथर्ववेद-संहिता है। इन संहिताओं का अध्ययन विभिन्न परिवारों में पृथक् -पृथक्रूप से होता था, परिणामस्वरूप कालान्तर में इनकी अनेक शाखाएँ हो गईं। आज वैदिक संहिताओं की कुछ ही शाखाएँ उपलब्ध हैं।

2. ब्राह्मण – ब्राह्मण-ग्रन्थों का मुख्य उद्देश्य संहिताओं के मंत्रों द्वारा यज्ञों की व्याख्या करना था। इस प्रसंग में बहुत-सी नैतिक, सामाजिक तथा राजनीति क बातें भी आई है। वैदिक धर्म का सांगोपांग विवेचन इन ग्रन्थों में किया गया है। वैदिक संहिताओं की प्रत्येक शाखा की व्याख्या करने वाले ब्राह्मण-ग्रन्थ पृथक्-पृथक् हैं।

3. आरण्यक - ब्राह्मण-ग्रन्थों से सम्बद्ध आरण्यकों की रचना वनों में हुई। वैदिक कर्मकाण्ड, अनुष्ठान की उत्पत्ति और उसके महत्त्व के विषय में ऋषियों का जो चिन्तन हुआ, उसे आरण्यकों में रखा गया। ब्राह्मण-ग्रन्थों के समान ये भी सरल गद्य मेंही लिखे गए। विभिन्न वैदिक संहिताओं की शाखाओं के आरण्यक भी पृथक् -पृथक् थे। कर्मकाण्डी जनसमुदाय को ज्ञानकाण्ड की ओर लगाने का प्रयास इन आरण्यकों में हुआ है। इसका सम्बन्ध वानप्रस्थ आश्रम से था।

4. उपनिषद - वैदिक साहित्य के विकास के अन्तिम चरण में उपनिषद्-ग्रन्थ आते हैं। इनमें दर्शन-शास्त्र की विवेचना हुई, यद्यपि यह शास्त्र यत्र-तत्र पहले भी संहिताओं और आरण्यकों में आ चुका था। उपनिषदों में गुरु-शिष्य के संवादों के रूप में बहुत गूढ़ बातें कही गई हैं। आत्मा, ब्रह्म तथा संसार के रहस्यों को इन विवेचनाओं में प्रकाशित किया गया है। वैदिक साहित्य के अन्तिम भाग में होने तथा वैदिक दर्शन के विकसित रूप को प्रकाशित करने के कारण इन्हें वेदान्त भी कहा जाता है।

मूल वैदिक साहित्य को समझाने और उनका उपयोग बताने के लिए वेदाङ्ग (शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरूक्त, छन्द और ज्योतिष) ग्रन्थों का निर्माण हुआ। शिक्षा (उच्चारण की विधि), कल्प (कर्मकाण्ड तथा आचार),छन्द (अक्षरों की गणना के आधार पर पद्यात्मक मन्त्रों के स्वरूप का निर्धारण तथा नामकरण), निरुक्त (वैदिक शब्दों का निर्वचन या व्याख्या), व्याकरण (शब्दों की व्युत्पत्ति) तथा ज्योतिष (यज्ञ के समय का निरूपण)। इन्हें उपयोगिता की दृष्टि से वैदिक साहित्य में ही रखा जाता है, यद्यपि इन विषयों से सम्बद्ध ग्रन्थ लौकिक संस्कृत भाषा में लिखे गए। वेदांग प्राय: सूत्रात्मक हैं और वैदिक कर्मकाण्ड की विपुलता को संक्षिप्त वाक्यों में प्रकाशित करते हैं। मुख्य रूप से कर्मकाण्ड से सम्बद्ध कल्प-ग्रन्थों को सूत्र-साहित्य में रखा जाता है। इनके मुख्य चार भेद हैं— श्रौतसूत्र (वैदिक यज्ञों की प्रक्रिया बतलाने वाले),गृह्य-सूत्र (व्यक्तिगत एवं

पारिवारिक जीवन से सम्बद्ध कर्मकाण्ड का वर्णन करने वाले),धर्मसूत्र (धार्मिक एवं सामाजिक नियमों, कर्त्तव्यों और अधिकारों का वर्णन करने वाले) तथा शुल्व -सूत्र (यज्ञवेदिका को नापने और उसके निर्मा ण का वर्णन करने वाले)।

संस्कृत वाङ्मय के मूल ग्रन्थ में ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद एवं अथर्व वेद, ब्राह्मण ग्रन्थ, आरण्यक ग्रन्था, उपनिषद, पुराणादि आते हैं।

अब आप इसके पश्चात् संस्कृत वांगमय में सृष्टि विषयक विषयों का अध्ययन करने जा रहे हैं।

10.4 संस्कृत वाङ्मय में सृष्टि प्रक्रिया

10.4.1 वैदिक संहिताओं के अनुसार सृष्टि सिद्धान्त-

भारतीय चिन्तन परम्परा में भी सृष्टि विषयक विचार अति प्राचीन काल से दृष्टिगत होता है। क्यों कि हमारी भारतीय मान्यता के अनुसार समस्त ज्ञान-विज्ञान के मूल स्रोत रूप में विद्यमान विश्व के प्राचीनतम साहित्य वेदों में तद् विषयक आधारभूत सिद्धान्त वर्णित हैं। वेदों की संहिताओं की मान्यता के अनुसार सृष्ट्यादि में कोई आदि शक्ति सत् स्वरूप में उत्पन्न होकर पृथिवी आदि सकल चराचरों की सृष्टि की, परन्तु इस विषय का विस्तृत ज्ञान यहाँ प्राप्त नहीं होता इसीलिए ऋग्वेद संहिता में ''इह ब्रवीत य उ तच्चिकेतत्'' के द्वारा यह वर्णित है कि सृष्टि की उत्पत्ति के सिद्धान्त को यदि कोई जानता हो तो आकर कहे।

10.4.2 उपनिषद् एवं ब्राह्मणग्रन्थों के अनुसार सृष्टि सिद्धान्त-

इस प्रकार आपने जाना कि वैदिक संहिताओं में सूत्र रूप में ही सृष्टि की उत्पत्ति के सूक्ष्म सिद्धान्त वर्णित हैं। अब ब्राह्मण एवं उपनिषद् ग्रन्थों के आधार पर सृष्टि सिद्धान्त को समझेंगे।

वास्तविक रूप में सृष्टि सिद्धान्त एक कठिनतम विषय है इसलिए ब्राह्मण ग्रन्थों के अन्तर्गत इसकी उपस्थिति मूल रूप में होते हुए भी तैत्तरीय ब्राह्मण में वर्णित है कि ''सृष्टिविषयकं वास्तविकं कारणज्ञानमसम्भवमिति। तं न कोऽपि जानाति।'' अर्थात् सृष्टि विषयक वास्तविक कारण का ज्ञान असम्भव है। उसे कोई भी वास्तविक रूप में नहीं जानता। परन्तु अन्य कुछ ब्राह्मण ग्रन्थों में इसकी विस्तृत विवेचना भी प्राप्त होती है। इसके अन्तर्गत स्पष्टतया वर्णित है कि ''सदेव सोम्येदमग्र आसीत् .... तत आपः सम्भवति, तासु हिण्यगर्भाख्यं जगदुत्पत्तिबीजं सौवर्णमण्डं प्लवते, तस्माच्च जगदुत्पत्ति- निपुणाशक्तिः आविर्भूय स्वेच्छया विश्वमिदं सृजति'' अर्थात् सर्वप्रथम सत् तत्त्व अनन्तर इस प्रक्रिया के अन्तर्गत जल की उत्पत्ति हुई, इस जल के अन्दर हिरण्यगर्भ नामक स्वर्णाण्ड से विश्वोत्पत्ति के बीजरूप में विश्वोत्पादिका शक्ति उत्पन्न होकर स्वेच्छया से विश्व की रचना करती है। उपनिषद् ग्रन्थों के अन्तर्गत तैत्तरियोपनिषद् के अनुसार सृष्टिक्रम में विश्वोत्पादिका शक्ति के द्वारा सर्वप्रथम आकाश की उत्पत्ति हुई, इसके बाद आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल, जल से पृथिवी, पृथिवी से औषधियाँ, औषधियों से अन्न तथा अन्न द्वारा पुरुष की उत्पत्ति हुई। न केवल इन्हीं ग्रन्थों में अपितु अन्य ब्राह्मण, उपनिषद्, अरण्यक आदि वैदिक संहिताओं से सम्बद्ध ग्रन्थों में भी अनेक स्थलों पर एतद् विषय वर्णन मिलता है। इसी क्रम में तैत्तरीय ब्राह्मण में वर्णन मिलता है कि पूर्ववर्त्ति

सृष्टि के प्रलय के बाद तथा उत्तरवर्त्ती सृष्टि की संरचना के पूर्व मध्यवर्त्ति काल में सत्-असत् कुछ भी नहीं था। आकाश, जल, मृत्यु, अमृत तथा दिन-रात्रि आदि के कारक कुछ भी नहीं थे। इस समय में केवल परमब्रह्म रूपी शक्ति ही विद्यमान थी, जिसके मन में सृष्टि की ईच्छा जागृत हुई और उसने पूर्ववर्त्ति सृष्टि के अनुरूप ही इस वर्त्तमान सृष्टि की रचना की। वैदिक संहिताओं के ''सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथा पूर्वमकल्पयत्'' आदि वाक्य भी इस मत की पुष्टि करते हैं। इसके अनन्तर षड्वेदांगों के अन्तर्गत दर्शनशास्त्रों में तथा अन्यान्य संस्कृत वाङ्मय के ग्रन्थों में भी इससे सम्बन्धित अनेक प्रमाण वचन परम्परानुसार उपलब्ध होते हैं।

10.4.3 सृष्टि-उत्पत्ति सूक्त

सृष्टि की रचना- नासदीय सूक्त : यह ऋग्वेद के 10 वें मंडल का 129 वां सूक्त है। इसका संबंध ब्रह्माण्ड विज्ञान और ब्रह्मांड की उत्पत्ति के साथ है।

नासदीय सूक्त :- ऋग्वेद, ऋषि :- प्रजापति, परमेष्ठी देवता: भाववृत्त।

नासदासीन्नो सदासात्तदानीं नासीद्रजो नोव्योमा परोयत्।किमावरीवः कुहकस्य शर्मन्नंभः किमासीद् गहनंगभीरम् ॥1॥

पदच्छेद अन्वय: – तदानीम् असत् न आसीत् सत् नो आसीत्; रजः न आसीत्; व्योम नोयत् परः अवरीवः, कुह कस्य शर्मन् गहनं गभीरम्।

उस समय अर्थात् सृष्टि की उत्पत्ति से पहले प्रलय दशा में असत् अर्थात् अभावात्मक तत्त्व नहीं था। सत् = भाव तत्त्व भी नहीं था, रजः = स्वर्गलोक मृत्युलोक और पाताल लोक भी नहीं थे, अन्तरिक्ष नहीं था और उससे परे जो कुछ है वह भी नहीं था, वह आवरण करने वाला तत्त्व कहाँ था और किसके संरक्षण में था? उस समय गहन = कठिनाई से प्रवेश करने योग्य गहरा क्या था, अर्थात् वे सब नहीं थे।

न मृत्युरासीदमृतं न तर्हि न रात्र्या अह्न आसीत्प्रकेतः।अनीद वातं स्वधया तदेकं तस्मादधान्यन्न पर किं च नास॥2॥

पदच्छेद अन्वय:– तर्हि मृत्युः नासीत् न अमृतम्, रात्र्याः अह्नः प्रकेतः नासीत् तत् अनीत अवातम, स्वधया एकम् ह तस्मात् अन्यत् किञ्चन न आस न परः।

उस प्रलय कालिक समय में मृत्यु नहीं थी और अमृत = मृत्यु का अभाव भी नहीं था। रात्रि और दिन का ज्ञान भी नहीं था। उस समय वह ब्रह्म तत्व ही केवल प्राण युक्त, क्रिया से शून्य और माया के साथ जुड़ा हुआ एक रूप में विद्यमान था, उस माया सहित ब्रह्म से कुछ भी नहीं था और उस से परे भी कुछ नहीं था।

तम आसीत्तमसा गूढमग्रेऽप्रकेतं सलिलं सर्वमा इदं।तुच्छयेनाभ्वपिहितं यदासीत्तपसस्तन्महिना जायतैकं॥3॥

पदच्छेद अन्वय:– अग्रे तमसा गूढम् तमः आसीत्, अप्रकेतम् इदम् सर्वम् सलिलम्, आःयत् आभु तुच्छेन अपिहितम आसीत् तत् एकम् तपस महिना अजायत।

सृष्टि के उत्पन्न होने से पहले अर्थात् प्रलय अवस्था में यह जगत् अन्धकार से आच्छादित था और यह जगत् तमस रूप मूल कारण में विद्यमान था, आज्ञायमान यह सम्पूर्ण जगत् सलिल=जल रूप में था।अर्थात् उस

समय कार्य और कारण दोंनों मिले हुए थे। यह जगत् और वह व्यापक एवं निम्न स्तरीय अभाव रूप अज्ञान से आच्छादित था। इसीलिए कारण के साथ कार्य एकरूप होकर यह जगत् ईश्वर के संकल्प और तप की महिमा से उत्पन्न हुआ।

कामस्तदग्रे समवर्तताधि मनसो रेतः प्रथमं यदासीत्।सतो बन्धुमसति निरविन्दन्हृदि प्रतीष्या कवयो मनीषा॥4॥

पदच्छेद अन्वय :– अग्रे तत् कामः समवर्तत; यत्मनसः अधिप्रथमं रेतः आसीत्, सतः बन्धुं कवयःमनीषाहृदि प्रतीष्या असति निरविन्दन।

सृष्टि की उत्पत्ति होने के समय सब से पहले काम = अर्थात् सृष्टि रचना करने की इच्छा शक्ति उत्पन्न हुयी, जो परमेश्वर के मन मे सबसे पहला बीज रूप कारण हुआ; भौतिक रूप से विद्यमान जगत् के बन्धन-कामरूप कारण को क्रान्तदर्शी ऋषियो ने अपने ज्ञान द्वारा भाव से विलक्षण अभाव मे खोज डाला।

तिरश्चीनो विततो रश्मिरेषामधः स्विदासी३दुपरि स्विदासी३त्।रेतोधा आसन्महिमान आसन्त्स्वधा अवस्तात्प्रयतिः परस्तात् ॥5॥

पदच्छेद अन्वय :– एषाम् रश्मिःविततः तिरश्चीन अधःस्वित् आसीत्, उपरिस्वित् आसीत्रेतोधाः आसन् महिमानःआसन् स्वधाअवस्तात प्रयति पुरस्तात्।

पूर्वोक्त मन्त्रों में नासदासीत् कामस्तदग्रे मनसारेतः में अविद्या, काम-सङ्कल्प और सृष्टि बीज-कारण को सूर्य-किरणों के समान बहुत व्यापकता उनमें विद्यमान थी। यह सबसे पहले तिरछा था या मध्य में या अन्त में? क्या वह तत्त्व नीचे विद्यमान था या ऊपर विद्यमान था?

वह सर्वत्र समान भाव से भाव उत्पन्न था। इस प्रकार इस उत्पन्न जगत् में कुछ पदार्थ बीज रूप कर्म को धारण करने वाले जीव रूप में थे और कुछ तत्त्व आकाशादि महान रूप में प्रकृति रूप थे; स्वधा = भोग्य पदार्थ निम्नस्तर के होते हैं और भोक्ता पदार्थ उत्कृष्टता से परिपूर्ण होते हैं।

को आद्धा वेद क इह प्र वोचत्कुत आजाता कुत इयं विसृष्टिः।अर्वाग्देवा अस्य विसर्जनेनाथा को वेद यत आबभूव ॥6॥

पदच्छेद अन्वय :– कः अद्धा वेद कः इह प्रवोचत् इयं विसृष्टिः कुतः कुतः आजाता, देवा अस्य विसर्जन अर्वाक् अथ कः वेद यतः आ बभूव।

कौन इस बात को वास्तविक रूप से जानता है और कौन इस लोक में सृष्टि के उत्पन्न होने के विवरण को बता सकता है कि यह विविध प्रकार की सृष्टि किस उपादान कारण से और किस निमित्त कारण से सब ओर से उत्पन्न हुई। देवता भी इस विविध प्रकार की सृष्टि उत्पन्न होने से बाद के हैं। अतः ये देवगण भी अपने से पहले की बात के विषय में नहीं बता सकते। इसलिए कौन मनुष्य जानता है, जिस कारण यह सारा संसार उत्पन्न हुआ ?

इयं विसृष्टिर्यत आबभूव यदि वा दधे यदि वा न।यो अस्याध्यक्षः परमे व्योमन्त्सो अङ्ग वेद यदि वा न वेद॥7॥

पदच्छेद अन्वय :– इयं विसृष्टिः यतः आबभूव यदि वा दधे यदि वा न। अस्य यः अध्यक्ष परमे व्यामन् अंग सा वेद यदि न वेद।

यह विविध प्रकार की सृष्टि जिस प्रकार के उपादान और निमित्त कारण से उत्पन्न हुयी इस का मुख्य कारण है ईश्वर के द्वारा इसे धारण करना। इसके अतिरिक्त अन्य कोई धारण नहीं कर सकता। इस सृष्टि का जो स्वामी ईश्वर है, अपने प्रकाश या आनंद स्वरुप में प्रतिष्ठित है। हे प्रिय श्रोताओं ! वह आनंद स्वरुप परमात्मा ही इस विषय को जानता है उस के अतिरिक्त (इस सृष्टि उत्पत्ति तत्व को) कोई नहीं जानता है। ब्रह्माण्ड एक खुला स्थान है, जिसकी कोई सीमायें नहीं हैं, कोई अंत नहीं है। इसकी लम्बाई, चौड़ाई, ऊँचाई और गहराई अनंत हैं। पर इसकी रचना कैसे और क्यों हुई? यह अत्यन्त रहस्यमयी है।

सृष्टि रचना का मूल परमपिता परब्रह्म में ही समाहित है। शब्दों में उसका वर्णन करना अत्यन्त कठिन है। मानव अपनी मेधा शक्ति के अनुसार जितना भी समझ लें, सृष्टि रहस्यमयी ही रहेगी। अनन्त ब्रह्माण्ड में अनन्त सृष्टि की कल्पना है इसीलिए शब्दानुरोधेन इसका अनुशासन भी अत्यन्त कठिन है।

10.4.4 सृष्टि जगत् के आधुनिक सिद्धान्त

सांख्य दर्शन के अनुसार सृष्टि सिद्धात – इस पाठ में अब तक आपने वेद, उपनिषद्, वेदांग तथा ज्योतिष के मत में भारतीय दर्शन के अभिमत प्रतिपादित सृष्टि जगत् के सिद्धान्तों एवं परम्पराओं के बारे में जाना। अब आप आधुनिक विज्ञान के मत में प्रतिपादित सृष्टि जगत् के कुछ सिद्धान्तों का अध्ययन कर ज्ञान प्राप्त करेंगें।

आधुनिक विज्ञान जगत् में भी सृष्टि का कोई स्थायी सिद्धान्त नहीं स्थापित हो पाया है। अनेक वैज्ञानिकों ने प्रस्तुत सन्दर्भ में अन्वेषण पूर्वक अनेक नियमों को उपस्थापित किया परन्तु अभी तक कोई सर्वमान्य नियम स्थापित नहीं हो सका है। तथापि आधुनिक विज्ञान जगत् द्वारा प्रस्तुत सन्दर्भ में किए गये शोधकार्यों में ‘‘बिगबैंग थ्योरी’’ ;ठपह ठंदह ज्ीमवतलद्ध जो कि बेल्जियम वैज्ञानिक जार्ज लेमिटर ;ळमवतहमे स्ंउंपजतमद्ध ने 1920 में सर्वप्रथम प्रतिपादित किया था सर्वाधिक प्रमाणिक एवं प्रसिद्ध है। बहुशः यह सिद्धान्त भी भारतीय प्राचीन नियमों का अनुसरण करता हुआ ही दिखाई पड़ता है। इस सिद्धान्त के नियमानुसार यह सृष्टि एक महान विस्फोट के द्वारा उत्पन्न हुई है। इस मान्यता के अनुसार लगभग 13,70,00,00,000 सौर वर्ष पहले जब इस ब्रह्माण्ड का निर्माण नहीं हुआ था अर्थात् जब कुछ भी कही नहीं था उस समय यह ब्रह्माण्ड एक परमाणु रूप में विद्यमान था जिसमें ऊर्जा की सघनता बढ़ने से उत्पन्न उष्णता की अधिकता के कारण विस्फोट हुआ था और फैलते हुए 1.43 सेकेण्ड के अन्दर ही ब्रह्माण्ड के अन्तर्गत अन्तरिक्ष का समग्र स्वरूप प्रकट हो गया। विस्फोट के अनन्तर परमाणु से ऊर्जा उत्सर्जन के कारण ही विश्व का यह प्रसरणशील स्वरूप दिखाई पड़ता है तथा यह विश्व आज भी विस्तारशील है। इस सृष्टि की प्रक्रिया के क्रम में विस्फोट के बाद अल्पघनत्व से युक्त क्षेत्र गुरुत्त्वाकर्षण के प्रभाव से घनत्व की अधिकता वाले स्वरूप में परिणत होकर एक ओर जहां विस्फोट के प्रभाव से प्रसरणशील थे वहीं दूसरी ओर गुरुत्त्वाकर्षण के प्रभाव से परस्पर आकर्षित भी थे। अतः इस स्थिति थे जहाँ पदार्थों का घनत्व अधिक था वहाँ गुरुत्त्वाकर्षण का बल

ब्रह्माण्ड के प्रसरण में कारणभूत बल से अधिक हो गया जिससे की पदार्थ एकत्रित होकर पिण्ड स्वरूप में परिवर्तित हुए। इस प्रकार खगोलीय समस्त पिण्डों का निर्माण हो गया। विस्फोट के बाद अत्यधिक उष्णता के कम होने पर लघु घटकों का भी संयोजन सम्पन्न हुआ। इसी क्रम में हब्बल नामक वैज्ञानिक नें 1919 ईस्वीय वर्ष में ''लाल विचलन'' ;त्मक ैीमजिद्ध सिद्धान्त के आधार पर प्रामाणित किया कि यह ब्रह्माण्ड निरन्तर प्रसरणशील है अर्थात् इसमें निरन्तर विस्तार हो रहा है। इस ब्रह्माण्ड में स्थित आकाशगंगाएं तीव्र गति से परस्पर दूर जा रही हैं। अतः इससे अनुमान करते हैं कि भूतकाल में ये आकाशगंगाएं आसन्नवर्ती थीं। इससे यह भी सिद्ध होता है कि ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति काल में ब्रह्माण्डस्थ सभी पदार्थ और ऊर्जा अत्यधिक तापमान और घनत्व में एक ही बिन्दु पर थीं। इसी ''लाल विचलन'' सिद्धान्त के आधार पर 1948 ई. में जार्ज गैमो नें ''ब्रह्माण्डीय-सूक्ष्म-तरंग- विकिरण'' ;ब्वेउपब डपबतवूंअम ठंबाहतवनदक त्कपंजपवदद्ध की भविष्यवाणी की जिसको 1960 में परवर्ती वैज्ञानिकों ने प्रमाणित किया। जिससे ''महाविस्फोट सिद्धान्त'' और भी सुदृढ़ हुआ। परन्तु इसके पूर्व में भी 1927 ई. में जार्ज लेमिट् नें अलबर्ट आइन्सटीन के 'सापेक्षता सिद्धान्त ;ज्ीमवतल व िळमदमतंस त्मसंजपअपजलद्ध के आधार पर ''लेमिट्-राबर्टसन-वाकर-समीकरण'' ;थ्तपमकउंदद.स्मउंपजतम.त्वइमतजेवद.ॅंसांत.म्ुनंजपवदद्ध सिद्धान्त का आविष्कार किया जिसके अनुसार भी इस ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति एक परमाणु के द्वारा हुई है। परन्तु उस समय इस सिद्धान्त को तत्कालीन वैज्ञानिकों नें मान्यता नहीं दी लेकिन यह आज का सबसे प्रामाणिक एवं बहुमान्य सिद्धान्त है।

सांख्य दर्शन षड् दर्शनों में प्रमुख है। इसके प्रणेता कपिल मुनि कहे गये हैं। इसमें सीधे रूप में ईश्वर को सृष्टि का कर्ता नहीं माना गया है अपितु सांख्य दर्शन में प्रकृति और पुरूष के सम्बन्ध से सृष्टि की उत्पत्ति की बात कही गयी है। इस दर्शन में सत्व, रज एवं तम गुणत्रय की साम्यावस्था का नाम प्रकृति है। सृष्टि निर्माण के अन्तर्गत पंचविंशति तत्व अर्थात् 25 तत्वों की बात की गयी है। प्रकृति से महत् अथवा बुद्धि, महत् से अहंकार, अहंकार भी तीन प्रकार का होता है – सात्विक, राजसी, तामसी, सात्विक अहंकार से 11 इन्द्रियों और 5 ज्ञानेन्द्रियों, 5 कर्मेन्द्रियों तथा मनस की उत्पत्ति होती है। राजसिक अहंकार सात्विक और तामसिक अहंकार का सहायक होता है और उन्हें वह शक्ति प्रदान करता है जिसके फलस्वरूप उनके अहंकार उत्पन्न होते है। तामस अहंकार से पंच तन्मात्रायें उत्पन्न होती हैं। पंच तन्मात्राओं से पंचमहाभूत उत्पन्न होते हैं। सांख्यकारिका में भी ईश्वर कृष्ण ने सृष्टि का यही क्रम बतलाया है।

स्पष्टार्थ चक्र –

1. प्रकृति
2. पुरूष
3. महत्
4. अहंकार
5. मन

6. पंच ज्ञानेन्द्रियाँ
7. पंच कर्मेन्द्रियाँ
8. पंचतन्मात्रायें,
9. पंचमहाभूत,

अन्य मतों के अनुसार सृष्टि की उत्पत्ति -

हिरण्य गर्भ में से ब्रह्माँ जी की उत्पति हुई -

भगवान् हिरण्य गर्भ ने उस अण्ड में एक वर्ष तक निवास करके उसके दो टुकड़े कर दिये फिर एक टुकड़े से धुलोक बनाया और दूसरे से भूलोक, उन दोनों टुकड़ों के बीच में भगवान् ब्रह्मा ने आकाश अवकाश की सृष्टि की, जल के ऊपर तैरती हुई पृथ्वी को स्थापित किया, फिर दसों दिशाएँ निश्चित कीं, उस ब्रह्माण्ड के भीतर ही उन्होंने काल मन वाणी काम क्रोध तथा रति आदि भावों की सृष्टि की, फिर इन भावों के अनुरूप सृष्टि करने की इच्छा वाले ब्रह्माजी ने निम्नलिखित सात प्रजापतियों को उत्पन्न किया।

ब्रह्मा जी ने सात ७ प्रजापतियो को उत्पन्न किया -

उनके नाम इस प्रकार हैं, मरीचि अत्रि अङ्गिरा पुलस्त्य पुलह क्रतु और वसिष्ठ, महा तेजस्वी ब्रह्मा ने इन सातों की अपने मन संकल्प से सृष्टि की अतः ये उनके मानस पुत्र हैं, पुराणों में ये सात ब्रह्मा निश्चित किये गये हैं, भगवान् नारायण में मन लगाये रहने वाले इन सात ब्राह्मणों की सृष्टि के अनन्तर ब्रह्मा जी ने अपने रोष से रुद्र को प्रकट किया, फिर पूर्वजों के भी पूर्वज भगवान् सनत्कुमार जी को उत्पन्न किया,

7 सातो प्रजापतियों के दिव्य वंश परम्परा है देवता आदि भी इसी वंश मै आते है।

भरत नन्दन ये मरीचि आदि सात ऋषि तथा रुद्र देव प्रजा की सृष्टि करने लगे, स्कन्द और सनत्कुमार ये दोनों अपने तेज का संवरण करके रहते हैं, उक्त सात महर्षियों के सात बड़े बड़े दिव्य वंश हैं, देवता भी इन्हीं वंशों के अन्तर्गत हैं, उन सातों वंशों के लोग कर्म निष्ठ एवं संतान वान् हैं, उन वंशों को बड़े बड़े ऋषियों ने सुशोभित किया है,

इसके बाद ब्रह्मा जी ने नक्षत्र मेघ आकाशीय पिंड पर्वतों और चार वेदों कि रचना की -

इसके बाद ब्रह्मा जी ने पहले विद्युत् वज्र मेघ रोहित सीधा इन्द्रधनुष पक्षि समुदाय तथा पर्जन्य की सृष्टि की, फिर ब्रह्माजी ने यज्ञ की सिद्धि के लिये नित्य सिद्ध ऋक् यजुः और साम का आविष्कार किया, फिर ऐश्वर्य शील ब्रह्मा ने अपने मुख से देवताओं को और वक्षःस्थल से पितरो को प्रकट किया, फिर उन्होंने उपस्थेन्द्रिय से मनुष्यो को और जंघाओ से असुरो को उत्पन्न किया, तदनन्तर उन्हो ने साध्य नामक प्राचीन देवताओ को प्रकट किया ऐसा हमने सुना है।

ब्रह्मा जी ने नर नारी मानव आदि की रचना की -

इस प्रकार प्रजाकी सृष्टि रचते हुए उन आपव अर्थात् जल में प्रकट हुए प्रजापति ब्रह्मा के अङ्गो मे से उच्च तथा साधारण श्रेणी के बहुत से प्राणी प्रकट हुए, इस प्रकार वे आपव प्रजापति मानसिक प्रजाओ को रच रहे

थे परंतु वे प्रजाएँ जब अधिक न बढ़ीं तब वे अपने शरीर के दो भाग कर एक भाग से पुरुष और दूसरे भाग से नारी हो गये और उस नारी ने गाय घोड़ी आदि जिस जिस रूप को धारण किया पुरुष ने उसी जाति के बैल घोड़े आदि का रूप धारण किया इस प्रकार उन्होंने उस नारी में अनेक प्रकार की मैथुनी प्रजाओ को रचा, इस प्रकार वे पुरुष और नारी अपनी महिमा से स्वर्ग और पृथ्वी पर व्याप्त हो गए।

ब्रह्मा जी ने मनु और शतरूपा को उत्पन्न किया यही से मन्वन्तर काल की उत्पति हुई -

भगवान् विष्णु ने विराट् पुरुष आपव प्रजापति या ब्रह्मा की सृष्टि की थी उस विराट पुरुष को तुम मनु समझो और उनकी स्त्री को शतरूपा, मनु के समय को ही मन्वन्तर काल कहा गया है, आपव पुत्र मनु की जो यह दूसरी योनिज सृष्टि है यहीं से मन्वन्तर का आरम्भ बताया जाता है, इस प्रकार शक्तिशाली वैराज पुरुष मनु ने प्रजासर्ग की सृष्टि की, आपव प्रजापति को नारायण सर्ग कहा गया है क्यो कि वे नारायण से ही प्रकट हुए हैं, उनकी अयोनिजा प्रजा प्रथम सर्ग है और मनुकी योनिजा प्रजा द्वितीय सर्ग, जो इस आदि सृष्टि को इस प्रकार जान लेता है वह आयुष्मान् कीर्तिमान् धन्यवाद का पात्र संतान वान् और विद्वान् होता है उसे इच्छानुसार उत्तम गति प्राप्त होती है।

बोध प्रश्न –

1. संहिताओं के मुख्यत: कितने भाग हैं?

क. 2 ख. 3 ग. 4 घ. 5

2. यज्ञों में कितने ऋत्विज होते हैं।

क.5 ख. 6 ग. 7 घ. 4

3. यज्ञ में ऋचाओं का सस्वर गान करने वाले को क्या कहते हैं?

क. होता ख. उद्गाता ग. ऋत्विज घ. अध्वर्यू

4. निम्न में यज्ञ के लिए काल निर्धारण कौन करता है।

क. वेद ख. पुराण ग. ज्योतिष घ. उपनिषद

5. नासदीय सूक्त का सम्बन्ध किस वेद से है।

क. ऋग्वेद ख. यजुर्वेद ग. सामवेद घ. अथर्ववेद

6. सांख्य दर्शन के प्रणेता कौन है।

क. पतंजलि ख. कपिल ग. गौतम घ. कणाद

7. सांख्य दर्शन के अनुसार सृष्टि के निर्माण में कितने तत्वों की बात कही गयी है।

क. 20 ख. 5 ग. 25 घ. 30

8. ऋग्वेद के कौन से मण्डल में सृष्टि का वर्णन है।

क. 8 ख. 9 ग. 10 घ. 11

सृष्टि की उत्पत्ति कैसे हुई! यह प्रश्न कई दशकों से दुनियाभर के वैज्ञानिकों के लिए एक शोध का विषय रहा है! कई वैज्ञानिकों का मानना है, कि किसी विस्फोट के कारण इस सृष्टि की उत्पत्ति हुई और फिर विकास के क्रम में धीरे-धीरे जीवों की उत्पत्ति आरम्भ हुई! परंतु हिंदू सनातन ग्रंथों की माने तो इस सृष्टि की रचना परम पिता ब्रह्मा जी ने अपने हाथों से की है ! जिसका वर्णन विष्णु पुराण, नारद पुराण, सहित कई पुराणों और वेदों में किया गया है! यही कारण है कि परमपिता ब्रह्मा को सृष्टि का रचयिता भी कहा जाता है ! परंतु हम आपको बताने जा रहे हैं कि शिव पुराण सृष्टि की रचना के संबंध में क्या कहता है।

शिव पुराण के रूद्र संहिता में इस बात का वर्णन किया गया है कि जब नारदजी ने परम पिता ब्रह्मा से सृष्टि की उत्पत्ति के बारे में पूछा तो ब्रह्मा जी ने कहा कि देवर्षि जैसा कि आप जानते हैं कि मेरी उत्पत्ति श्री हरि के नाभि कमल से हुई है ! जब मेरी उत्पत्ति हुई तो देवों के देव महादेव में मुझसे सृष्टि रचना का आदेश दिया और वह अंतर्धान हो गए ! उसके बाद में उनकी आज्ञा का पालन करने के लिए ध्यान मग्न हो कर्तव्य का विचार करने लगा ! और फिर भगवान शंकर को नमस्कार करके श्रीहरि से ज्ञान पाकर परमानंद की प्राप्ति कर मैंने सृष्टि की रचना करने का निश्चय किया !

उसके पश्चात मैंने सृष्टि की रचना की इच्छा से भगवान शिव और उनका स्मरण करके पहले उनके द्वारा रचे हुए जल में अपनी ऊँगली डालकर जल को ऊपर की ओर उछाला ! इससे वहां एक अंड प्रकट हुआ, जिसे 24 तत्वों का समूह कहा जाता है ! है मुनिश श्रेष्ठ वह विराट आकार वाला अंड जडरूप ही था ! उसमें चेतना ना देखकर मुझे पड़ा संशय हुआ और मैं अत्यंत कठोर तप करने लगा !

इस तरह परम पिता ब्रह्मा 12 वर्षों तक भगवान विष्णु के चिंतन में लगा रहा ! उसके बाद भगवान श्रीहरि स्वयं प्रकट हुए और बड़े प्रेम से मेरे अंगों का स्पर्श करते हुए मुझसे प्रसन्नता पूर्वक बोले- "हे ब्रह्मा तुम वर मानगो, मैं तुम्हारी तपस्या से अति प्रसन्न हूं, मुझे तुम्हारे लिए कुछ भी अच्छा नहीं है" ! "भगवान शिव की कृपा से मैं सब कुछ देने में असमर्थ हूं" !

यह सुन मैंने भगवान श्रीहरि से कहा "हे प्रभु आपने जो मुझ पर कृपा की है, वह सर्वथा उचित ई है' क्योंकि भगवान शंकर ने मुझे आपके हाथों में सौंप दिया है"! "हे विष्णु आपको नमस्कार है' आज मैं आपसे जो कुछ मांगता हू उसे दीजिए" ! हे प्रभु "यह प्रारूप 24 तत्वों से बना हुआ अंड किसी तरह का चेतन नहीं हो रहा है, जड़ी भूत दिखाई देता है" ! ब्रह्मा ने फिर कहा "हे नारायण इस समय आप भगवान शिव की कृपा से यहां प्रकट हुए हैं, अतः शंकर की शक्ति या विभूति से प्राप्त हुए इस अंड में चेतनता लाइए" !

मेरे ऐसा कहने पर शिव की आज्ञा में तत्पर रहने वाले महा विष्णु ने अनंत रूप का आश्रय ले उस अंड में प्रवेश किया ! उस समय उन परम पुरुष की शहस्त्रों मस्तक,सहस्त्रो नेत्र, और शास्त्रों पैर थे ! उन्होंने भूमि को चारों ओर से घेरकर उस अंड को व्याप्त कर लिया ! मेरे द्वारा भली-भांति स्तुति की जाने पर जब श्री विष्णु ने उस अंड में प्रवेश किया था, तब वह 24 तत्वों का बिकाल रूप अंड सचेतन हो गया !

पाताल से लेकर सत्यलोक तक की अवधि वाले उस अंड के रूप में वहां साक्षात श्रीहरि ही विराजने लगे ! उस विराट अंड में व्यापक होने से भी प्रभु बैराज पुरुष कहलाए ! प्रसन्न मुख महादेव ने ना केवल अपने रहने के लिए सुगम्य कैलाश नगर का निर्माण किया जो सब लोगों से ऊपर सुशोभित होता है,बल्कि संपूर्ण ब्रह्मांड का नाश हो जाने पर भी बैकुंठ और कैलाश इंदु धामों का कभी नष्ट नहीं होता है ! हे नारद, में सत्य लोग का आश्रय लेकर रहता हूं और महादेव जी की आज्ञा से ही मुझ में सृष्टि रचाने की इच्छा उत्पन्न हुई है ! उसके बाद जब में सृष्टि की रचना की इच्छा से चिंतन करने लगा, उस समय पहले मुझ में अनजान में ही बापूगुण, तमोगुण सृष्टि का प्रादुर्भाब हुआ,जिसे अबिध्या पंचक कहते हैं !

तदनंतर प्रसन्न चित्त होकर शंभू की आज्ञा से मैं पुनः अनासक्त भाव से सृष्टि का चिंतन करने लगा ! उस समय मेरे द्वारा स्थावर संज्ञक वृक्ष आदि की सृष्टि हुई, जिससे मुख्य सर्ग कहते हैं ! यह पहला सर्क है, वह अपने लिए पुरुषार्थ का साधक नहीं है ! यह जानकर सृष्टि की इच्छा वाले मुझ ब्रह्मा से दूसरा सर्ग प्रकट हुआ, जो दुख से भरा हुआ है ! उसका नाम है त्रियक श्रोता ! वह सर्ग भी पुरुषार्थ साधक नहीं था ! उसे भी पुरुषार्थ साधन की शक्ति से रहित जान जब मैं पुनः सृष्टि का चिंतन करने लगा, तब मुझ में शीघ्र ही तीसरे सात्विक सर्ग का प्रादुर्भाव हुआ, जिसे उधर्व श्रोता कहते है !

यह देवसर के नाम से विख्यात हुआ ! देवसर के सत्यवादी तथा अत्यंत सुख दायक है ! उसे भी पुरुषार्थ साधन की रूचि एवं अधिकार से रहित जानकर मैंने अन्य सर्ग के लिए अपने स्वामी श्री शिव का चिंतन आरंभ किया ! तब जाकर भगवान शंकर की आज्ञा से एक रजोगुणी सृष्टि का प्रादुर्भाव हुआ ! जिसे आवर्क श्रोता कहा गया है !

इस सर्ग के प्राणी मनुष्य है, जो पुरुषार्थ साधन के उद्धधिकारी हैं ! तदनंतर महादेव जी की आज्ञा से भूत आदि की सृष्टि हुई ! इस प्रकार मैंने 5 तरह की विकृत सृष्टि का वर्णन किया है ! इनकी सेवा तीन प्राकृत सर्ग भी कहे गए हैं, जो मुझ ब्रह्मा के सानिध्य से प्रकृति से ही प्रकट हुए हैं ! इनमें पहला महत्व का सर्ग है, दूसरा सुक्ष्म भूतों अर्थात तन्मात्म्यों का स्वर्ग है, और तीसरा वैकारिक सर्ग कहलाता है !

इस तरह यह तीन प्राकृतिक हैं ! प्राकृत और विकृत दोनों प्रकार के सर्गो को मिलाने से 8 वर्ग होते हैं ! इनके सेवा कौमार्ग सर्ग है, जो प्राकृत और विकृत भी है !इन सब के आयामता एकता मैं वर्णन नहीं कर सकता, क्योंकि उसका उपयोग बहुत थोड़ा है ! है मुनि श्रेष्ठ इन सबके बाद विचारात्मक सर्ग का प्रतिपादन हुआ !

इसका दूसरा नाम कोमार्क सर्ग है, जिसमें सना-नंदन, आदि-कुमारों की महत्वपूर्ण सृष्टि हुई ! सनक आदि मेरे चार मानस पुत्र हैं, जो मुझ ब्रह्मा के ही समान है! वे महान बैरागी से संपन्न तथा उत्तम व्रत का पालन करने वाले हुए ,उनका मन सदा भगवान शिव के चिंतन में ही लगा रहता है! बे संसार से विमुख एवं ज्ञानी है ! परंतु उन्होंने मेरे आदेश देने पर भी सृष्टि के निर्माण करने से मना कर दिया!

यह सुनकर मुझे भयंकर क्रोध आ गया और उस समय मुझ पर मोह रूपी अंधकार छा गया ! उस समय मैंने मन ही मन भगवान विष्णु का स्मरण किया वे शीघ्र ही आ गए और उन्होंने समझाते हुए मुझसे कहा तुम

भगवान शिव की प्रसन्नता के लिए तपस्या करो ! उसके बाद श्रीहरि के आदेशानुसार में भगवान शिव के नाम से महाघोर एवं उत्कृष्ट तप करने लगा!

सृष्टि के लिए तपस्या करते हुए (परमपिता ब्रह्मा कहते है)मेरी दोनों मोहे और नासिका के मध्य भाग से सर्वेश्वर एवं दयासागर भगवान शिव अर्धनारीश्वर रूप में प्रकट हुए ! जो जन्म से रहे तेज की राशि सर्वज्ञ एवं सर्व दृष्टा हैं ! वो नीली लोहित नामधारी साक्षात उमा बल्लभ शंकर को सामने देख बड़ी भक्ति से मस्तक झुका, उनकी स्तुति करके मैं पढ़ा प्रसन्न हुआ ! और उन देवेश्वर से बोला, "प्रभु आप ही भांति भांति के जीवो की सृष्टि कीजिए" ! मेरी यह बात सुनकर उन देवाधिदेव महेश्वर रूद्र ने अपने ही समान बहुत से रूद्र गुणों की सृष्टि की ! तब मैंने अपने स्वामी महेश्वर महारुद्र से फिर कहा, "देव आप ऐसे जीवो की सृष्टि कीजिए, जो जन्म और मृत्यु के भय से युक्त हो ! मेरी ऐसी बात सुनकर करुणासागर महादेव जी हंस पड़े और तत्काल मुझसे बोले मैं जन्म और मृत्यु के भय से युक्त अशोभनीय जीवों की सृष्टि नहीं करूंगा, क्योंकि वह कर्मों के अधीन होकर दुख के समुद्र में डूबे रहेंगे ! मैं तो दुख के सागर में डूबे हुए उन जीवों का उद्धार मात्र करूंगा! गुरु का स्वरूप धारण करके उत्तम ज्ञान प्रदान कर उन सबको संसार सागर से पार करूँगा ! हे प्रजापति, दुख में डूबे हुए सारे जीवों की सृष्टि तो तुम ही करो ! मेरी आज्ञा से इस कार्य में प्रवृत्त होने के कारण तुम्हें माया नहीं बांध सकेगी ! मुझसे ऐसा कहकर श्रीमान भगवान निल्लोहित महादेव मेरे देखते-देखते अपने पार्षदों के साथ तत्काल तिरोहित हो गए ! उसके बाद मैंने देवाधिदेव महादेव की आज्ञा के अनुसार अपने पूर्व मुख से ऋग्वेद, दक्षिण मुख से यजुर्वेद,पश्चिम मुख से सामवेद, और उत्तर मुख से अथर्ववेद की रचना की ! तत्पश्चात मैंने आयुर्वेद, धनुर्वेद, गंधर्ववेद और स्थापत्य आदि उपवेदों की रचना की ! फिर अपनी मुख से इतिहास पुराण उत्पन्न किया और फिर योगविद्या, दान, दाम, सत्य, धर्म आदि की रचना की ! अंत में मैंने अपने हृदय से ओंकार, अन्य अंगों से वर्ण,स्वर्ग आदि तथा क्रीड़ा से सात सुर प्रकट किए ! परन्तु इस सबकी रचना के बाद जब मुझे लगा कि मेरी सृष्टि में वृद्धि नहीं हो रही, तो मैंने अपने शरीर को दो भागों में विभक्त कर दिया ! जिनका नाम 'का' और 'या' यानी काया हुए ! उन्हीं दो भागों में से एक से पुरुष तथा दूसरे से स्त्री की उत्पत्ति हुई ! पुरुष का नाम मनु और स्त्री का नाम शतरूपा था ! फिर मनु और शतरूपा ने इस मानव संस्कार की शुरुआत की !

श्रीमद्भगवद्गीता के अनुसार सृष्टि -

ये, च, एव, सात्विकाः, भावाः, राजसाः, तामसाः, च, ये, मतः, एव, इति, तान्, विद्धि, न, तु, अहम्, तेषु, ते, मयि॥ (अध्याय नं. 7 का श्लोक नं. 12)

अनुवाद: (च) और (एव) भी (ये) जो (सात्विकाः) सत्वगुण विष्णु जी से स्थिति (भावाः) भाव हैं और (ये) जो (राजसाः) रजोगुण ब्रह्मा जी से उत्पत्ति (च) तथा (तामसाः) तमोगुण शिव से संहार हैं (तान्) उन सबको तू (मतः,एव) मेरे द्वारा सुनियोजित नियमानुसार ही होने वाले हैं (इति) ऐसा (विद्धि) जान (तु) परन्तु वास्तवमें (तेषु) उनमें (अहम्) मैं और (ते) वे (मयि) मुझमें (न) नहीं हैं।

जो ब्रह्मा ,विष्णु एवं शिव रूप से क्रमशः जगत की उत्पत्ति, पालन , संहार के कारण हैं तथा अपने भक्तों को संसार सागर से तारने वाले हैं उन विकार रहित, शुद्ध,अविनाशी, परमेश्वर सर्वदा एकरस वासुदेव भगवान को नमस्कार है।।

जो एक होकर भी नाना रूप वाले हैं। स्थूल सूक्ष्ममय हैं। अव्यक्त (कारण) तथा कार्य (व्यक्त) हैं। अपने भक्तों की मुक्ति का कारण हैं उन श्री विष्णु भगवान को नमस्कार है। जो बिश्व रूप प्रभू इस संसार की रचना,पालन एवं संहार के मूल कारण हैं। उन परमात्मा विष्णु को नमस्कार है। जो विश्व के अधिष्ठान हैं, अतिसूक्ष्म से भी सूक्ष्म हैं, सभी प्राणियों में स्थित पुरुषोत्तम एवं अविनाशी हैं जो वास्तव में अति निर्मल ज्ञानस्वरूप हैं किन्तु अज्ञानतावश नाना पदार्थ रूप से प्रतीत होते हैं। उन श्रीभगवान को जो काल रूप से सदा ही संसार की रचना, पालन तथा संहार करने में समर्थ हैं, नमस्कार करके मैं उस प्रसंग को सुनाता हूँ जो दक्षादि मुनियों के पूछने पर विधाता जी ने उनसे कहा था।

वह प्रसंग दक्ष आदि मुनियों ने नर्मदा नदी के तट पर राजा पुरूकुत्स को सुनाया था तथा पुरूकुत्स ने सारस्वत को एवं सारस्वत ने मुझे (पराशर मुनि) सुनाया था।

"जो पर (प्रकृति) से ही पर,परा श्रेष्ठ, अन्तरात्मा में स्थित परमात्मा, रूप, नाम वर्ण, और विशेषण आदि से रहित है : जिसमें जन्म, वृद्धि, परिणाम, क्षय ,नाश इन छ: विकारों का सर्वथा अभाव है : जिसको सर्वदा चकित भाव से केवल है, इतना ही कह सकते हैं। इसलिए ही विद्वान जिसे वासुदेव कहते हैं ' वही नित्य ,अजन्मा,अक्षय, अव्यय,एकरस और हेय गुणों से रहित होने के कारण निर्मल परमात्मा है। बही इन सब व्यक्त तथा अव्यक्त जगत के रूप से, साक्षी रूप से पुरूष तथा महाकारण काल रूप से स्थित है। परम सत्ता का प्रथम रूप पुरूष है अव्यक्त(प्रकति) और व्यक्त (महद आदि तत्व) उसके अन्य रूप है।तथा काल जो सबको क्षोभित करता है उसका परम रूप है। इस प्रकार जो प्रधान,पुरुष,,व्यक्त तथा काल इन चारों से परे है तथा जिसे पण्डित जन ही देख पाते हैं वही श्री भगवान का परम पद है। परा,पुरुष, व्यक्त तथा काल ये रूप अलग-2 संसार की उत्पत्ति, पालन तथा संहार के प्रकाश और उत्पादन में कारण है। ईश्वर काल,परा आदि रूप से जो स्थित होते हैं इसे उनकी बालवत लीला समझना चाहिए। उसमें से अव्यक्त कारण को जो कारण शक्ति विशिष्ट तथा नित्य एकरस है उसे परा कहते हैं।वह क्षय रहित है उसका कोई अन्य आधार भी नहीं है तथा अप्रमेय ,अजर,निश्चल ,शब्द, स्पर्श आदि शून्य और रूपादि रहित हैं। वह त्रिगुणमय और जगत का कारण है तथा अनादि रचना तथा लय से रहित है।यह सम्पूर्ण प्रपंच प्रलय काल से लेकर सृष्टि के आदि तक उसी से व्याप्त था।श्रुति के मर्म को जानने वाले, श्रुति परायण महात्मा गण इसी अर्थ को लक्ष्य करके प्रधान के प्रतिपादक इस श्लोक को कहा करते हैं- "उस समय न दिन था,न रात्रि थी,न आकाश था,न पृथ्वी थी,न अंधकार था,न प्रकाश था और न ही इनके अतिरिक्त कुछ और ही था। बस श्रोत्रादि, इन्द्रिय और बुद्धि आदि का अविषय एक प्रधान पुरूष परमेश्वर ही था। वीते हुए प्रलयकाल में यह व्यक्त प्रपंच उसी परमेश्वर में लीन था। विष्णु के उस उपाधिरहित स्वरूप से प्रधान और पुरूष -"ये दो रूप हुए :उसी के जिस अन्य रूप के

द्वारा वे दोनो संयुक्त (सृष्टि काल) और वियुक्त (विनाश काल)हुआ करते हैं उस रूपांतर का नाम ही काल है।इसे प्राकृत प्रलय जानना चाहिए।। काल रूप भगवान अनादि है,इनका अन्त नहीं है इसलिए संसार की उत्पत्ति,पालन एवं संहार भी कभी नहीं रूकते।।

हे मैत्रेय! प्रलयकाल में प्रधान के साम्यावस्था में स्थित हो जाने पर और पुरूष के प्रकृति से प्रथक्क स्थित हो जाने पर श्री भगवान का काल रूप इन दोनों को धारण करने के लिए प्रवृत्त होता है। तदुपरांत (सर्गकाल उपस्थित होने पर) उन मूल परमेश्वर सर्व भूतेश्वर परमात्मा ने अपनी इच्छा से विकारी प्रधान और अविकारी पुरूष में प्रविष्ट होकर उनको क्षोभित किया। जिस प्रकार क्रियाशील न होने पर भी गन्ध अपनी सन्निधिमात्र से मन को क्षोभित कर देता है उसी प्रकार परमेश्वर भी अपनी सन्निधिमात्र से ही प्रधान और प्रकृति को प्रेरित करते हैं।। बह पुरूषोत्तम ही इनको क्षोभित करने वाले हैं और वे ही क्षुब्ध होते हैं। संकोच और विकास वाली प्रकृति भी इन्ही की शक्ति है। विष्णु आदि ईश्वरो के भी ईश्वर वे श्रीभगवान ही समष्टि-व्यष्टि रूप,विधाता आदि जीव रूप तथा महत् तत्व आदि रूप से स्थित हैं ।। सर्गकाल के उपस्थित होने पर गुणों की साम्यावस्था रूप प्रधान जव विष्णु के क्षेत्रज्ञ रूप से अधिष्ठित हुआ तव उससे महत् तत्व की उत्पत्ति हुई ,उत्तपन्न हुए महान को प्रधान ने आवृत किया:महत् तत्व सात्विक, राजस तथा तामस तीन प्रकार का है किन्तु जिस प्रकार बीज छिलके से समभाव से ढका रहता है वैसे ही त्रिविध महत तत्व सब ओर से प्रधान द्वारा घिरा हुआ है। फिर इसी से तीन प्रकार (सात्विक, राजस तथा तामस) का अहंकार उत्पन्न हुआ ।यह त्रिगुणमय होने से इन्द्रिय तथा भूतादि एवं उनके अधिष्ठात देवता सवका कारण है। प्रधान से जैसे महत तत्व व्याप्त है वैसे ही यह अहंकार चारों ओर से महत तत्व से व्याप्त है। भूतादि नामक तामस अहंकर ने विकृत होकर शब्द तन्मात्रा और उससे शब्द गुण वाले आकाश की रचना की।उस भूतादि नामक तामस अहंकर ने शब्द तन्मात्रा रूप आकाश को व्याप्त किया। फिर शब्द तन्मात्रा रूप आकाश ने विकृत होकर स्पर्श तन्मात्रा की रचना की। उससे बलवान वायु की उत्पत्ति हुई ।उसका गुण स्पर्श हुआ।आकाश ने वायु को आवृत किया। फिर स्पर्श तन्मात्रा रूप वायु ने विकृत होकर रूप तन्मात्रा की रचना की। उस से तेज उत्पन्न हुआ ,उसका गुण रूप कहा जाता है।फिर तेज ने भी विकृत होकर रस तन्मात्रा की सृष्टी की।उससे रस गुण वाला जल बना।।रस तन्मात्रा रूप जल ने विकृत होकर गन्ध तन्मात्रा की रचना की तथा उससे पृथ्वी की सृष्टी हुई ।। उन उन आकाश आदि भूतों में तन्मात्रा है अर्थात उनके गुण शब्द आदि ही हैं।इसलिए वे गुण रूप या तन्मात्रा ही हैं। तन्मात्राओ में विशेष भाव नहीं है इसलिए उनकी अविशेष संज्ञा है। यह तन्मात्रा शांत घोर अथवा मूढ़ नही हैं अर्थात इनका सुख दुख अथवा मोह रूप से अनुभव नही हो सकता। इस प्रकार यह तामस अहंकर की सृष्टी कही गई ।। दस इन्द्रियाँ राजस अहंकार से तथा उनके अधिष्ठात देवता सात्विक अहंकार से उत्पन्न कहे जाते हैं । (सात्विक मन)भी।। त्वक, चक्षु,नासिका, जिव्हा, क्षोत्र-'ये पाँचों बुद्धि की सहायता से शब्द आदि विषयों को ग्रहण करती हैं। पायु(गुदा),उपस्थ,हस्त,पाद और वाक्-ये सभी कर्म इन्द्रियाँ है।आकाश, वायु, तेज, जल, धरती यह उत्तरोत्तर क्रमशः शब्द , स्पर्श आदि गुणों से युक्त हैं। ये

पाँचों भूत शांत, घोर तथा मूड़ हैं। अतः ये विशेष कहलाते हैं। इन सभी भूतों में पृथक्- 2 शक्तियाँ हैं। अतः वे परस्पर पूर्णतः मिले विना सृष्टि नहीं कर सकते। इसलिए एक दूसरे के आश्रय रहने वाले और एक ही संघात की उत्पत्ति के लक्ष्य वाले महत तत्व से लेकर विशेष पर्यंत प्रधान के इन सभी विकारों ने पुरूष से अधिष्ठित होने के कारण परस्पर मिलकर सर्वथा एक होकर प्रधान तत्व के अनुग्रह से अण्ड की उत्पत्ति की।।जल के वुलवुले के समान क्रमशः भूतों से बड़ा हुआ वह गोलाकार और जल पर स्थित अण्डा हिरण्यगर्भ श्री भगवान का महा अति उत्तम प्राकृत आधार हो गया।उसमें वे अव्यक्त जगत पति श्रीभगवान विष्णु ही व्यक्त रूप से हिरण्यगर्भ रूप होकर विराजमान हुए। उन हिरण्यगर्भ का सुमेरू अल्प (गर्भ को ढकने वाली झिल्ली),अन्य पर्वत, जरायु (गर्भाशय),समुद्र गर्भ -स्थ रस था। उस अण्ड में ही पर्वत, द्वीप आदि के साथ धरती ,समस्त लोक,ग्रह,नक्षत्र, देव,मनुष्य, समस्त जीव प्रकट हुए। वह अण्ड पूर्व पूर्व की अपेक्षा दस दस गुण अधिक जल , अग्नि,वायु तत्व और आकाश तथा तामस अहंकर आदि से व्याप्त है। यह अण्ड मूल परा से व्याप्त है और यह अनन्त है, इसमे ऐसे-ऐसे कोटि कोटि अण्ड स्थित हैं। इस प्रकार नारियल के फल का भीतरी बीज बाहर से कितने ही छिलकों से व्याप्त है ,वैसे ही यह अण्ड इन सात प्राकृतिक आवरण से ढका है। उसमें स्थित हुए परमेश्वर श्रीभगवान स्वयं ही ब्रह्मा होकर (रजोगुण विशिष्ट) जगत को रचते हैं, विष्णु होकर(सत्व गुण) संसार का पालन करते हैं तथा अंत में रूद्र रूप धारण कर संहार करते हैं और समस्त विश्व को जलमय करके शेषशैय्या पर शयन करते हैं।

10.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन से आपने सृष्टि सिद्धान्त से सम्बन्धित वैदिक, पौराणिक, दार्शनिक एवं ज्योतिषीय अवधारणाओं के साथ आधुनिक विज्ञान जगत् द्वारा स्वीकृत नवीनतम सिद्धान्तों का अध्ययन किया एवं उनको समझा। उपर्युक्त सभी तथ्यों को ध्यान में रखकर यदि हम गम्भीर अनुशीलन करते हैं तो यह स्पष्ट हो जाता है कि वैदिक वाङ्मय में प्रतिपादित हिरण्यगर्भ, सूर्यसिद्धान्त के द्वारा वर्णित हिरण्यगर्भ से उत्पन्न अनिरूद्ध एवं भास्कराचार्य द्वारा प्रतिपादित प्रकृति-पुरुष का संकर्षण स्वरूप सृष्टिकर्त्ता ये सभी आधुनिक वैज्ञानिकों द्वारा प्रतिपादित 'बिग बैंग थ्योरी' के मूलाधार एवं बीज रूप ही हैं। जिससे की यह समग्र सृष्टि उत्पन्न हुई। इस सिद्धान्त को हमारे भारतीय मनीषियों ने कथानक के माध्यम से मूल रूप में स्थापित किया है। अतः निर्भ्रान्त रूप में यह सिद्धान्त भारतीय मनीषा का आविष्कार है।

10.6 शब्दावली

सृजन = बनाना (सृष्टि करना)

निक्षिप्त = डालना

वशी = अपनी ईच्छा के अनुरूप सभी विषय जिसके वश में रहें।

क्षोभ = सृष्टि की ईच्छा।

प्रकृति = सृष्टि की उत्पत्ति में कारण।

पुरुष = ईश्वर

आवृत्त = घिरा हुआ

निर्भ्रान्त = निःसन्देह

मनीषा = बुद्धि

10.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. ग 2. घ 3. ख 4. ग 5. क 6. ख 7. ग 8. ग

10.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

(1) अर्वाचीन ज्योतिर्विज्ञानम्

(2) ऋग्वेद संहिता

(3) तैत्तरीय ब्राह्मण

(4) तैत्तरीयोपनिषद्

(5) सूर्यसिद्धान्त

10.9 सहायक पाठ्यसामग्री

1. ऋग्वेद
2. अष्टादश पुराण
3. संहिता ग्रन्थ
4. वेदांग
5. स्मृति ग्रन्थ
6. सूक्त

10.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. संस्कृत वाङ्मय का परिचय दीजिये।
2. सांख्य मतानुसार सृष्टि का क्रम बतलाइये।
3. वेदों में प्रतिपादित सृष्टि का वर्णन कीजिये।
4. सृष्टि विषयक सूक्तों का लेखन कीजिये।
5. पुराणों के अनुसार सृष्टि का उल्लेख कीजिये।

खण्ड – 3
सृष्टि के दार्शनिक तत्व

इकाई -1 सांख्य दर्शन के अनुसार सृष्टि प्रक्रिया

इकाई की रूपरेखा

1.1 प्रस्तावना

1.2 उदेश्य

1.3 विषय परिचय

1.4 सांख्य दर्शन का स्वरुप

1.4.1 सृष्टि उत्पत्ति में सांख्य दर्शन का मत –

1.5 बोधात्मक प्रश्न

1.6 योग में सृष्टि

1.7 सांख्य दर्शन में सृष्टि-सम्बन्धी चिन्तन

1.8 सांख्य एवं काश्मीर शैव दर्शन में सृष्टि

1.8.1 सांख्य का निरीश्वरवादी विचार

1.9 सांख्य का निरीश्वरवादी विचार

1.10 सारांश

1.11 बोधात्मक प्रश्नों के उत्तर

1-12 साहायक उपयोगी सामग्री—

1.13 निबंधात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

प्रिय अद्ध्येताओ इस से पूर्व की इकाईयों में आप ने सृष्टि विषयक तत्वों का गहनता से अद्ध्ययन किया अब इसी क्रम में हम इस "पाठ्यक्रम" { वैदिक सृष्टि विज्ञान } के "प्रथम पत्र" वैदिक विज्ञान की अवधारणा नामक पत्र का तृतीय खण्ड { सृष्टि के दार्शनिक तत्व } की प्रथम इकाई शांख्य दर्शन के अनुसार सृष्टि प्रक्रिया नामक इअकीए के विषय में व्यापक रूप से अध्ययन करेंगे | सर्व प्रथम जानते हैं कि दर्शनशास्त्र क्या है | दर्शन उस विद्या को कहा जाता है जिसके द्वारा तत्व का ज्ञान हो सके। तत्व दर्शन या दर्शनशात्र का अर्थ है तत्व का ज्ञान। मानव के दुखों की निवृति के लिए या तत्व ज्ञान कराने के लिए ही भारत में दर्शन का जन्म हुआ है भारतीयर्शन आस्तिक तथा नास्तिक दो भागों में विभक्त है। वेदोंकी सत्ता को स्वीकार करने वाले दर्शन आस्तिक दर्शन तथा वेदों के अस्तित्व को स्वीकार ना करने वाले दर्शन नास्तिक दर्शन कहलाते है। यह न्याय, वैशेशिक, साख्य, योग, मीमांसा तथा वेद ये छः दर्शन आस्तिक दर्शन की श्रेणी में, चार्वाक बौध तथा जैन नास्तिक दर्शन कहलाते है। प्रायः सभी दर्शनों में सृष्ट्युत्पत्ति के विषय में वर्णन किया गया है। इसी क्रम में हम इस विषय का विस्तृत रूप से अध्ययन कर्मे जा रहे हैं |

1.2 उदेश्य

इस इकाई के निम्नलिखित उद्देश्य हैं –

1- दर्शन शास्त्र का परिचय जान सकेंगे |

1- दार्शनिक सृष्टि संरचना को बताने में समर्थ होंगे।

2 - सृष्टि की संरचना का समय बता सकेंगे।

3- सृष्टि संरचना के स्वरूपकी वैदिक अवधारणा की व्याख्या कर सकेंगे।

4- पुराणों में सृष्टि संरचना का वर्णन कर सकेंगे

5- दर्शन शास्त्र के अनुसार सृष्टि संरचना के स्वरूप का विवेचन करने में समर्थ होंगे।

1.3 विषय परिचय

सांख्य दर्शन एक प्राचीन और महत्वपूर्ण दर्शन है। वेदान्त के बाद सांख्य को ही सबसे प्रमुख दर्शन माना जाता है। यह द्वैतवाद का समर्थक है। इसमें दो प्रमुख सत्ता प्रकृति और पुरुष हैं। प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्द ही इसके मुख्य प्रमाण माने जाते हैं। इसमें मौलिक तत्त्वों की संख्या बतायी गयी है। इन तत्त्वों की संख्या कहीं चौबीस, कहीं पच्चीस और कहीं छब्बीस मानी गयी है। वस्तुतः इसकी संख्या पच्चीस ही सर्वमान्य है। इन तत्त्वों का ज्ञान प्राप्त कर लेने से किसी भी आश्रम का व्यक्ति चाहे व 'जटी' हो, 'मुण्डी' हो या 'शिखी' हो, दुःखों से मोक्ष प्राप्त कर सकता है।

1.4 सांख्य दर्शन का स्वरुप

सांख्य दर्शन, चार्वाक, बौद्ध और जैन दर्शनों के इस सिद्धान्त से सहमत नहीं है कि पृथ्वी, जल, तेज और वायु के परमाणु से जगत् की उत्पत्ति होती है। इसके अनुसार मन, बुद्धि, अहंकार जैसे सूक्ष्म तत्त्वों की उत्पत्ति भौतिक परमाणुओं से नहीं हो सकती। इसके लिए ऐसे मूल कारण की आवश्यकता है जो इन स्थूल पदार्थों के साथ-साथ सूक्ष्म तत्त्व जैसे- मन, बुद्धि, अहंकार की भी उत्पत्ति कर सके। प्रायः ऐसा देखा जाता है कि कारण कार्य की अपेक्षा सूक्ष्म और उसमें अन्तर्निहित रहता है। इसलिए इस सृष्टिट का मूल कारण ऐसा होना चाहिए जो जड़ होने के साथ ही सूक्ष्मातिसूक्ष्म हो, जो अनादि, अनन्त और व्यापक रूप से जगत् के पदार्थों का कारण हो और जिससे विषय की उत्पत्ति होती रहे। इसी मूल कारण को सांख्य दर्शन में प्रकृति के नाम से सम्बोधित किया गया है। यह सभी विषयों का मूल कारण है। यह स्वयं अनादि है। यह अचेतन सत्त्व, रज और तम गुणों की साम्यावस्था से युक्त है। इसे 'प्रसववन्ती' भी कहा गया है। यह वह तत्त्व है जो सबका कारण तो है, पर स्वयं किसी का कार्य नहीं है। समस्त विषयों का अनादि मूलस्रोत होने के कारण यह प्रकृति नित्य और निरपेक्ष है, क्योंकि सापेक्ष और अनित्य पदार्थ जगत् का मूल कारण नहीं हो सकता। मन, बुद्धि और अहंकार जैसे सूक्ष्म कार्यों का आधार होने के कारण प्रकृति एक गहन, अनन्त और सूक्ष्मातिसूक्ष्म शक्ति है जिसके द्वारा संसार की सृष्टिट और संहार का कार्य सम्पादित होता रहता है।

प्रकृति के बाद सांख्य दर्शन का दूसरा तत्त्व पुरुष या आत्मा है । इसका अस्तित्व निर्विवाद है। यह आत्मा, शरीर, इन्द्रिय, मन और बुद्धि से भिन्न है। यह सांसारिक विषय नहीं है। यह सदैव ज्ञाता के रूप में रहात है, यह कभी ज्ञान का विषय नहीं हो सकता। यह पुरुष या आत्मा केवल दृष्टा है, जो प्रकृति कर परिधि से परे और शुद्ध चैतन्य है। इसमें कोई क्रिया नहीं होती। यह निष्क्रिय और अविकारी होता है। वह नित्य सर्वव्यापी सत्ता है, जो सभी विषयों से पृथक और राग-द्वेष से परे है।

1.4.1 सृष्टि उत्पत्ति में सांख्य दर्शन का मत .

सांख्य दर्शन के अनुसार इस प्रकृति और पुरुष के संयोग से ही सृष्टि होती है । जब प्रकृति पुरुष के संसर्ग में आती हैं, तो उसकी साम्यावस्था भंग हो जाती है। और उसमें विषमता उत्पन्न हो जाती है। दस स्थिति से प्रकृति गतिशील हो जाती है, जिसके परिणामस्वरूप महदादिक्रम से अन्य सभी तत्त्वों का विकास होने लगता है तभी संसार की उत्पत्ति होती है। यह प्रकृति पुरुष का संयोग एक विशेष प्रकार का होता है, जब तक इन दोनों का संयोग नहीं होता तब तक संसार की सृष्टि नहीं हो सकती। अकेला पुरुष सृष्टि नहीं कर सकता क्योंकि यह निष्क्रिय है। इसी तरह अकेली प्रकृति सृष्टि नहीं कर सकती, क्योंकि वह जड़ है। प्रकृति की क्रिया पुरुष के चैतन्य से निरूपित होती है, तभी सृष्टि का विकास होता है। इस प्रकार सांख्य दर्शन प्रकृति और पुरुष इन दो तत्त्वों के माध्यम से जगत् की उत्पत्ति मानता है। निरपेक्ष प्रकृति शब्द अपने आप में विरोधी है, क्योंकि यह पुरुष के सम्पर्क के बिना विकसित ही नहीं हो सकती। भले ही वह सम्पर्क वास्तविक हो, आभासिक हो या पुरुष की उपस्थिति मात्र ही हो। अगर यह पूर्ण है तो पुरुष के प्रयोजन के लिए क्यों सृष्टिट करेगी? और अगर जड़ एवं अन्धी है तो इस प्रयोजन की पूर्ति कैसे करेगी? अगर प्रकृति नर्तकी, नारी की तरह है तो वह पुरुष के

प्रयोजन की पूर्ति करती है वह ;अन्धी है, शर्मीली है और ज्ञानी पुरुष के समक्ष पुनः उपस्थित नहीं होती है, वह इन्द्रधनुष के सात रंगों की तरह पुष्प को आकर्षित करती है तो प्रकृति निर्वैयक्तिक न होकर वैयक्तिक (परसनल) होगी, वह पूर्ण निरपेक्ष न होकर सापेक्ष होगी। प्रकृति ही नानारूपों से अपने को बाँधती है, संसरण करती है, मुक्त होती है, यह कथन क्या प्रकृति को सापेक्ष सिद्ध नहीं करता? अगर ज्ञाता पुरुष के लिए वह निवृत्त हो जाती है तो पूर्ण एवं नित्य व्याप्त कैसे होगी? प्रकृति के ये वर्णन वेदान्त की माया की तरह हैं और आचार्य शंकर ने इसी आधार पर प्रकृति को माया के रूप में रूपान्तरित कर मायावाद का तार्किक सिद्धान्त प्रस्तुत किया है।

1.5 बोधात्मक प्रश्न

1ण् सांख्य दर्शन, चार्वाक, बौद्ध और जैन दर्शनों के इस सिद्धान्त से सहमत नहीं है कि पृथ्वी, जल, तेज और वायु के परमाणु से जगत् की उत्पत्ति होती है।

क. सत्य

ख. असत्य

2. दर्शन शास्त्र के अनुसार गुण कितने होते हैं

क. 3 ख. 24 ग. 25 घ. कोई नहीं

3. योग भारतीय दर्शन की गौरवपूर्ण उपलब्धि है।

क. सत्य

ख. असत्य

4. भारत में दर्शन उस विद्या को कहा जाता है जिसके द्वारा तत्त्व का ज्ञान हो सके। तत्त्व दर्शन या दर्शन का अर्थ है तत्व का ज्ञान।

क. सत्य

ख. असत्य

1.6 योग में सृष्टि

योग भारतीय दर्शन की गौरवपूर्ण उपलब्धि है। योग दर्शन में सृष्टि की प्रक्रिया सांख्य दर्शन में स्वीकृत तत्त्वों के आधार पर होती है। लेकिन दोनों दर्शनों में सृष्टि प्रक्रिया को लेकर जो मूलभूत अन्तर है वह यह है कि सांख्य दर्शन पुरुष और प्रकृति के संयोग से सृष्टि मानता है और उसमें संयोग को अपने आप मानता है वह किसी पर निर्भर नहीं रहता, परन्तु योग दर्शन सृष्टिट को पुरुष और प्रकृति का संयोग अवश्य मानता है, लेकिन दोनों के संयोग के लिए वह ईश्वर पर निर्भर रहता है। उसका यह विचार है कि बिना ईश्वर की इच्छा से पुरुष और प्रकृति का संयोग कभी भी सम्भव नहीं है। अतः सृष्टि की प्रक्रिया में ईश्वर ही प्रमुख तत्त्व है और जितने भी तत्त्व सृष्टि के विकास में पाये जाते हैं, वह सब इसके अधीनस्थ हैं और उसी के निर्देश से सक्रिय होते हैं।सांख्य दर्शन की तरह योग में भी प्रकृतिपुरुष-सानिध्य से सृष्टि की उत्पत्ति स्वीकार की गयी है। पुरुष-सम्पर्क मात्र से प्रकृति के

तीनों गुणों की साम्यावस्था में विक्षोभ उत्पन्न होता है। इस विक्षोभ की स्थिति में प्रत्येक गुण एक दूसरे पर आधिपत्य जमाने लगते हैं और सत्त्वगुण के आधिपत्य से महत् या बुद्धि-तत्त्व की उत्पत्ति होती है, तदनन्तर अहंकार, एकादश इन्द्रियों पंचतन्मात्राओं एवं पंचमहाभूतों की उत्पत्ति होती है। स्पष्ट है कि सांख्य की सृष्टि एवं सृष्टितत्त्व-विकास के सिद्धान्त को योग दर्शन में स्वीकार कर लिया गया है।

कभी ऐसा भ्रम भी होता है कि सांख्य तो ईश्वर को नहीं मानता किन्तु योगदर्शन में ईश्वर को माना गया है अतः ईश्वर ही सृष्टिट का कर्ता, पालक एवं संहारक है। यहाँ यह बात स्पष्ट करना आवश्यक है कि योग ईश्वर की सत्ता को स्वीकार करता है किन्तु उसे जगत् का कर्ता पालक एवं सहारक नहीं मानता है। वह एक पुरुषविशेष है। वह तो जीवात्माओं के कर्मा ं के अनुसार पुरस्कार या दण्ड स्वरूप स्वर्ग नरकादि देने वाला भी नहीं है। वह मोक्ष प्रदान करने वाला भी नहीं हैं। वह तो मोक्ष मार्ग में निहित कठिनाइयों को मात्र दूर करने वाला है। इस प्रकार ईश्वर को सृष्टिट का निमित्त कारण नहीं माना जा सकता। न ही सृष्टिट के सम्बन्ध में ईश्वर एक तार्किक आवश्यकता के रूप में ही माना जा सकता। सांख्य की तरह योग दर्शन में भी प्रकृति तत्त्व सृष्टिट का उपादान कारण है निमित्त कारण प्रकृतिपुरुष-सान्निध्य है। स्पष्ट है कि सृष्टिट की व्याख्या को लेकर योग दर्शन में सांख्य के द्वैतवादी विचारों को यथावत् स्वीकार किया गया है। इस स्थिति में सांख्य सृष्टिट के सन्दर्भ में जो आक्षेप लगाए जाते हैं वे सम्पूर्ण आक्षेप योग दर्शन पर भी उठाए जाते हैं। इसके अतिरिक्त यह भी कहा जा सकता है कि प्रकृतिपुरुष-सम्बन्ध के लिए ईश्वर को मध्यस्थ मान लेने पर योगदर्शन की सृष्टिट-व्याख्या अधिक धार्मिक एवं संगत हो जाती किन्तु ऐसा नहीं है। पुनः सम्बन्ध के लिए ईश्वर को मान लेने पर सृष्टि की एकेश्वरवादी व्याख्या धार्मिक वृत्ति को अधिक पुष्ट भी कर सकती है। सांख्य के ही तत्त्वमीमांसीय आधार पर विवेक-ख्याति प्राप्ति के लिए आचारों का प्रतिपादन ही योग का ध्येय रहा है। इस स्थिति में योगदर्शन में सृष्टि की उत्पत्ति की अवधारणा को अधिक महत्त्व नहीं दिया गया है। योग में ईश्वर की अवधारणा के महत्त्व को न्याय-वैशेषिक सम्प्रदाय में सृष्टि से जोड़ने का प्रयास किया गया है। इस दृष्टि से न्याय-वैशेषिक में सृष्टि की अवधारणा पर विचार करना आवश्यक है।

1.7 सांख्य दर्शन में सृष्टि-सम्बन्धी चिन्तन

उद्भव एवं विकास

प्राचीन काल से ही भारतीय दर्शनों में सांख्य का स्थान बहुत महत्त्वपूर्ण है। भारतवर्ष में अन्य दर्शनों की अपेक्षा सांख्य दर्शन का अपना एक विशेष स्थान है। अपनी विशेषता के कारण ही इस दर्शन ने अनेक दार्शनिकों को अपनी ओर आकृष्ट किया है। इन विचारों की पुष्टि महाभारत में भी होती है। इस दर्शन से प्रभावित होकर ही वासुदेव शरण अग्रवाल ने अपनी पुस्तक सांख्य दर्शन में कहा है कि भारतीय संस्कृति में किसी समय सांख्य दर्शन का अत्यन्त ऊँचा स्थान था। देश के उदात्त मस्तिष्क सांख्य की विचार-पद्धति से सोचते थे।

सांख्य शब्द सम् पूर्वक 'चक्षिः' धातु से बना है। इसका अर्थ है- सम्यक् ख्यानम्' अर्थात् 'सम्यक् विचार' । अनेक विद्वान् सांख्य शब्द के अन्तर्गत 'संख्या' को गणनापरक मानते हैं और गणनार्थक 'संख्या' शब्द से सांख्य की उत्पत्ति मानते हैं। रिचर्ड गावे का मत है कि संख्या शब्द का अर्थ गिनती से है और गिनती सांख्य में प्राप्त होती है।

सांख्य दर्शन की उत्पत्ति के बारे में उपरोक्त कथन की पुष्टि महाभारत के निम्न श्लोक से भी होती है -

सांख्यदर्शनमेतावत् परिसंख्यानुदर्शनम्।
संख्याः प्रकुर्वते चैव प्रकृतिं च प्रचक्षते।।
तत्त्वानि च चतुर्विंशत् परिसंख्याय तत्त्वतः।
सांख्या सह प्रकृत्या तु निस्तत्त्वः पंचविंशकः।।

शंकराचार्य भी सांख्यशास्त्र को कापिलशास्त्र मानते हैं। परन्तु इन्हें सगर के 60 हजार पुत्रों को भस्म करने वाले वासुदेव नामक वैदिक कपिल से भिन्न बताया है। गावें ने भी कपिल के विषय में कहा है कि सांख्य के उपदेश कपिल किसी एक कल्प में ब्रह्मा या हिरण्यगर्भ के पुत्र, किसी दूसरे में अग्नि के अवतार तथा किसी और कल्प में कर्दम और देवहूति के पुत्र भी हो सकते हैं। उपरोक्त बात वाल्मीकि रामायण में भी विस्तारपूर्वक वर्णित है कि, सगरपुत्रों के यह कहने पर कि कपिल ने घोड़ा चुराया, सुनकर महर्षि कपिल क्रोधाविष्ट हुए और उन्होंने सबको भस्म कर दिया। रामायण, महाभारत के समान उपर्युक्त घटना का उल्लेख विष्णुपुराण, वायुपुराण, पद्मपुराण, स्कन्दपुराण, गरुडपुराण, और मत्स्यपुराण में भी उपलब्ध होता है। सांख्याचार्य कपिल मुनि के प्रशिष्य पंचशिखाचार्य ने भी कहा है कि सृष्टि के आदि में विष्णुरूप भगवान् ने योगबल से एक चित्त का निर्माण किया, और स्वयं एक अंश से उसमें प्रवेश कर कपिलरूप को धारण कर महर्षि कपिल के रूप में करुणा से युक्त होकर परमतत्त्व की जिज्ञासा करने वाले अपने प्रियशिष्य 'आसुरि' को सांख्य दर्शन के तत्त्वों का उपेदश दिया। इस प्रकार कपिल का उल्लेख अन्य प्राचीन साहित्य में भी देखने को मिलता है। जैसे प्रहलाद-पुत्र असुर कपिल , धर्मसूत्रकार कपिल , उपपुराणकार कपिल , और विश्वामित्र-पुत्र कपिल , परन्तु इनमें से कोई भी सांख्य के प्रवर्तक नहीं हैं, केवल देवहूति कर्दम प्रजापति के पुत्रा भगवान् कपिल ही सांख्य के प्रवर्तक हैं। सांख्य विचारधारा में कपिल के बारे में अनेक भिन्न मत प्राप्त हाने के कारण कपिल को सांख्य दर्शन का प्रवर्तक मानने पर वुफछ आधुनिक विद्वान् इन्हें ऐतिहासिक व्यक्ति मानने के पक्ष में नहीं है। कीथ, कोलब्रुक, जैकोबी तथा मैक्समूलर आदि प्रसिद्ध दार्शनिक इन विचारों में अग्रणी हैं। महामहोपाध्याय गोपीनाथ कविराज ने भी कहा है कि कपिल मुनि चित्तविहीन थे, अतः वे मनुष्य शरीर में पृथ्वी पर कभी भी वर्तमान नहीं थे। उन्होंने केवल जिज्ञासु आसुरि को सांख्य-तन्त्र का उपदेश देने मात्र के लिए योगबल से चित्त का निर्माण कर लिया था । इस विचार का खण्डन करते हुए महान् दार्शनिक विज्ञानभिक्षु ने तो स्पष्ट कहा है कि प्सर्ग के आदि में आदि विद्वान् स्वयम्भू के रूप में उत्पन्न विष्णु ने ही योगबल से स्वनिर्मित चित्त में अंशतः प्रविष् होकर कपिल नाम से जिज्ञासु आसुरि को तत्त्व का उपेदश दिया था । पर शरीर बिना हुए

निर्माण-चित्त का अधिष्ठान (आधार) क्या रहा होगा और तब उनका उपदेश देना केसे सम्भव हुआ होगा? इससे तो यही सिद्ध होता है कि कपिल को काल्पनिक मानना उचित नहीं है। उदयवीर शास्त्री भी कविराज के मत से सहमत नहीं हैं । राधाकृष्णन् भी कपिल को ऐतिहासिक पुरुष मानते हैं। उनकी मान्यता है कि कपिल नामक एक व्यक्ति अवश्य था, जो सांख्य वाङ्मय के लिए उत्तरदायी है ।

1. 8 सांख्य एवं काश्मीर शैव दर्शन में सृष्टि

सांख्य दर्शन में ईश्वर को स्थान नहीं मिला है। इसलिए इस दर्शन को मुख्य रूप से फ्निरीश्वरवादी सांख्य‘ के रूप में जाना जाता है। सांख्य दार्शनिकों का दूसरा पक्ष जो साख्य को ईश्वरवादी बताता है, उनमें मुख्य रूप से आचार्य विज्ञानभिक्षु का नाम अग्रणी है। इसके अतिरिक्त उपनिषद्, महाभारत, गीता, मनुस्मृति तथा पुराणों में उलिखित सांख्य दर्शन ईश्वरवादी हैं। इन दर्शनों में ईश्वर को प्रमुख माना गया है और प्रकृति तथा पुरुष को इनके आधीन माना गया है। इसप्रकार निरीश्वरवादी और ईश्वरवादी सांख्य की विचारधारा को क्रमशः निम्न प्रकार से व्यक्त किया गया है।

1ण्8ण्1 सांख्य का निरीश्वरवादी विचार

सांख्य दर्शन को सर्वप्रथम वार्षगण्य ने निरीश्वरवादी सांख्य के रूप में प्रतिष्टि किया। उनके मतानुसार प्रकृति को सृष्टि के लिए परमेश्वर की आवश्यकता नहीं है। प्रवृत्ति की दृष् िसे वे प्रकृति को सर्वथा स्वतन्त्रा मानते हैं। उनके मत को मानने वाले अन्य दार्शनिक भी कहते हैं कि जिस प्रकार प्रकृति और पुरुष के अचेतन शरीर की एक-दूसरे को लक्ष्य करके प्रवृत्ति होती है, उसी प्रकार प्रधान की भी प्रवृत्ति होती है। ईश्वरकृष्ण की सांख्यकारिका में भी निरीश्वरवादी सांख्य का विचार दृष्टि गोचर होता है। बालगंगाधर तिलक भी सांख्यकारिका के मत को निरीश्वरवादी सांख्य मानते हैं। ईश्वरकृष्ण अचेतन प्रकृति में स्वतः प्रवृत्ति ही स्वीकार करते हैं। प्रकृति की प्रेरणा के लिए वे किसी चेतन तत्त्व की अपेक्षा स्वीकार नहीं करते। सांख्यकारिका की टीका युक्तिदीपिका में भी पुरुष के मोक्ष के लिए वे प्रकृति की ही प्रवृत्ति स्वीकार करते हैं, चेतन की प्रवृत्ति नहीं। आचार्य गौडपाद का भी मत है कि ईश्वर तो निर्गुण है, उससे सत्त्व आदि गुणों वाली प्रजा ;सृष्टिद्ध की सृष्टि केसे होगी? वाचस्पति मिश्र भी प्रकृति की अचेतन प्रवृत्ति को स्वीकार करते हैं।

1.9 ण्सांख्य का निरीश्वरवादी विचार

सांख्य दर्शन को सर्वप्रथम वार्षगण्य ने निरीश्वरवादी सांख्य के रूप में प्रतिष्टि किया। उनके मतानुसार प्रकृति को सृष्टि के लिए परमेश्वर की आवश्यकता नहीं है। प्रवृत्ति की दृष् िसे वे प्रकृति को सर्वथा स्वतन्त्रा मानते हैं। उनके मत को मानने वाले अन्य दार्शनिक भी कहते हैं कि जिस प्रकार प्रकृति और पुरुष के अचेतन शरीर की एक-दूसरे को लक्ष्य करके प्रवृत्ति होती है, उसी प्रकार प्रधान की भी प्रवृत्ति होती है। ईश्वरकृष्ण की सांख्यकारिका में भी निरीश्वरवादी सांख्य का विचार दृष्गिोचर होता है। बालगंगाधर तिलक भी सांख्यकारिका के मत को निरीश्वरवादी सांख्य मानते हैं। ईश्वरकृष्ण अचेतन प्रकृति में स्वतः प्रवृत्ति ही स्वीकार करते हैं। प्रकृति की प्रेरणा के लिए वे किसी चेतन तत्त्व की अपेक्षा स्वीकार नहीं करते। सांख्यकारिका की टीका

युक्तिदीपिका में भी पुरुष के मोक्ष के लिए वे प्रकृति की ही प्रवृत्ति स्वीकार करते हैं, चेतन की प्रवृत्ति नहीं। आचार्य गौडपाद का भी मत है कि ईश्वर तो निर्गुण है, उससे सत्त्व आदि गुणों वाली प्रजा ;सृष्टिद्ध की सृष्टि केसे होगी? वाचस्पति मिश्र भी प्रकृति की अचेतन प्रवृत्ति को स्वीकार करते हैं द्य उनका मत है कि प्रकृति की प्रवृत्ति स्वतः होती है, ईश्वर द्वारा अधिष्ति होने पर नहींऋ क्योंकि चेतन की प्रवृत्ति या तो स्वार्थवश स्वीकार की जा सकती है अथवा करुणावश। लेकिन ये दोनों को नहीं मानते। उनकी मान्यता है कि इस जगत् की सृष्टि में भगवान् का कोई स्वार्थ नहीं हो सकता क्योंकि वे तो आप्तकाम हैं। करुणावश भी यह सृष्टि नहीं हो सकतीऋ क्योंकि यदि ईश्वर करुणा से सृष्टि करते तो उन्हें केवल सुखी प्राणियों की ही सृष्टि करनी चाहिए, सुख दृ दुःख आदि को भोगने वाले जीवों की नहीं। सांख्यचन्द्रिका में भी वाचस्पति मिश्र के पूर्वोक्त मत का ही अनुसरण किया गया है। अनिरुद्ध का भी मत निरीश्वरवादी है। उनके विचार से सांख्य-सूत्रा ईश्वर की सत्ता ही अस्वीकार करते हैं। इन्होंने, ईश्वर जगत् का निमित्त कारण है, न्याय दर्शन के इस विचार का खण्ड किया और कहा कि ईश्वर या तो शरीरी होगा या अशरीरी और इन दोनों ही स्थितियों में उसका कर्तृत्व असम्भव है। इसलिए ईश्वर इस जगत् का ड्डष नहीं हो सकता। इस प्रकार अनिरु(न्याय दार्शनिकों के ईश्वर-सम्बन्धी विचार के विरोधी हैं और निरीश्वरवादी सांख्य के पोषक हैं। उनकी स्पष् मान्यता है कि न्याय दर्शन में ईश्वरकी सि(ि का कोई प्रमाण नहीं है। इन्होंने अपने सांख्यसूत्रा के पाँचवें अध्याय की वृत्ति में उपरोक्त बात को स्पष् करते हुए कहा है कि ईश्वर यदि इस जगत् का स्वतन्त्रा कर्ता है तो यह मानना होगा कि वह जीवों के कर्मों की अपेक्षा किए बिना ही सष् ि कर सकता है। यदि यह माना जाये कि जीवों के कर्मों के आधार पर ईश्वर सृष्टि करता है तो पिफर उस सृष्टि में उसका क्या योगदान है? अतः ईश्वर का जगत्-ड्डष होना स्पष्ट नहीं होता। सृष्टि में ईश्वर की प्रवृत्ति का हेतु क्या है? ऐसा प्रश्न उठता है। वस्तुतः प्रवृत्ति के दो हेतु े देखे जाते हैं। स्वार्थ एवं परार्थ। सृष्टि करने में ईश्वर का कोई स्वार्थ नहीं हो सकता, इसलिए कि वह अपने में पूर्ण है। यदि यह माना जाये कि उन्होंने सृष्टि परार्थ के वश की है तो इस सृष्टि के दुःऽमय होने की व्याख्या नहीं की जा सकती।

श्सांख्य दर्शन के अनुसार प्रकृति-पुरुष के संयोग से सृष्टिश् होती है। प्रकृति-पुरुष का संयोग केसे होता है यह प्रश्न अत्यन्त जटिल है, जो दार्शनिक इस विचार से सहमत नहीं है, उन्होंने इस पर अनेक आक्षेप भी किये हैं। शध्कराचार्य प्रकृति-पुरुष के संयोग की सम्भावना का निषेध करते हुए कहते हैं कि सांख्य अचेतन प्रकृति तथा उदासीन पुरुष दोनों की स्वतन्त्रा सत्ता का प्रतिपादन करता है तथा इन दोनों का संयोग कराने वाले किसी तृतीय पदार्थ की सत्ता स्वीकार नहीं करता। चन्द्रधर शर्मा भी शध्कर के इस मत का समर्थन करते हैं और कहते हैं कि अचेतन तथा स्वतन्त्रा प्रकृति अधिक से अधिक प्रयोजनरहित तथा यान्त्रिाक जगत् की सृष्टि कर सकती है, प्रयोजनमूलक जगत् की नहीं। सांख्य दार्शनिक कहते हैं कि लंगड़ा व्यक्ति अन्धे के कन्धे पर बैठकर मार्ग दिऽाता रहे तो दोनों अपने गन्तव्य स्थान तक पहुँच सकते हैं। केवल अकेला पंगु या अकेला अन्धा अपने गन्तव्य स्थान तक नहीं जा सकता। इसका ऽण्डन करते हुए शध्कराचार्य कहते हैं कि पंगु और अन्ध दोनों ही चेतन तथा सक्रिय हैं किन्तु सांख्यसम्मत प्रकृति, अचेतन और पुरुष निष्क्रिय हैं। चेतन प्राणी तो परस्पर अपने

उद्देश्य की पूर्ति कर सकते हैं किन्तु अचेतन प्रकृति और निष्क्रिय पुरुष का संयोग नहीं हो सकता। शघ्कराचार्य द्वारा लगाये गये आक्षेपों का समाधान विज्ञानभिक्षु के द्वारा किया गया है। इन्होंने प्रकृति की सृष्टि को स्वतन्त्रा नहीं माना, अपितु ईश्वरेच्छा से होना स्वीकार किया है। इस प्रकार इन्होंने प्रकृति-पुरुष के संयोग कराने वाले तृतीय तत्त्व की सत्ता स्वीकार करली है। आचार्य विज्ञानभिक्षु के मत को अन्य सांख्य दार्शनिक नहीं मानते हैं। चार्वाक बौध जैन तथा न्याय-वैशेषिकों के अनुसार पृथ्वी, जल, तेज और वायु के परमाणु ही समस्त सांसारिक विषयों के कारण हैं, परन्तु सांख्य इस विचार से सहमत नहीं है। सांख्य दार्शनिकों का कहना है कि मन, बुद्धि अहंकार जैसे सूक्ष्म तत्त्वों की उत्पत्ति भौतिक परमाणुओं से नहीं हो सकती क्योंकि कारण कार्य की अपेक्षा सूक्ष्म होता है द्य

1. 10 सारांश

वर्णित इकाई में हमने सांख्य दर्शन के अनुसार दार्शनिक सृष्टि के विषय में गंभीरता से अधययन किया हमने जाना कि . सांख्य दर्शन के अनुसार इस प्रकृति और पुरुष के संयोग से ही सृष्टि होती है । जब प्रकृति पुरुष के संसर्ग में आती हैं, तो उसकी साम्यावस्था भंग हो जाती है। और उसमें विषमता उत्पन्न हो जाती है। दस स्थिति से प्रकृति गतिशील हो जाती है, जिसके परिणामस्वरूप महदादिक्रम से अन्य सभी तत्त्वों का विकास होने लगता है तभी संसार की उत्पत्ति होती है। यह प्रकृति पुरुष का संयोग एक विशेष प्रकार का होता है, जब तक इन दोनों का संयोग नहीं होता तब तक संसार की सृष्टि नहीं हो सकती। अकेला पुरुष सृष्टि नहीं कर सकता क्योंकि यह निष्क्रिय है। इसी तरह अकेली प्रकृति सृष्टि नहीं कर सकती, क्योंकि वह जड़ है। प्रकृति की क्रिया पुरुष के चैतन्य से निरूपित होती है, तभी सृष्टि का विकास होता है।

1.11 बोधात्मक प्रश्नों के उत्तर

1.क

2.क

3.क

4.क

1-12 साहायक उपयोगी सामग्री—

1- ऋग्वेद, सयणाचार्यकृत-भाष्यसंवलिता, अनुवादक पण्डित रामगोविन्द त्रिवेदी, चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी, 2016

2- अथर्ववेद, सयणाचार्यकृत-भाष्यसंवलिता, अनुवादक पण्डित रामगोविन्द त्रिवेदी, चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी, 2016

3- उपनिषत्सञ्चयम्, अनुवादक आचार्य केशवलाल वा- शास्त्री, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान दिल्ली, 2015

4- शतपथ ब्राह्मण, सायणाचार्यकृत-भाष्य, नाग प्रकाशन ज्वाहरनगर दिल्ली, 1990

5- सूर्यसिद्धान्तः - आर्षग्रन्थः, टीकाकार कपिलेश्वरशास्त्री, चौखम्बा संस्कृत संस्थान वाराणसी-2004

6- मनुस्मृति - डा- गजानन शास्त्री, चौखम्बा सुरभारती प्रतिष्ठान वाराणसी, 2002

7- ब्रह्मपुराण - गीताप्रेस गोरखरपुर, विक्रम संवत 2067

8- पद्मपुराण - गीताप्रेस गोरखरपुर, विक्रम संवत 2067

9- शिवपुराण - गीताप्रेस गोरखरपुर, विक्रम संवत 2065

10- श्रीमद्भागवतमहापुराण - गीताप्रेस गोरखरपुर, विक्रम संवत 2066

11- विष्णुपुराण - गीताप्रेस गोरखरपुर, विक्रम संवत 2069

12- मत्स्य पुराण गीताप्रेस गोरखरपुर, विक्रम संवत 2069

13- नारदीय पुराण गीताप्रेस गोरखरपुर, विक्रम संवत 2066

14- ब्रह्मवैवर्तपुराण गीताप्रेस गोरखरपुर, विक्रम संवत 2070

15- भारतीय दर्शन की रूपरेखा - प्रो- हरेन्द्र प्रसाद सिन्हा, मोतीलाल बनारसीदास दिल्ली, 1983

16- भारतीय दर्शन, डा- राधाकृष्णन्, राजपाल एण्ड सन्स दिल्ली -6, 1986

1- ब्रह्माण्ड और सौर परिवार, प्रो- देवी प्रसाद त्रिपाठी, परिक्रमा प्रकाशन दिल्ली, 2006

2- सृष्ट्युत्पत्ति की वैदिक परिकल्पना, विष्णुकान्त शर्मा, प्रतिभा प्रकाशन दिल्ली, 2008

3- सृष्टि उत्पत्ति - रामनाथ गुप्ता, मीरा प्रकाशन, 2019

4- वेद-विज्ञान चिन्तन, प्रो- बृजबिहारी चौबे, कात्यायन वैदिक साहित्य प्रकाशन, होशियारपुर, 2005

5-वेद विज्ञान, स्वामी प्रत्यगात्मानन्द स्वामी, अनुवादिका डा- उर्मिला शर्मा, विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी, 2012

1.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. दर्शन शास्त्र का विस्तृत परिचय दीजिए |

2. सांख्य दर्शन के विषय में विस्तार पूर्वक लिखिए |

3.गुण त्रयी की विस्तृत व्याख्या करें |

4. सांख्य दर्शन में सृष्टि उत्पत्ति के सैधांतिक पक्षों का उल्लेख कीजिए |

इकाई 2 वेदान्त के अनुसार सृष्टि प्रक्रिया

इकाई संरचना

2.1 प्रस्तावना

2.2 उदेश्य

2.3 वेदान्त का परिचय

2.3 .1 वेदान्त का स्वरुप

2.4 अद्वैत वेदान्त का स्वरुप

2.5 विशिष्टाद्वैत वेदान्त

2.6 द्वैत वैदान्त

2.7 द्वैताद्वैत वेदान्त

2.8 अभ्यास प्रश्न

2.9 वेदान्त दर्शन के अनुसार सृष्टि प्रक्रिया

2.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

2.11 सारांश

2.12 सहायक ग्रन्थ व संदर्भित ग्रन्थ

2.13 निबंधात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना –

प्रस्तुत इकाई में हम वेदान्त दर्शन के अनुसार सृष्टि प्रक्रिया के वारे में जानेगे कि सृष्टि विषयक तत्वों कि व्याख्या कैसे करता है | भारतीय दर्शन में कार्य-कारण-सिद्धांत के विषय में अनेक विचारधाराएँ प्रचलित हैं, परन्तु सभी कार्य किसी कारण से उत्पत्ति होते हैं, इस मत पर सभी दर्शन का विचार एक समान है। वाचस्पति मिश्र ने तत्त्वकौमुदी में कार्य-कारण के चार मतों को उपस्थित किया है। पहला मत बौध (दार्शनिकों का है वे असत् से सत् की उत्पत्ति होती है, इस मत को मानते हैं। उनकी मान्यता है कि कारण से कार्य की उत्पत्ति तभी सम्भव है जब कारण का अस्तित्व समाप्त हो जाता है। बौध दार्शनिकों ने अपनी इस मान्यता को एक दृष्टान्त के द्वारा स्पष्ट किया है। उनका कहना है कि बीज से अंकुर तब प्रस्पुफटित होता है, जब बीज नष्ट हो जाता है। इस प्रकार वेदान्त दर्शन में सृष्टि प्रक्रिया का गहनता के साथ इस पाठ में अध्ययन करते हैं |

2.2 उदेश्य-

इस इकाई के निम्नलिखित उद्देश्य हैं –

1- वेदान्त दर्शन का परिचय जान सकेंगे |

1- वेदान्तिक सृष्टि संरचना को बताने में समर्थ होंगे।

2 - सृष्टि की संरचना का समय बता सकेंगे।

3- सृष्टि संरचना के स्वरूपकी वैदिक अवधारणा की व्याख्या कर सकेंगे।

4- वेदान्त के अनुसार सृष्टि प्रक्रिया क्या है समझने में समर्थ हो सकेंगे |

5- वेदान्त शास्त्र के अनुसार सृष्टि संरचना के स्वरूप का विवेचन करने में समर्थ होंगे।

2.3 वेदान्त का परिचय

अब इसी क्रम में हम वेदान्त दर्शन के अर्थ परिभाषा को समझने का प्रयाश करते हैं |

वेदान्त एवं न्याय-वैशेषिक के उपरोक्त तीनों मतों का सांख्य दार्शनिकों ने बहुत ही जोरदार शब्दों में खण्डन किया है। बौद्ध सिद्धांत का खंडन करते ु हुए सांख्य दार्शनिक कहते हैं कि कभी भी अभावरूप अवस्तु से भावरूप वस्तु की उत्पत्ति नहीं हो सकती। अंवुफरोत्पत्ति में बीज के नष् होने को कारण नहीं कहा जा सकता, किन्तु बीजावयवों के परिणाम को अंवुफरोत्पत्ति में कारण मानना चाहिए। अर्थात् बीज में रहने वाले अवयव ही प्रकारान्तर को प्राप्त होकर अंवुफर कहलाते हैं। इससे यह कदापि नहीं समझा जा सकता कि बीज के नाश होने पर ही अंवुफर की उत्पत्ति होती है इसको न्यायविदों ने एक सूत्रा में स्पष्ट किया है |

2.3 .1 वेदान्त का स्वरुप

सर्व प्रथम हम ‘‘वेदान्त’ का शाब्दिक अर्थ जानते हैं कि वेदान्त कहते किसे हैं आइये समझने का प्रयत्न करें - ‘वेदों का अन्त’। आरम्भ में उपनिषदों के लिए ‘वेदान्त’ शब्द का प्रयोग हुआ किन्तु बाद में उपनिषदों के

सिद्धान्तों को आधार मानकर जिन विचारों का विकास हुआ, उनके लिए भी 'वेदान्त' शब्द का प्रयोग होने लगा। उपनिषदों के लिए 'वेदान्त' शब्द के प्रयोग के प्रायः तीन कारण दिये जाते हैं :-

(1) उपनिषद् 'वेद' के अन्त में आते हैं। 'वेद' के अन्दर प्रथमतः वैदिक संहिताएँ- ऋक्, यजुः, साम तथा अथर्व आती हैं और इनके उपरान्त ब्राह्मण, आरण्यक तथा उपनिषद् आते हैं। इस साहित्य के अन्त में होने के कारण उपनिषद् वेदान्त कहे जाते हैं।

(2) वैदिक अध्ययन की दृष्टि से भी उपनिषदों के अध्ययन की बारी अन्त में आती थी। सबसे पहले संहिताओं का अध्ययन होता था। तदुपरान्त गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने पर यज्ञादि गृहस्थोचित कर्म करने के लिए ब्राह्मण-ग्रन्थों की आवश्यकता पड़ती थी। वानप्रस्थ या संन्यास आश्रम में प्रवेश करने पर आरण्यकों की आवश्यकता होती थी, वन में रहते हुए लोग जीवन तथा जगत् की पहेली को सुलझाने का प्रयत्न करते थे। यही उपनिषद् के अध्ययन तथा मनन की अवस्था थी।

(3) उपनिषदों में वेदों का 'अन्त' अर्थात् वेदों के विचारों का परिपक्व रूप है। यह माना जाता था कि वेद-वेदांग आदि सभी शास्त्रों का अध्ययन कर लेने पर भी बिना उपनिषदों की शिक्षा प्राप्त किये हुए मनुष्य का ज्ञान पूर्ण नहीं होता था।

2.4 अद्वैत वेदान्त का स्वरुप

(300 ई.) तथा उनके अनुवर्ती आदि शंकराचार्य (700 ई.) ब्रह्म को प्रधान मानकर जीव और जगत् को उससे अभिन्न मानते हैं। उनके अनुसार तत्व को उत्पत्ति और विनाश से रहित होना चाहिए। नाशवान् जगत तत्वशून्य है, जीव भी जैसा दिखाई देता है वैसा तत्वतः नहीं है। जाग्रत और स्वप्नावस्थाओं में जीव जगत् में रहता है परंतु सुषुप्ति में जीव प्रपंच ज्ञानशून्य चेतनावस्था में रहता है। इससे सिद्ध होता है कि जीव का शुद्ध रूप सुषुप्ति जैसा होना चाहिए। सुषुप्ति अवस्था अनित्य है अत: इससे परे तुरीयावस्था को जीव का शुद्ध रूप माना जाता है। इस अवस्था में नश्वर जगत् से कोई संबंध नहीं होता और जीव को पुन: नश्वर जगत् में प्रवेश भी नहीं करना पड़ता। यह तुरीयावस्था अभ्यास से प्राप्त होती है। ब्रह्म-जीव-जगत् में अभेद का ज्ञान उत्पन्न होने पर जगत् जीव में तथा जीव ब्रह्म में लीन हो जाता है। तीनों में वास्तविक अभेद होने पर भी अज्ञान के कारण जीव जगत् को अपने से पृथक् समझता है। परंतु स्वप्नसंसार की तरह जाग्रत संसार भी जीव की कल्पना है। भेद इतना ही है कि स्वप्न व्यक्तिगत कल्पना का परिणाम है जबकि जाग्रत अनुभव-समष्टि-गत महाकल्पना का। स्वप्नजगत् का ज्ञान होने पर दोनों में मिथ्यात्व सिद्ध है। {विकिपीडिया}

परन्तु बौद्धों की तरह वेदान्त में जीव को जगत् का अंग होने के कारण मिथ्या नहीं माना जाता। मिथ्यात्व का अनुभव करनेवाला जीव परम सत्य है, उसे मिथ्या मानने पर सभी ज्ञान को मिथ्या मानना होगा। परंतु जिस रूप में जीव संसार में व्यवहार करता है उसका वह रूप अवश्य मिथ्या है। जीव की तुरीय अवस्था भेदज्ञान शून्य शुद्ध अवस्था है। ज्ञाता-ज्ञेय-ज्ञान का संबंध मिथ्या संबंध है। इनसे परे होकर जीव अपनी शुद्ध चेतनावस्था को प्राप्त होता है। इस अवस्था में भेद का लेश भी नहीं है क्योंकि भेद द्वैत में होता है। इसी अद्वैत अवस्था को ब्रह्म

कहते हैं। तत्व असीम होता है, यदि दूसरा तत्व भी हो तो पहले तत्व की सीमा हो जाएगी और सीमित हो जाने से वह तत्व बुद्धिगम्य होगा जिसमें ज्ञाता-ज्ञेय-ज्ञान का भेद प्रतिभासित होने लगेगा। अनुभव साक्षी है कि सभी ज्ञेय वस्तुएँ नश्वर हैं। अत: यदि हम तत्व को अनश्वर मानते हैं तो हमें उसे अद्वय, अज्ञेय, शुद्ध चैतन्य मानना ही होगा। ऐसे तत्व को मानकर जगत् की अनुभूयमान स्थिति का हमें विवर्तवाद के सहार व्याख्यान करना होगा। रस्सी में प्रतिभासित होनेवाले सर्प की तरह यह जगत् न तो सत् है, न असत् है। सत् होता तो इसका कभी नाश न होता, असत् होता तो सुख, दु:ख का अनुभव न होता। अत: सत् असत् से विलक्षण अनिवर्चनीय अवस्था ही वास्तविक अवस्था हो सकती है। उपनिषदों में नेति कहकर इसी अज्ञातावस्था का प्रतिपादन किया गया है।

अज्ञान भाव रूप है क्योंकि इससे वस्तु के अस्तित्व की उपलब्धि होती है, यह अभाव रूप है, क्योंकि इसका वास्तविक रूप कुछ भी नहीं है। इसी अज्ञान को जगत् का कारण माना जाता है। अज्ञान का ब्रह्म के साथ क्या संबंध है, इसका सही उत्तर कठिन है परंतु ब्रह्म अपने शुद्ध निर्गुण रूप में अज्ञान विरहित है, किसी तरह वह भावाभाव विलक्षण अज्ञान से आवृत्त होकर सगुण ईश्वर कहलाने लगता है और इस तरह सृष्टिक्रम चालू हो जाता है। ईश्वर को अपने शुद्ध रूप का ज्ञान होता है परंतु जीव को अपने ब्रह्मरूप का ज्ञान प्राप्त करने के लिए साधना के द्वारा ब्रह्मीभूत होना पड़ता है। गुरु के मुख से 'तत्वमसि' का उपदेश सुनकर जीव 'अहं ब्रह्मास्मि' का अनुभव करता है। उस अवस्था में संपूर्ण जगत् को आत्ममय तथा अपने में सम्पूर्ण जगत् को देखता है क्योंकि उस समय उसके (ब्रह्म) के अतिरिक्त कोई तत्व नहीं होता। इसी अवस्था को तुरीयावस्था या मोक्ष कहते हैं।

2.5 विशिष्टाद्वैत वेदान्त

रामानुजाचार्य ने (11वीं शताब्दी) शंकर मत के विपरीत यह कहा कि ईश्वर (ब्रह्म) स्वतंत्र तत्व है परंतु जीव भी सत्य है, मिथ्या नहीं। ये जीव ईश्वर के साथ संबद्ध हैं। उनका यह संबंध भी अज्ञान के कारण नहीं है, वह वास्तविक है। मोक्ष होने पर भी जीव की स्वतंत्र सत्ता रहती है। भौतिक जगत् और जीव अलग अलग रूप से सत्य हैं परंतु ईश्वर की सत्यता इनकी सत्यता से विलक्षण है। ब्रह्म पूर्ण है, जगत् जड़ है, जीव अज्ञान और दु:ख से घिरा है। ये तीनों मिलकर एकाकार हो जाते हैं क्योंकि जगत् और जीव ब्रह्म के शरीर हैं और ब्रह्म इनकी आत्मा तथा नियंता है। ब्रह्म से पृथक् इनका अस्तित्व नहीं है, ये ब्रह्म की सेवा करने के लिए ही हैं। इस दर्शन में अद्वैत की जगह बहुत्व की कल्पना है परंतु ब्रह्म अनेक में एकता स्थापित करनेवाला एक तत्व है। बहुत्व से विशिष्ट अद्वय ब्रह्म का प्रतिपादन करने के कारण इसे विशिष्टाद्वैत कहा जाता है।

विशिष्टाद्वैत मत में भेदरहित ज्ञान असंभव माना गया है। इसीलिए शंकर का शुद्ध अद्वय ब्रह्म इस मत में ग्राह्य नहीं है। ब्रह्म सविशेष है और उसकी विशेषता इसमें है कि उसमें सभी सत् गुण विद्यामान हैं। अत: ब्रह्म वास्तव में शरीरी ईश्वर है। सभी वैयक्तिक आत्माएँ सत्य हैं और इन्हीं से ब्रह्म का शरीर निर्मित है। ये ब्रह्म में, मोक्ष हाने पर, लीन नहीं होतीं; इनका अस्तित्व अक्षुण्ण बना रहता है। इस तरह ब्रह्म अनेकता में एकता स्थापित करनेवाला सूत्र है। यही ब्रह्म प्रलय काल में सूक्ष्मभूत और आत्माओं के साथ कारण रूप में स्थित रहता है

परंतु सृष्टिकाल में सूक्ष्म स्थूल रूप धारण कर लेता है। यही कार्य ब्रह्म कहा जाता है। अनंत ज्ञान और आनंद से युक्त ब्रह्म को नारायण कहते हैं जो लक्ष्मी (शक्ति) के साथ बैकुंठ में निवास करते हैं। भक्ति के द्वारा इस नारायण के समीप पहुँचा जा सकता है। सर्वोत्तम भक्ति नारायण के प्रसाद से प्राप्त होती है और यह भगवद्ज्ञानमय है। भक्ति मार्ग में जाति-वर्ण-गत भेद का स्थान नहीं है। सबके लिए भगवत्प्राप्ति का यह राजमार्ग है।

2.6 द्वैत वैदान्त

मध्व (1197 ई.) ने द्वैत वेदान्त का प्रचार किया जिसमें पाँच भेदों को आधार माना जाता है- जीव ईश्वर, जीव जीव, जीव जगत्, ईश्वर जगत्, जगत् जगत्। इनमें भेद स्वत: सिद्ध है। भेद के बिना वस्तु की स्थिति असंभव है। जगत् और जीव ईश्वर से पृथक् हैं किंतु ईश्वर द्वारा नियंत्रित हैं। सगुण ईश्वर जगत् का स्रष्टा, पालक और संहारक है। भक्ति से प्रसन्न होनेवाले ईश्वर के इशारे पर ही सृष्टि का खेल चलता है। यद्यपि जीव स्वभावतः ज्ञानमय और आनन्दमय है परन्तु शरीर, मन आदि के संसर्ग से इसे दुःख भोगना पड़ता है। यह संसर्ग कर्मों के परिणामस्वरूप होता है। जीव ईश्वरनियंत्रित होने पर भी कर्ता और फलभोक्ता है। ईश्वर में नित्य प्रेम ही भक्ति है जिससे जीव मुक्त होकर, ईश्वर के समीप स्थित होकर, आनन्दभोग करता है। भौतिक जगत् ईश्वर के अधीन है और ईश्वर की इच्छा से ही सृष्टि और प्रलय में यह क्रमशः स्थूल और सूक्ष्म अवस्था में स्थित होता है। रामानुज की तरह मध्व जीव और जगत् को ब्रह्म का शरीर नहीं मानते। ये स्वतःस्थित तत्व हैं। उनमें परस्पर भेद वास्तविक है। ईश्वर केवल इनका नियंत्रण करता है। इस दर्शन में ब्रह्म जगत् का निमित्त कारण है, प्रकृति (भौतिक तत्व) उपादान कारण है।

2.7 द्वैताद्वैत वेदान्त

निम्बार्काचार्य ने स्वाभाविक द्वैताद्वैत दार्शनिक सिद्धांत का प्रचार किया जिसमें जगत (सृष्टि), जीव (आत्मा), और ईश्वर (परमात्मा) के बीच द्वैत-अद्वैत का स्वाभाविक संबंध होता है।[1]

निम्बार्काचार्य ने ब्रह्म ज्ञान का कारण एकमात्र शास्त्र को माना है। सम्पूर्ण धर्मों का मूल वेद है। वेद विपरीत स्मृतियाँ अमान्य हैं। जहाँ श्रुति में परस्पर द्वैध (भिन्न रूपत्व) भी आता हो वहाँ श्रुति रूप होने से दोनों ही धर्म हैं। किसी एक को उपादेय तथा अन्य को हेय नहीं कहा जा सकता। तुल्य बल होने से सभी श्रुतियाँ प्रधान हैं। इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए भिन्न रूप श्रुतियों का भी समन्वय करके निम्बार्क दर्शन ने स्वाभाविक भेदाभेद सम्बन्ध को स्वीकृत किया है। इसमें समन्वयात्मक दृष्टि होने से भिन्न रूप श्रुति का भी परस्पर कोई विरोध नहीं होता। अतएव निम्बार्क दर्शन को 'अविरोध मत' के नाम से भी अभिहित करते हैं।

श्रुतियों में कुछ भेद का बोध कराती हैं तो कुछ अभेद का निर्देश देती हैं।

यथा- 'पराऽय शक्तिर्विविधैव श्रूयते, स्वाभाविक ज्ञान बल-क्रिया च' (श्वे० ६/८)

'सर्वांल्लोकानीशते ईशनीभिः' (श्वे० ३/१)

'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते, येन जातानि जीवन्ति, यत्प्रयन्त्यभि संविशन्ति' (तै० ३/१/१)।

'नित्यो नित्यानां चेतश्चचेतनानामेको बहूनां यो विदधाति कामान् (कठ० ५/१३)
'अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते।' (गीता १०/८) इत्यादि
श्रुतियाँ ब्रह्म और जगत के भेद का प्रतिपादन करती हैं।
'सदेव सौम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम्' (छा० ६/२/१)
'आत्मा वा इदमेकमासीत्' (तै०२/१) 'तत्त्वमसि' (छा./१४/३)
'अयमात्मा ब्रह्म' (बृ० २/५/१६)
'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' (छा. ३/१४/१) मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणि गणा इव' (गी, ७/७/)
इत्यादि अभेद का बोध कराती हैं।

2.8 अभ्यास प्रश्न

1. दार्शनिक कहते हैं कि कभी भी अभावरूप अवस्तु से भावरूप वस्तु की उत्पत्ति नहीं हो सकती।
क. सत्य ख.असत्य
2. सुषुप्ति अवस्था अनित्य है |
क. सत्य ख.असत्य
3. जीव अपनी शुद्ध चेतनावस्था को प्राप्त होता है। इस अवस्था में भेद का लेश भी नहीं है क्योंकि भेद द्वैत में होता है।
क. सत्य ख.असत्य
4. जीव ईश्वर, जीव जगत्, ईश्वर जगत्, जगत् जगत्। इनमें भेद स्वत: सिद्ध है।
क. सत्य ख.असत्य

2.9 वेदान्त दर्शन के अनुसार सृष्टि प्रक्रिया

सृष्टि व्रह्म का ही विलास {लीला} है और इस विलास का आदि एवं अवसान बिन्दु ब्रह्म ही है। इसी प्रसंग में तैत्तिरीयोपनिषद कहता है - "यतो वा इमानि वृत्तानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति यत्प्रयत्यमिसविश्यन्ति तद्विविज्ञातत्व तत् ब्रह्मेदी' । अर्थात् यह संसार जिससे पैदा होता है, पैदा होकर पलता एवं पल्लवित होता है। तथा नाश होने पर जहाँ विलीन होता है, उसे जानो वह ब्रह्म ही है। सृष्टि के विषय में यही वेदान्त का निर्णय है। शंकर कहते है कि इसका कोई प्रयोजन नही, ईश्वर केवल लीला के लिए ही सृष्टि करता है। वह इसका स्वभाव ही है।जैसे मनुष्य के शरीर में श्वास प्रश्वास चलते रहते है।उसी प्रकार सृष्टि की उत्पत्ति और विनाश होते रहते है। तमोगुण प्रधान विशेष व्यक्ति से युक्त ब्रह्म ही सृष्टि का कारण है।उससे सर्वप्रथम सूक्ष्मतम आकाश की उत्पत्ति होती है। क्रमशः आकाश से सूक्ष्मतर वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल तथा जल से पृथ्वी की उत्पत्ति होती है। सृष्टि में जड़ता का प्राधान्य है।अतः उसके कारण ईश्वर को भी तमोगुण से युक्त विक्षेपशक्ति से ध्वनित माना जाता है।ये तीनों तत्व अत्यन्त सुक्ष्म हौते है।और व्यक्त नही होते , अतः इन्है सुक्ष्मभूत या तन्मात्रा कहा जाता है। इन तन्मात्राओं में अपने कारण से तीनों गुण आ जाते है। इन तन्मात्राओं के सात्विक अंश से पृथक पृथक

पाँच ज्ञानेन्द्रियों की उत्पत्ति होती है।आकाश तन्मात्रा से नेत्र, वायु तन्मात्रा से स्पर्श , अग्नि तन्मात्रा से चक्षु, जल तन्मात्रा से जिव्हा, पृथ्वी तन्मात्रा से प्राण इन्द्रिय की उत्पत्ति होती है। इन पाँचों का निवास स्थान क्रमशः वर्ण त्वचा , नेत्र, जिव्हा तथा नासिका में है। और ये क्रमशः शब्द, स्पर्श, रुप, रस गन्ध का अनुभव कराती है।आकाशादि तन्मात्राओं के सात्विंश अंश की समष्टि से (अर्थात् पाँचों तन्मात्राओं के मिलन से) बुद्धि, और मन नाम की दो अन्तःकरण वृत्तियों की उत्पत्ति होती है।बुद्धि निश्चयात्मिका वृत्ति है।और मन संकल्प विकल्पात्मिका । चित्त का बुद्धि, और अहंकार का मन में अन्तर्भाव है।ये सभी प्रकाश-स्वरुप है।अतः बाह्य संसार का ज्ञान स्थायी है, इसलिए इनको सत्वगुण से उत्पन्न माना जाता है। बुद्धि ओर ज्ञानेन्द्रियों को मिलाकर विज्ञानमय कोष बनता है। विज्ञानमय कोष से वशिच्छिन्न चैतन्य ही बीज है। वही वर्षा करता है, इन्हें भोगता है।सुख दुख का अभिमान कराता है, तथा कर्तव्यों की फल प्राप्ति के लिए इहलोक तथा परलोक में संचरण करता है।विज्ञानमय कोष बाह्य शक्ति से प्राप्त होते है, कारण कर्ता रुप है | मन और ज्ञानेन्द्रियों के सम्मिलन को मनोमय कोष कहते है। यह इच्छाशक्ति से युक्त होता है।यह सत्यस्वरुप है,यह आकाशादि पण्च तन्मात्राओं के सात्विक अंश की सृष्टि है। आकाशादि के सात्विक अंश से कर्मेन्द्रियों और प्राणों की उत्पत्ति होती है।कर्मेन्द्रियों की उत्पत्ति तन्मात्राओं से पृथक-ृपृथक होती है।आकाश से वायु, वायु से हस्त, अग्नि से पाद, जल से वायु, तथा पृथ्वी से उपस्थ कर्मेन्द्रियों की उत्पत्ति होती है।अग्नि क्रिया प्रधान है,अतः इन्हें कर्मेन्द्रिय कहा जाता है।प्राणों की उत्पत्ति पाँचों तन्मात्राओं के मिलन से होती है।प्राणवायु पाँच है-प्राण, अपान, ध्यान, उदान, जनन्य। दशों इन्द्रियों , पण्च प्राणों, तथा मन बुद्धि इन सतरह अवयवों को मिलाकर मनुष्य का सुक्ष्म शरीर बनता है। स्थुल शरीर की उत्पत्ति आकाशादि पाँच स्थुल तत्वों से होती है।तन्मात्राओं से स्थुलभुतों की प्रक्रिया को पण्चीकरण कहते है।सुक्ष्मभुतों के प्रत्येक में दो भाग हो जाते है।एक-एक भाग वैसा ही रहता है पर दुसरे भाग के पुनः चार-चार भाग हो जाते है। अब इस प्रथम अर्थ भाग में शेष चारों भूतों का एक-एक भाग मिल जाता है।

इन्ही पाँच स्थूल भूतों से भू भूवः स्वः महः जन तप तथा सत्यम् इन सात ऊपर के लोकों की तथा तल चितल ,सुतल, रसातल, तलातल, महातल और पाताल नामक सात निम्न लोकों की तथा उनमें रहने वाले प्राणियों के स्थूल शरीरों एवं उनके भोजन आदि की उत्पत्ति होती है।स्थूल्शरीर चार प्रकार के होते है। जरायुज-गर्भाशय से उत्पन्न होने वाले मनुष्य , पशु आदि । अण्डज- अण्डे से उत्पन्न होने वाले पक्षी , सर्प, मत्स्य आदि। स्वेदज- स्वेद या गन्दगी से उत्पन्न होने वाले जुएँ, मच्छर तथा अन्य कीड़े ,और उद्विज्ज भूमि से उत्पन्न होने वाले वृक्ष आदि। अन्न से उत्पन्न होने वाले इस स्थूल शरीर को अन्नमय कोश कहते है। इन स्थूल सुक्ष्म शरीरों की समाप्ति एक महान प्रपण्च का निर्माण करती है-महाप्रपण्च और उससे उपहित चैतन्य दोनों ही ‘‘सर्वं खल्विदं ‘‘ब्रह्म’’ इस महावाक्य में ‘‘इदम् सर्वं ‘‘ केवाच्य अर्थ है।किन्तु लक्षण से इसमें वर्तमान शुद्ध चैतन्य मात्र का बोध होता है। इस प्रकार संसार का कारण साक्षात उपहित ब्रह्म या ईश्वर है। इस ईश्वर से दो अंश

चैतन्य और अविद्या (उपाधि) परस्पर संवहित है। इसलिए शंकर वेदान्ती ईश्वर को ही सृष्टि का उपादान और निमित्त दोनों कारण मानते हैं | मुण्डकोपनिषद में आया है-

यथोर्जनाभिः सृजन्ते गृह्यते च,यथा पृथिव्यामोपचय सम्भवति।

यथा सत्तः पुरुषात् केशलोमानि, तथा जरात्सम्भवतीह विश्वम्।|

अर्थात् जिस प्रकार मकड़ी (जाले का) सृजन करती व उसे समेट लेती है, जिस प्रकार पृथ्वी से औषधियाँ वनस्पति वर्ग उत्पन्न होती है, और जिस प्रकार पुरुष के शरीर से बाल और रोम पैदा होते है, उसी प्रकार अजर (परमात्मा) से यह संसार उत्पन्न होता है।

जिस प्रकार सृष्टि का उसी प्रकार प्रलय का भी ईश्वर कारण है।जैसे मकड़ी का समेटा हुवा जाल शरीर सत होकर उसी में विलीन हो जाता है, उसी प्रकार ह दृष्य जगत सिमट कर उसकी उपाधि अविद्या में लीन हो जाती है। पश्चात अविद्या के असत्य होने के कारण वह भी नही रह जाती है, तब शुद्ध अनुपहित ब्रह्म अपने निर्विशेष रुप में शेष रह जाता है" विकिपिडिय । http://santoshporwal1604.blogspot.com/2014/07/blog-post.html

2.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.क

2.क

3.क

4.क

2.11 सारांश

अद्वैतवेदान्त और सांख्य दर्शन आस्तिक परम्परा के दो महत्वपूर्ण दर्शनशास्त्र हैं | इन दोनों दर्शनों में दशानों में प्राप्त सृष्टि प्रक्रिया अत्यधिक शास्त्री-एवं वैज्ञानिक है | जिस प्रकार सांख्य दर्शन में सृष्टि प्रक्रिया को बताया गया है , लगभग तद्वद वेदान्त में भी उसी का विस्तार करके सृष्टि नियामक सिद्धांतों का प्रतिपादन किया है | सांख्य दर्शन और वेदान्त दोनों आस्तिक दर्शन है इसलिए वेद सम्मत सृष्टि नियमों को इसमें ग्रहण कियागया है

2.12 सहायक ग्रन्थ व संदर्भित ग्रन्थ

1- ऋग्वेद, सयणाचार्यकृत-भाष्यसंवलिता, अनुवादक पण्डित रामगोविन्द त्रिवेदी, चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी, 2016

2- अथर्ववेद, सयणाचार्यकृत-भाष्यसंवलिता, अनुवादक पण्डित रामगोविन्द त्रिवेदी, चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी, 2016

3- उपनिषत्सञ्चयम्, अनुवादक आचार्य केशवलाल वा- शास्त्री, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान दिल्ली, 2015

4- शतपथ ब्राह्मण, सायणाचार्यकृत-भाष्य, नाग प्रकाशन ज्वाहरनगर दिल्ली, 1990

5- सूर्यसिद्धान्तः - आर्षग्रन्थः, टीकाकार कपिलेश्वरशास्त्री, चौखम्बा संस्कृत संस्थान वाराणसी-2004

6- मनुस्मृति - डा- गजानन शास्त्री, चौखम्बा सुरभारती प्रतिष्ठान वाराणसी, 2002

7- ब्रह्मपुराण - गीताप्रेस गोरखरपुर, विक्रम संवत 2067

8- पद्मपुराण - गीताप्रेस गोरखरपुर, विक्रम संवत 2067

9- शिवपुराण - गीताप्रेस गोरखरपुर, विक्रम संवत 2065

10- श्रीमद्भागवतमहापुराण - गीताप्रेस गोरखरपुर, विक्रम संवत 2066

11- विष्णुपुराण - गीताप्रेस गोरखरपुर, विक्रम संवत 2069

12- मत्स्य पुराण गीताप्रेस गोरखरपुर, विक्रम संवत 2069

13- नारदीय पुराण गीताप्रेस गोरखरपुर, विक्रम संवत 2066

14- ब्रह्मवैवर्तपुराण गीताप्रेस गोरखरपुर, विक्रम संवत 2070

15- भारतीय दर्शन की रूपरेखा - प्रो- हरेन्द्र प्रसाद सिन्हा, मोतीलाल बनारसीदास दिल्ली, 1983

16- भारतीय दर्शन, डा- राधाकृष्णन्, राजपाल एण्ड सन्स दिल्ली -6, 1986

1- ब्रह्माण्ड और सौर परिवार, प्रो- देवी प्रसाद त्रिपाठी, परिक्रमा प्रकाशन दिल्ली, 2006

2- सृष्ट्युत्पत्ति की वैदिक परिकल्पना, विष्णुकान्त शर्मा, प्रतिभा प्रकाशन दिल्ली, 2008

3- सृष्टि उत्पत्ति - रामनाथ गुप्ता, मीरा प्रकाशन, 2019

4- वेद-विज्ञान चिन्तन, प्रो- बृजबिहारी चौबे, कात्यायन वैदिक साहित्य प्रकाशन, होशियारपुर, 2005

5-वेद विज्ञान, स्वामी प्रत्यगात्मानन्द स्वामी, अनुवादिका डा- उर्मिला शर्मा, विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी, 2012

6. http://santoshporwal1604.blogspot.com/2014/07/blog-post.html

2.13 निबंधात्मक प्रश्न

1. वेदान्त दर्शन क्या है इसके स्वरुप का वर्णन कीजिए |
2. वेदान्त में ईश्वर जीव का क्या सम्बन्ध है ? विस्तृत व्याख्या कीजिए |
3. वेदान्त के अनुसार सृष्टि प्रक्रिया क्या है |
4. द्वैता अद्वेत क्या है स्पष्ट कीजिए |

इकाई -3 न्याय वैशेषिक आधारित सृष्टि प्रक्रिया

इकाई संरचना

3.1 प्रस्तावना

3.2 उदेश्य

3.3 विषय परिचय

3.3.1 न्याय वैशेषिक का सम्बन्ध

3.4 न्याय दर्शन

3.5 वैशेषिक का स्वरुप

3.6 वैशेषिक में सृष्टि और परमाणुवाद

3.7 वोधात्मक प्रश्न

3.7 सारांश

3.8 बोधात्मक प्रश्नों के उत्तर

3.9 सहायक ग्रन्थ सूची

3.10 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना –

प्रिय अध्येताओं इससे पूर्व की इकाई में आपने वेदान्तिक सृष्टि प्रक्रिया को जाना अब इसी क्रम में हम नई इकाई "न्याय वैशेषिक में सृष्टि" क्या है इसका अध्ययन करेंगे | जैसे के पूर्व में आपने जाना कि छ: आस्तिक दर्शन हैं जिन्हें प्राय: षट् दर्शन कहा गया है | छः आस्तिक दर्शनों में वैशेषिक दर्शन अन्यतम है। वैशेषिक दर्शन के अन्य नाम भी हैं। यथा- कणाद दर्शन, औलूक्य दर्शन, काश्यपीय दर्शन। इस दर्शन के प्रवक्ता महर्षि कणाद हैं। जो निश्चित स्थानान्तर पर कणभुक्, कर्णभक्ष, उलूक, काश्यप, योगी इत्यादि नामों से जाने जाते हैं। यह वैशेषिक दर्शन न्याय शास्त्र से भी प्राचीनतम है। पदार्थ विभाजन तथा परमाणुवाद प्रवर्तन वैशेषिक दर्शन के विशेष हैं। और भी नव्यन्यायशास्त्र का परिपूरक शास्त्र यह कणाद प्रवर्तित वैशेषिक दर्शन है।इस का सांगोपांग अध्ययन हम इस इकाई में करेंगे |

3.2 उदेश्य

इस इकाई के निम्नलिखित उद्देश्य हैं –

1- न्याय वैशेषिक दर्शन का परिचय जान सकेंगे |

1- न्याय वैशेषिक के आधार पर सृष्टि संरचना के स्वरुप को बताने में समर्थ होंगे।

2 - सृष्टि की संरचना का समय बता सकेंगे।

3- सृष्टि संरचना के स्वरूपकी वैदिक अवधारणा की व्याख्या कर सकेंगे।

4- न्याय वैशेषिक के अनुसार सृष्टि प्रक्रिया क्या है समझने में समर्थ हो सकेंगे |

5- न्याय शास्त्र के अनुसार सृष्टि संरचना के स्वरूप का विवेचन करने में समर्थ होंगे।

3.3 विषय परिचय

भारतीय दर्शन हमारे ऋषियों द्वारा दियागया एक उत्कृष्ट चिंतन है | जिसकी छत्रछाया में मानवीय गरिमा को फलते और फूलते देखा जा सकता है | भारतीय संस्कृति के अनुयायों में प्रवाहित होनेवाला प्राण प्रवाह दर्शनशास्त्र की ही देंन है | इसी प्रमोत्क्रिष्ट विचार पूंज ने ही भारत के भाल को सतत्त समुन्नत बनाये रखा है | हमारे ऋषियों नेजो अमूल्य निधि प्रदान की है, उसकी मूलभूत विशेषता यह है कि उसमें विषय वास्तु का जो अंतिम लक्ष्य है , वह परमात्मा की प्राप्ति और मोक्ष है | भौतिकता के रोग से ग्रसित मानव यदि भौतिकता के संसाधनों के साथ-साथ कैवल्य के मार्ग पर चलना चाहता है आध्यात्मिक उन्नति चाहता है और प्रयत्न करता रहता है , उससे जो सत्परिणाम प्राप्त होगा उस बौधिक सम्पदा प्राप्त प्रत्येक व्यक्ति उससे न केवल लाभान्वित होता है अपितु उसका अनुगमन करता है | आवश्यकता है कि दर्शन के सिद्धांतों को जीवन में स्थान देने की , स्वार्थ और परमार्थ में स्थान देनें की तभी पुरुषार्थ चतुष्टय की सिद्धि होगी | वैशेषिक दर्शन अपने आप में महत्त्वपूर्ण होने के अतिरिक्त अन्य दर्शनों तथा विद्यास्थानों के प्रतिपाद्य सिद्धान्तों के ज्ञान और विश्लेषण में भी बहुत उपकारक है। कौटिल्य ने वैशेषिक का पृथक् रूप से तो उल्लेख नहीं किया, किन्तु संभवत: समानतन्त्र

आन्वीक्षिकी में वैशेषिक का भी अन्तर्भाव मानते हुए कौटिल्य ने यह कहा कि आन्वीक्षिकी सब विद्याओं का प्रदीप है। भारतीय चिन्तन-परम्परा में न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा, वेदान्त प्रभृति छः आस्तिक दर्शनों और चार्वाक, बौद्ध, जैन इन तीन नास्तिक दर्शनों का अपना-अपना स्थान व महत्त्व रहा है। वैसे भी वैशेषिकों के सात पदार्थ न्याय सम्प्रदाय में अवान्तर पदार्थ के रूप में स्वीकृत है | भारतीय चिन्तकों ने दर्शन शब्द का प्रयोग स्थूल और सूक्ष्म अर्थात् भौतिक और आध्यात्मिक दोनों अर्थो में किया है, तथापि जहाँ अन्य दर्शनों में आध्यात्मिक चिन्तन पर अधिक बल दिया गया है, वहाँ न्याय दर्शन में प्रमाण-मीमांसा और वैशेषिक दर्शन में प्रमुख रूप से प्रमेय-मीमांसा अर्थात भौतिक पदार्थों का विश्लेषण किया गया है। इस दृष्टि से वैशेषिक दर्शन को अध्यात्मोन्मुख जिज्ञासा प्रधान दर्शन कहा जा सकता है। न्याय और वैशेषिक दर्शन प्रमुख रूप से इस विचारधारा पर आश्रित रहे हैं कि जगत में जिन वस्तुओं का हमें अनुभव होता है वे सत हैं। अतः उन्होंने दृश्यमान जगत् से परे जो समस्याएँ या गुत्थियाँ हैं, उन पर विचार केन्द्रित करने की अपेक्षा दृश्यमान जगत को वास्तविक मानकर उसकी सत्ता का विश्लेषण करना ही अधिक उपयुक्त समझा।[3] वस्तुवादी और जिज्ञासा प्रधान होने के कारण तथा प्रमेय-प्रधान विश्लेषण के कारण वैशेषिक दर्शन व्यावहारिक या लौकिक दृष्टि से भी बहुत महत्त्वपूर्ण है। न्याय-वैशेषिक के अनुसार ज्ञाता, ज्ञेय और ज्ञान की पृथक्-पृथक् वस्तु-सत्ता है, जबकि वेदान्त में यह माना जाता है कि ज्ञाता ज्ञानस्वरूप है और ज्ञेय भी ज्ञान से पृथक् नहीं है। न्याय और वैशेषिक यद्यपि समानतन्त्र हैं, फिर भी न्याय प्रमाण-प्रधान दर्शन है जबकि वैशेषिक प्रमेय-प्रधान। इसके अतिरिक्त अन्य कई संकल्पनाओं में भी इन दोनों दर्शनों का पार्थक्य है।

3.4 न्याय दर्शन

न्याय दर्शन के प्रणेता महर्षि गौतम हैं इनके अनुसार कार्य कारण सम्बन्ध स्वयं सिद्ध है। सब सामान्य सिद्धान्तों की भांति, कार्य-कारण भाव का नियम भी नैयायिक के लिए एक अन्तः दृष्टि द्वारा ज्ञात स्वतः सिद्ध सिद्धान्त है, जिसकी पुश्टि अनुभव द्वारा होती है । अतः न्याय-वैषेशिक दर्शन के अनुसार कारण वह है जो बिना अपवाद के कार्य से पूर्व विद्यमान रहता है और जिसकी आवष्यकता मात्र सहायक के रूप में ही नहीं बल्कि कार्य की उत्पत्ति के लिए भी है। नैयायिकों को दृश्टि में कारण के लिए केवल पूर्ववर्ती होना पर्याप्त नहीं है, बल्कि उसके लिए आवष्यक पूर्ववर्ती होना जरूरी है। कारण और कार्य में अन्वय व्यतिरेकी सम्बन्ध है। जब कारण उपस्थित होता है तो कार्य भी उपस्थित होता है, और जब कारण नही रहता है तो कार्य भी नहीं रहता है। उपर्युक्त बातों की पुष्टि वैषेशिकों ने भी की है। वैषेशिक मत के अनुसार अवयवों से जिन अवयवों की उत्पत्ति होती है, और उत्पत्ति से पूर्व उसकी और किसी रूप में सत्त नहीं रहती है। इसी को असत्कार्यवाद या आरम्भवाद कहते है । नव्य नैयायिकों ने अपने ढंग से आरम्भवाद अथवा असत्कार्यवाद की स्थापना की है । परवर्ती न्याय में कार्य की परिभाषा देते हुए बतलाया गया है कि कार्य अपने पूर्ववर्ती का निशेध का प्रतिपक्षी अस्तित्त्व है | पूर्ववर्ती निशेध का निश्चित सह-सम्बन्धी है। यह कहना कि कार्य का पहले अभाव होता है, यह स्वीकार करना है कि कार्य का आरम्भ होता है। यही असत्कार्यवाद कहलाता है । इसे आरम्भवाद के नाम से

भी जाना जाता है। न्याय-वैषेशिक का कारणवाद अर्थात् असत्कार्यवाद बाह्यवाद अथवा वस्तुवाद का मुख्य आधार स्तम्भ है। परमाणुओं के संयोग का आरम्भ होने पर इस मत से सृष्टि का निमार्ण होता है । जगत् के मूल कारण माने गये हैं और नैयायिक इन परमाणुओं को सत्य मानते हैं। इसलिये उन्होंने निश्चय किया है कि जहाँ इन असंख्य परमाणुओं का संयोग होने लगा, वहां सृष्टि के अनेक पदार्थ बनने लगते है ।

14 न्याय-वैषेशिकों को 'बहुकारणवाद' में आस्था नहीं है । बहुकारणवाद के मुताबिक एक घटना के अनेक कारण होते है । न्याय, वैषेशिक दर्शन का कहना है कि बहुकारणवाद को सत्य मानने पर अनुमान से ज्ञान प्राप्त नहीं किया जा सकता है। दरअसल आरम्भवादी सिद्धान्त के अन्दर उक्त अभिधेयता आदि को नित्य मान लेना भी असम्भव है। क्योंकि जहाँ अभिधान और अभिधेय दोनों ही अतिनूतन, पहले अतिप्रसिद्ध होंगे वहां अभिधेयता को किसमें आश्रित और कैसे नित्य माना जा

सकेगा। न्याय वैषेशिक के मुताबिक कारण तीन तरह के होते हैं -

1 . उपादान कारण

2. असमवायी कारण

3. निमित्त कारण

(क) उपादान कारण

जिस द्रव्य से किसी वस्तु की उत्पत्ति होती है, वही उसका उपादान कारण है।

यानी भौतिक कारण वह सामग्री है जिससे कार्य का निर्माण होता है। उदाहरणार्थ कपड़े

का उपादान या भौतिक कारण धागा है, घड़े का उपादान कारण मिट्टी है, तलवार का

उपादान कारण लोहा है। असमवायी कारण असमवायी अथवा अभौतिक कारण वह कारण है जो भौतिक कारण में विद्यमान रहता है एवं जिसकी क्षमता अच्छी तरह जानी हुई है। धागों का परस्पर का असमवायी कारण है। यानी केवल भौतिक पदार्थ से ही किसी वस्तु का निर्माण नहीं हो जाता बल्कि उसके लिए असमवायी या अभौतिक कारण की भी आवष्यकता पड़ती है। उदाहरण के लिए मात्र मिट्टी से ही घड़ा या सुराही नहीं बन जाती है। मिट्टी का छानना, गुंथना, पीटना आदि एवं उसमें बालू, राख आदि मिलाना तथा उसे खास रूप में परिणत करना जरूरी है। इन कार्यों के पष्चात् ही घड़ा या सुराही का निर्माण हो सकता है । मिट्टी, पानी, बालू आदि को एक साथ मिलाना भी घड़ा या सुराही का कारण है। इसे ही असमवायी कारण कहा जाता है।

निमित्त कारण- यह वह कारण है जिसकी प्रेरणा से कार्य की उत्पत्ति होती है, अर्थात् कार्य का

प्रयोजन या साधन जिससे कार्य पैदा होता है। अब स्पश्ट है कि केवल मिट्टी के रहने और पानी, बालू, राख आदि के साथ सयुक्त होने से घड़ा या सुराही का निर्माण नहीं हो सकता है। इसके लिए ऐसे व्यक्ति की आवष्यकता पड़ती है जो मिट्टी को पानी, बालू आदि के साथ मिलाकर उसकी खास स्वरुप दे यानी चाक चलाकर घड़ा या सुराही का निर्माण करे। यह व्यक्ति अर्थात् कुम्हार ही घड़ा या सुराही का निमित्त कारण है।

कुम्हार घड़ा बनाने के लिए चाक, ड़डा, धुरी आदि की सहायता लेता है। इन साधनों को सहकारी कहा जाता है। घड़े के लिए जैसे कुम्हार है नही जगत् के लिये ईष्वर है।

उपर्युक्त तीनों कारण यूनानी दार्षनिक अरस्तू द्वारा प्रतिपादित भौतिक, आकारिक तथा निमित्त कारणों से अनुकूलता रखते है । फोर्म को अरस्तू के अनुसार अन्तिम कारण माना जा सकता है। कार्य और उसके उपादान कारण के सम्बन्ध को लेकर भारतीय दर्शन में एक महत्वपूर्ण प्रश्न उठ खड़ा होता है। क्या कार्य अपनी उत्पत्ति के पूर्व अपने उपादान कारण में विद्यमान रहता है? के दो उत्तर दिये गये हैं। जैसा कि पहले भी बतलाया जा चुका है कि प्रथम मत सांख्य विचारकों का है। इस मत के अनुसार कार्य कारण में पूर्व से ही विद्यमान रहता है इसे सत्कार्यवाद कहा जाता है। दूसरा मत परवर्ती न्याय-वैषेशिकों का है जिसे असत्कार्यवाद कहते है । इसके अनुसार कार्य उत्पत्ति के पहले अपने उपादान कारण में विद्यमान नहीं रहता है।

न्याय-वैषेशिकों ने असत्कार्यवाद के पक्ष में निम्नलिखित युक्तियां प्रस्तुत की हैं-

अगर कार्य पहले से ही अपने उपादान कारण में विद्यमान रहता है तो फिर

उसके उत्पन्न होने का क्या अर्थ है? यदि कार्य पूर्व से ही उपादान कारण में विद्यमान है तो फिर इसे पैदा करने के लिए निमित्त कारण को व्यर्थ प्रयत्न करने की क्या जरूरत है | यदि कार्य पहले से ही अपने भौतिक कारण में रहता है तो फिर दानों को दो नाम से क्यों पुकारा जाता है| अगर कार्य अपने उपादान कारण में पहले से ही रहता है तो फिर कार्य और कारण दोनों का समान व्यवहार क्यों नहीं होता है? क्यों घड़ा या सुराही जैसा ही मिट्टी में पानी का काम नहीं किया जाता है? पानी लेने के लिए मिट्टी का पात्र चाहिये। दोनों में भिन्नता क्यों है? यानी अगर कार्य पूर्व से ही भौतिक कारण में विद्यमान है तो दोनों एक दूसरे से पृथक या भिन्न क्यों माने जाते है | कार्य और कारण के रूप या आकार में तो अन्तर अवष्य पाया जाता है। सुराही और मिट्टी के लौंदे में पूर्व से ही स्थित है तो फिर दोनों के आकारों में क्यों अन्तर है? यदि यह कहा जाय कि मिट्टी के लौदे में जो रूप नहीं है, वहसुराही में है तो इसका अर्थ यह होगा कि षून्य से कुछ उत्पन्न हुआ है। परन्तु ऐसा सोचना उचित नहीं है क्योंकि यह वैज्ञानिक नियम के विरूद्ध है। यह सर्वमान्य नियम है कि कुछ से कुछ की उत्पत्ति हो सकती है, षून्य से कुछ की नहीं। यानी षून्य से षून्य की हो उत्पत्ति होती है, इससे कुछ अन्य वस्तुएँ उत्पन्न नहीं हो सकती है। अब स्पस्ट है कि सांख्य की मान्यता के विपरीत यह कार्य पूर्व विद्यमानता से इन्कार करता है। इनका कहना है कि कार्य अपने कारण से भिन्न है तथा एक नवीन सृष्टि है | जो उत्पत्ति के बाद समवाय सम्बन्ध से अपने कारण में निवास करती है। कार्य व कारण के दो पृथक द्रव्य मानते हुए भी उन्हें समान स्थान का अधिकारी बताना असम्भव लगता है, किन्तु न्याय-वैषेशिक के अनुसार समवाय सम्बन्ध के द्वारा ऐसा सम्भव हो जाता है। क्योंकि समवाय सम्बन्ध से सम्बद्ध वस्तुएँ भिन्न-भिन्न होते हुए भी एकरूप ही प्रतीत होती है। उपर्युक्त युक्तियों के आधार पर न्याय-वैषेशिक असत्कार्यवाद के सिद्धान्त की पुष्टि करते हैं। अद्वैत वेदान्त अर्थांत् शंकराचार्य का मत-शंकराचार्य ने भी सत्कार्यवाद का समर्थन किया है। ये कार्य और कारण को एक मानते हैं। अपने वृहदारण्यक-भाष्य में इन्होने ;श्री शंकराचार्य ने सत्कार्यवाद का बड़ा सुन्दर निरूपण

किया है- कारणकार्यत्मुत्पादयत् पुर्वेल्पिन्नस्य कार्यस्य तिरोघान कुर्वत कार्यान्तर मुत्पादयति। एकस्मिकन कारणे युगपादंक कार्यविरोधात्। न च पूर्वकार्येपिमर्दे कारणस्य स्वात्मापमर्दो भवति, पिण्डापि पूर्ण कार्यापिमर्दे मूदादिकारणं नोपमृद्यते घटादि कार्यान्यिरेत्मनुवतते कार्यस्वचाभिव्यक्ति लिंगवात्। अभिव्यक्तिः साक्षाद् विज्ञानालम्ब्नत्व प्राप्ति, न ह्यविद्यमानो घट उदितेत्यादित्य उपलभ्यते। प्राडमृनभिव्यक्तेमृदद्यिक्य वानपिण्डादिकार्यान्तर रूपेण संस्थानम् तस्मात्प्रागुत्पत विहामानस्येव घटादि कार्यस्वृ यातत्त्वादनुपलब्धि। यानी जब एक कारण एक कार्य को उत्पन्न करता है तब वह दूसरे कार्य का तिरोधान कर देता हैं। एक कारण में अनेक कार्य अव्यक्त रूप से विद्यमान रहते है । उनमें से एक की ही अभिव्यक्ति एक समय में हो पाती है और शेष का रूप तिरोहित रहता है। एक कार्य के नष्ट हो जाने पर कारण का नाश नहीं होता है। पिण्ड कार्य के नष्ट हो जाने पर मिट्टी अर्थात् कारण घट के रूप में प्रतीत होती है। अभिव्यक्ति होना ही कार्य की उत्पत्ति है । अभिव्यक्ति का अर्थ ज्ञान का बोध हो जाना है। असत् कार्य की कभी प्रतति नहीं हो सकती है। जब तक मिट्टी की अभिव्यक्ति नहीं होती तब तक घड़े की अभिव्यक्ति नहीं होती, तब तक मिट्टी के अवयव घटादि के आकार में रहते हैं। इसलिए उत्पत्ति से पूर्व मिट्टी में घट मौजूद रहता है।

3.3.1 न्याय वैशेषिक का सम्बन्ध –

न्याय मत में प्रमाण चार प्रकार का है. प्रत्यक्षए अनुमानए उपमान और शब्द । तथा न्यायसूत्र प्रत्यक्षानुनोपमानशब्दाः प्रमाणानि सन्ति । इन प्रमाणों द्वारा यथाक्रम प्रत्यक्षए अनुमितिए उपमिति और शब्द ये चार प्रमा उत्पन्न होते हैं। प्रमा यथार्थ अनुभव अथवा ज्ञान है ।

3.4 वैशेषिक का स्वरुप

सांख्य में त्रिविध दु:खों की निवृत्ति को, योग में चित्तवृत्ति के निरोध को,मीमांसा में धर्म की जिज्ञासा को और वेदान्त में ब्रह्म की जिज्ञासा को नि:श्रेयस का साधन बताया गया है; जबकि वैशेषिक में पदार्थों के तत्त्वज्ञानरूपी धर्म अर्थात् उनके सामान्य और विशिष्ट रूपों के विश्लेषण से पारलौकिक नि:श्रेयस के साथ-साथ इह लौकिक अभ्युदय को भी साध्य माना गया है। अन्य दर्शनों में प्राय: ज्ञान की सत्ता को सिद्ध मान कर उसके अस्तित्वबोध और विज्ञान को मोक्ष या नि:श्रेय का साधन बताया गया है, किन्तु वैशेषिक में दृश्यमान वस्तुओं के साधर्म्य-वैधर्म्यमूलक तत्त्वज्ञान को साध्य माना गया है । इस प्रकार वैशेषिक दर्शन में लोकधर्मिता तथा वैज्ञानिकता से समन्वित आध्यात्मिकता परिलक्षित होती है। यही कारण है कि न्याय-वैशेषिक को व्याकरण के समान अन्य शास्त्रों के ज्ञान का भी उपकारक या प्रदीप कहा गया है । अद्वैत वेदान्त में ब्रह्म को ही एकमात्र सत कहा गया है। बौद्धों ने सर्व शून्यं जैसे कथन किये, सांख्यों ने प्रकृति-पुरुष के विवेक की बात की। इस प्रकार इन सबने भौतिक जगत् के सामूहिक या सर्वसामान्य किसी एक तत्त्व को भौतिक जगत् से बाहर ढूँढ़ने का प्रयत्न किया। किन्तु वैशेषिकों ने न केवल समग्र ब्रह्माण्ड का, अपितु प्रत्येक पदार्थ का तत्त्व उसके ही अन्दर ढूँढ़ने का प्रयास किया और यह बताया कि प्रत्येक वस्तु का निजी वैशिष्ट्रय ही उसका तत्त्व या स्वरूप है और प्रत्येक वस्तु अपने आप में एक सत्ता है। इस मूल भावना के साथ ही वैशेषिकों

ने दृश्यमान जगत की सभी वस्तुओं को छ: या सात वर्गों में समाहित करके वस्तुवादी दृष्टि से अपने मन्तव्य प्रस्तुत किये। इन छ: या सात पदार्थों में सर्वप्रथम द्रव्य का उल्लेख किया गया है, क्योंकि उसको ही केन्द्रित करके अन्य पदार्थ अपनी सत्ता का भान कराते हैं। पहले तो वैशेषिकों ने छ: ही पदार्थ माने थे, पर बाद में उनको यह आभास हुआ कि वस्तुओं के भाव की तरह उनका अभाव भी वस्तुतत्त्व के निरूपण में सहायक होता है। अत: गुण, कर्म सामान्य विशेष के साथ-साथ अभाव का भी वैशेषिक पदार्थों में समावेश किया गया। अभिप्राय यह है कि सभी 'वस्तुओं का निजी वैशिष्ट्रय ही उनका स्वभाव है' – क्या इस आधार पर ही इस शास्त्र को वैशेषिक कहा गया? इस जिज्ञासा के समाधान के संदर्भ में अनेक विद्वानों ने जो विचार प्रस्तुत किये, उनका सार इस प्रकार है –

1. विशेष पदार्थ से युक्त होने के कारण यह शास्त्र वैशेषिक कहलाता है। अन्य दर्शनों में विशेष का उपदेश वैसा नहीं है जैसा कि इसमें है। विशेष को स्वतन्त्र पदार्थ मानने के कारण इस दर्शन की अन्य दर्शनों से भिन्नता है। विशेष पदार्थ व्यावर्तक है। अत: इस शास्त्र की संज्ञा वैशेषिक है।
2. विशेष गुणों का उच्छेद ही मुक्ति है, न कि दु:ख का आत्यन्तिक उच्छेद। मुक्ति का प्रतिपादन चार्वाकेतर सभी दर्शन करते हैं, किन्तु विशेष गुण को लेकर मुक्ति का प्रतिपादन इसी दर्शन में किया गया है।
3. विगत: शेष: यत्र स विशेष:- इस प्रकार का विग्रह करने पर विशेष का अर्थ 'निरवशेष' हो जाता है और इस प्रकार सभी पदार्थों का छ: या सात में अन्तर्भाव हो जाता है।
4. 'विशेषणं विशेष:'—ऐसा विग्रह करने पर यह अर्थ हो जाता है कि पदार्थों के लक्षण- परीक्षण द्वारा जो शास्त्र उनका बोध करवाये, वह वैशेषिक है।
5. इस दर्शन में आत्मा के भेद तथा उसमें रहने वाले विशेष गुणों का व्याख्यान किया गया है। कपिल ने आत्मा के भेदों को स्वीकार किया, किन्तु उनको विशेष गुण वाला नहीं माना। वेदान्त तो आत्मा के भेद और गुणों को स्वीकार नहीं करता। अत: आत्मा के विशेष गुण और भेद स्वीकार करने से इस दर्शन को वैशेषिक कहा जाता है।
6. अनेक पाश्चात्त्य और भारतीय विद्वानों ने वैशेषिक को डिफरेन्सियलिस्ट दर्शन कहा है, क्योंकि उनकी दृष्टि में यह भेदबुद्धि (वैशिष्ट्रय-विचार) पर आधारित होने के कारण भेदवादी है।

3.5 वैशेषिक में सृष्टि और परमाणुवाद

न्याय.वैशेषिक दर्शन के अनुसार ईश्वर नित्यए सर्वज्ञए सर्वशक्तिमानए धर्म व्यवस्थापकए कर्मफल दाता तथा सृष्टि का रचयिता है। वह विश्वकर्मा है। परमाणु जो सृष्टि के पूर्व निष्क्रिय रहते हैं। ईश्वर उन्हें सक्रिय कर सृष्टि की उत्पत्ति में प्रवृत्त कराता है । इसके माध्यम से वैशेषिक दर्शन सृष्टि सम्बन्धी सिद्धांत को प्रस्तुत करता है। इस दर्शन में यह माना गया है कि सृष्टि का निर्माण असंख्य सूक्ष्म अणुओं (परमाणुओं) से हुआ है।

परमाणुवाद की विशेषता

1. यह अविभाज्य है।

2. यह अविनाशी है।

3. यह गोलाकार है।

4. यह गतिहीन है।

5. यह अचेतन और निष्क्रिय है।

6. परमाणुओं में गति एक विशिष्ट धर्म के कारण होता है। महर्षि कणाद ने इस धर्म को अदृष्ट नाम दिया है।

7. कालांतर में परमाणुओं की गति का कारण ईश्वर को माना गया है।

परमाणुओं के प्रकार

परमाणुओं के चार प्रकार है -

1. पार्थिव
2. जलीय
3. तैजस
4. वायवीय

सृष्टि का निर्माण निम्न प्रकार के परमाणुओं संयोजन से होता है -

1. परमाणु - एक प्रकार के परमाणु
2. दवयणुक - दो परमाणुओं के संयोजन से निर्मित
3. त्र्यणुक - तीन परमाणुओं के संयोजन से निर्मित

3.6 वोधात्मक प्रश्न

1.न्याय मत में प्रमाण कितने माने गए हैं |

क. चार

ख. तीन

ग. सात

घ. नौ

2. सांख्य में त्रिविध दु:खों की निवृत्ति को, योग में चित्तवृत्ति के निरोध को,मीमांसा में धर्म की जिज्ञासा को और वेदान्त में ब्रह्म की जिज्ञासा को नि:श्रेयस का साधन बताया गया|

क. सत्य ख. असत्य

3. न्याय मत में प्रमाण चार प्रकार का है. प्रत्यक्षए अनुमानए उपमान और शब्द।

क. सत्य ख. असत्य

4. न्याय दर्शन के प्रणेता महर्षि गौतम हैं |

3.7 सारांश

दर्शन शास्त्र भारतीय ज्ञान परम्परा की चेतना है | भारतीय दर्शनों में से एक दर्शन है न्याय बैशेषिक है । इसके प्रथम प्रवर्तक महर्षि कणाद हैं (ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी)। यह दर्शन न्याय दर्शन से बहुत साम्य रखता है किन्तु वास्तव में यह एक स्वतंत्र भौतिक विज्ञानवादी दर्शन है। इस प्रकार के आत्मदर्शन के विचारों का सबसे पहले महर्षि कणाद ने सूत्र रूप में (वैशेषिकसूत्र में) लिखा। यह दर्शन "औलूक्य", "काणाद", या "पाशुपत" दर्शन के नामों से प्रसिद्ध है। इसके सूत्रों का आरम्भ "अथातो धर्मजिज्ञासा" से होता है। इसके बाद दूसरा सूत्र है- "यतोऽभ्युदयनिःश्रेयसिद्धिः स धर्मः" अर्थात् जिससे अभ्युदय और निःश्रेयस् की सिद्धि होती है, वह धर्म है। इसके लिये समस्त अर्थतत्त्व को छः ' पदार्थों ' (द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष और समवाय) में विभाजित कर उन्हीं का मुख्य रूप से उपपादन करता है। वैशेषिक दर्शन और पाणिनीय व्याकरण को सभी शास्त्रों का उपकारक माना गया है —

काणादं पाणिनीयं च सर्वशास्त्रोपकारकम्

वैशेषिक का अर्थ है – "विशेषं पदार्थमधिकृत्य कृतं शास्त्रं वैशेषिकम्" अर्थात् 'विशेष' नामक पदार्थ को मूल मानकर प्रवृत्त होने के कारण इस शास्त्र का नाम वैशेषिक है। वैशेषिक दर्शन ६ पदार्थ मानता है- द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष और समवाय । द्रव्यों की संख्या ९ मानता है – पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश, काल, दिशा, आत्मा और मन। २४ गुण स्पर्श, रस, रूप, गन्ध, शब्द, संख्या, विभाग, संयोग, परिणाम, पार्थक्य, परत्व, अपरत्व, बुद्धि, सुःख, दुःख, इच्छा, द्वेष, धर्म, अधर्म, प्रयत्न, संस्कार, स्नेह, गुरुत्व और द्रव्यत्व हैं। कर्मों के ५ प्रकार माने गये हैं- उत्क्षेपण, अवक्षेपण, आकुञ्चन, प्रसारण और गमन। सामान्य के दो प्रकार इस दर्शन में माना गया है- सत्ता सामान्य और विशिष्ट सामान्य। इसमें प्रत्यक्ष और अनुमान दो ही प्रमाण माने गये हैं। इस प्रकार आपने अनेक तत्वों का अध्ययन इस इकाई के अंतर्गत किया |

3.8 बोधात्मक प्रश्नों के उत्तर

1. क

2.क

3.क

4.क

3.9 सहायक ग्रन्थ सूची

1- ऋग्वेद, सयणाचार्यकृत-भाष्यसंवलिता, अनुवादक पण्डित रामगोविन्द त्रिवेदी, चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी, 2016

2- अथर्ववेद, सयणाचार्यकृत-भाष्यसंवलिता, अनुवादक पण्डित रामगोविन्द त्रिवेदी, चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी, 2016

3- उपनिषत्सञ्चयम्, अनुवादक आचार्य केशवलाल वा- शास्त्री, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान दिल्ली, 2015

4- शतपथ ब्राह्मण, सायणाचार्यकृत-भाष्य, नाग प्रकाशन ज्वाहरनगर दिल्ली, 1990

5- सूर्यसिद्धान्तः - आर्षग्रन्थः, टीकाकार कपिलेश्वरशास्त्री, चौखम्बा संस्कृत संस्थान वाराणसी-2004

6- मनुस्मृति - डा- गजानन शास्त्री, चौखम्बा सुरभारती प्रतिष्ठान वाराणसी, 2002

7- ब्रह्मपुराण - गीताप्रेस गोरखपुर, विक्रम संवत 2067

8- पद्मपुराण - गीताप्रेस गोरखपुर, विक्रम संवत 2067

9- शिवपुराण - गीताप्रेस गोरखपुर, विक्रम संवत 2065

10- श्रीमद्भागवतमहापुराण - गीताप्रेस गोरखपुर, विक्रम संवत 2066

11- विष्णुपुराण - गीताप्रेस गोरखपुर, विक्रम संवत 2069

12- मत्स्य पुराण गीताप्रेस गोरखपुर, विक्रम संवत 2069

13- नारदीय पुराण गीताप्रेस गोरखपुर, विक्रम संवत 2066

14- ब्रह्मवैवर्तपुराण गीताप्रेस गोरखपुर, विक्रम संवत 2070

15- भारतीय दर्शन की रूपरेखा - प्रो- हरेन्द्र प्रसाद सिन्हा, मोतीलाल बनारसीदास दिल्ली, 1983

16- भारतीय दर्शन, डा- राधाकृष्णन्, राजपाल एण्ड सन्स दिल्ली -6, 1986

1- ब्रह्माण्ड और सौर परिवार, प्रो- देवी प्रसाद त्रिपाठी, परिक्रमा प्रकाशन दिल्ली, 2006

2- सृष्ट्युत्पत्ति की वैदिक परिकल्पना, विष्णुकान्त शर्मा, प्रतिभा प्रकाशन दिल्ली, 2008

3- सृष्टि उत्पत्ति - रामनाथ गुप्ता, मीरा प्रकाशन, 2019

4- वेद-विज्ञान चिन्तन, प्रो- बृजबिहारी चौबे, कात्यायन वैदिक साहित्य प्रकाशन, होशियारपुर, 2005

5-वेद विज्ञान, स्वामी प्रत्यगात्मानन्द स्वामी, अनुवादिका डा- उर्मिला शर्मा, विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी, 2012

6. http://santoshporwal1604.blogspot.com/2014/07/blog-post.html

3.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. भारतीय दर्शन शास्त्र का विस्तार पूर्वक परिचय दीजिए |
2. न्याय दर्शन का स्वरुप बताये |
3. वैशेषिक का स्वरुप विस्तार पूरवक लिखिए |
4. न्याय वैशेषिक में सृष्टि का निर्माण कैसे होता है स्पष्ट कीजिए |

इकाई – 4 ज्योतिषीय सृष्टि प्रक्रिया

इकाई की रूपरेखा -

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य

4.3 मुख्य भाग खण्ड एक

4.3.1 उपखण्ड एक - वैदिक वाङ्मय में सृष्टि एवं ज्योतिष के अनुसार सृष्ट्युत्पत्ति का समय

4.3.2 उपखण्ड दो - सूर्यसिद्धान्त के अनुसार सृष्टि प्रक्रिया

4.3.3 उपखण्ड तीन - आचार्य भास्कर के अनुसार सृष्टि प्रक्रिया

4.3.4 उपखण्ड चार - आचार्य पाराशर के अनुसार सृष्टि प्रक्रिया

4.3.5 उपखण्ड पांच - अन्य ज्योतिषीय ग्रन्थों के अनुसार सृष्टि प्रक्रिया

4.4 सारांश

4.5 पारिभाषिक शब्दावली

4.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

4.7 सन्दर्भ ग्रन्थों की सूची

4.8 साहायक उपयोगी सामग्री

4 .9 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

जिस प्रकार मानव की जिज्ञासाएँ असीम हैं, उसी प्रकार सृष्टि विषयक जिज्ञासा की सीमा निर्धारित नहीं की जा सकती, वह भी असीम है। संसार के किसी भी पदार्थ को सूक्ष्म द्रष्टि से देखें तो अनेक जिज्ञासाएं उत्पन्न होती है कि यह पदार्थ कैसे बना? क्यों बना? किसने बनाया? कब बनाया? कहाँ बनाया? तथा किसके लिये बनाया? आदि अनेकानेक प्रश्न सृष्टि के आरम्भ से ही मानवमन को आन्दोलित करते रहे हैं। इन प्रश्नों पर विभिन्न मनीषियों द्वारा विचार विमर्श होता रहा है। सम्पूर्ण वैदिक वाङ्मय इन प्रश्नों के समाधान से भरा पड़ा है। सृष्टि के क्रम का निरूपण विश्व के प्रत्येक धर्म ग्रन्थ में अलग-अलग रूप में प्राप्त होता है। कहीं अन्नादि क्रम से, कहीं जलादि के क्रम से, कहीं आकाशादि से, तो कहीं अग्न्यादि क्रम से सृष्टि संरचना कही गई है, तथापि इनमें विरोध नहीं प्रतीत होता। ऋग्वेद के नासदीय सूक्त में इस दार्शनिक समस्या का समाधान बड़ी ही तात्त्विक और तार्किक दृष्टि से किया गया है। ऋग्वेदीय नासदीय सूक्त की आरम्भिक तीन ऋचाओं में सृष्टिपूर्व स्थिति का वर्णन किया गया है। ऋग्वेदीय नासदीय सूक्त में वर्णित सृष्टि पूर्व स्थिति का विकसित रूप ब्राह्मण आरण्यक व उपनिषद् आदि ग्रन्थों में विस्तृत रूप से वर्णित किया गया है।

भगवान् वेदपुरुष का नेत्र स्थानीय अंग ज्योतिषशास्त्र कालबोधक शास्त्र है। इस शास्त्र में सृष्टि की संरचना से लेकर प्रलय पर्यन्त काल की गणना की गई है। सृष्ट्यादि से प्रलय पर्यन्त कालगणना के प्रसङ्ग में अनेक ग्रन्थों में सृष्ट्युत्पत्ति विषयक वर्णन किया गया है। ज्योतिषशास्त्र में सृष्ट्युत्पत्ति के विषय में मुख्य रूप से तीन सिद्धान्त प्राप्त होते हैं। प्रथम सिद्धान्त सूर्यसिद्धान्त में, द्वितीय सिद्धान्त सिद्धान्तशिरोमणि में तथा तृतीय सिद्धान्त बृहत्पाराशरहोराशास्त्र में वर्णित है। इसके अतिरिक्त अन्य ग्रन्थों में भी प्रसङ्गवश सृष्ट्युत्पत्ति के विषय में वर्णन किया गया है। उक्त सिद्धान्तों का यथाशास्त्र वर्णन किया जा रहा है।

4.2 उद्देश्य -

1- इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप यह समझ सकेंगे कि, सृष्टि प्रक्रिया क्या तथा ज्योतिष के अनुसार सृष्टि का प्रारम्भ कब से हुआ।

2- इस इकाई का प्रमुख उद्देश्य है, सूर्यसिद्धान्त के अनुसार सृष्टि प्रक्रिया का ज्ञान। सूर्यसिद्धान्त ज्योतिष शास्त्र का प्रथम उपलब्ध ग्रन्थ है। इसमें विस्तार पूर्वक सृष्टिप्रक्रिया का वर्णन किया गया है। उस प्रक्रिया का वर्णन इस इकाई में किया गया है।

3- सूर्यसिद्धान्त के पश्चात भास्कराचार्य ने सृष्टिप्रक्रि का विस्तृत विवेचन किया है। इस इकाई के माध्य से आप आाचार्य भास्कर के अनुसार सृष्टि प्रक्रिया के विषय में ज्ञान प्राप्त करेंगे।

4- इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप आचार्य पाराशर के अनुसार सृष्टि प्रक्रिया को जानने में समर्थ होगे।

5- ज्योतिषशास्त्र के अन्य ग्रन्थों में भी सृष्टिप्रकिया का वर्णन प्राप्त होता है। उन ग्रन्थों के अनुसार भी आप सृष्टिप्रक्रिया को समझ सकेंगे।

4.3.1 वैदिक वाङ्मय में सृष्टि एवं ज्योतिष के अनुसार सृष्ट्युित्पत्ति का समय -

संसार की उत्पत्ति अभी भी रहस्य बनी हुई है। वैदिक साहित्य में सृष्टि की उत्पत्ति को लेकर जो बातें कही गई है लगभग वही बातें वैज्ञानिकों ने फ्बिग-बैंगय् थ्योरी में मानी है। बिग बैंग सिद्धान्त को साइंस की भाषा में डिफाइन किया गया है। जबकि सनातन साहित्य में इसे धार्मिक शब्दावली में व्यक्त किया गया है। लेकिन दोनों ही सिद्धान्तों का मूल अर्थ लगभग समान है। भारतीय सनातन ज्ञान सृष्टि की उत्पत्ति पर क्या कहता है यह जानने से पहले हमे विज्ञान की उस सिद्धान्त को जानना आवश्यक है, जिसे ब्रह्मांड की उत्पत्ति की सबसे प्रमाणिक सिद्धान्त माना गया है।

विज्ञान मानता है कि सृष्टि की उत्पत्ति बिगबैंग यानी एक महा विस्फोट से हुइ। विज्ञान कहता है कि आज से करीब 13 सौ करोड़ साल पहले यह पूरा ब्रह्मांड एक ही बिंदु में समाहित था, यानी पूरे ब्रह्मांड का सारा द्रव्य कंप्रेस्ड था और एक बिन्दू पर सिमटा हुआ था। इस बेहद गर्म बिंदू में हुए विस्फोट के बाद इसका हर कण फैलता गया और यूनिवर्स बनता गया। आज भी यूनिवर्स में विस्तार जारी है। सिद्धान्त के अनुसार यूनिवर्स के बनने से पहले सारी एनर्जी और फिजिकल एलिमेंट एक बिंदू में सिमटे हुए थे। फिर बिग बैंग हुआ यानी एक ऐसा विस्फोट जिसके बाद उस बिंदू में सिमटे सभी कण एक दूसरे से दूर जाने लगे, ये प्रक्रिया अब भी जारी है। वैज्ञानिकों का मानना है कि बिग बैंग से पहले तो समय भी नहीं था। सारी एनर्जी और फिजिकल मैटर एक बिंदू पर ही केंद्रित थे। अर्थात् पूरा ब्रह्मांड लगातार फैलते चला जा रहा है, इसी के आधार पर वैज्ञानिकों का यह सिर्फ एक अनुमान मात्र है कि सृष्टि की उत्पत्ति एक महा विस्फोट से हुई इसे लेकर वैज्ञानिक आज भी पूरी तरह से अपनी थ्योरी पर भरोसा नहीं कर पा रहे हैं।

वैदिक विज्ञान इस विषय में आधुनिक विज्ञान से एक कदम आगे है। न सिर्फ भारतीय दर्शन ने आधुनिक विज्ञान से हजारों साल पहले सृष्टि की उत्पत्ति की लगभग यही थ्योरी दुनिया के सामने रखी थी, बल्कि उसने यह भी बताया था कि सृष्टि से उत्पत्ति के पहले भी समय और द्रव्यमान का अस्तित्व था। सृष्टिप्रक्रिया का सर्वप्रथमउल्लेख ऋग्वेद के नासदीय सूक्त में प्राप्त होता है। ऋग्वेद के नासदीय सूक्त में सृष्ट्युत्पत्ति से पूर्व अवस्था का वर्णन किया गया है। जिसमे कहा गया है कि, सृष्टि की उत्पत्ति से पहले एक सर्वशत्तिफ़मान परमेश्वर मौजूद थे, उस समय ना तो आकाश का अस्तित्व था ना ही गुणों का। सृष्टि की उत्पत्ति से पहले न जन्म था न मृत्यु, न दिन था ना रात, सब कुछ मुक्त अवस्था में था। केवल परब्रह्म की सत्ता थी। उस परब्रह्म के संकल्प मात्र से सृष्टि की उत्पत्ति हुई। ट्टग्वेद के हिरण्यगर्भ सूक्त के अनुसार सृष्टि की उत्पत्ति से पूर्व सर्वत्र जल था। उस जल में परब्रह्म ने बीज स्वरूप हिरण्यमय अण्डा स्थापित किया कालान्तर में उस अण्डे में विस्फोट हुआ तथा वह दो भागों में विभक्त हुआ। उसका ऊर्ध्व भाग आकाश तथा अधः भाग पृथ्वी हुआ। इसी प्रकार ट्टग्वेद के दशम मण्डल के पुरूष सुक्त में एक विराट पुरूष की संकल्पना की गई है। जिसे सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का बीजरुप शरीर स्वीकार किया गया है। उसी के शरीर से समस्थ चराचर विश्व की उत्पत्ति हुई। इस प्रकार वेदों में

सृष्ट्युत्पत्ति विषयक अनेक सिद्धान्त वर्णित है। वेदाघो, पुराणों, दर्शनों, रामायण, महाभार आदि ग्रन्थों में वेदोक्त सिद्धान्तों को आधार मानकर सृष्ट्युत्पत्ति से सम्बन्धि सिद्धान्तों का वर्णन किया है।

वेदाङ्गो में प्रमुख एवं भगवान् वेदपुरुष के नेत्र स्वरूप ज्योतिषशास्त्र के सिद्धान्त ग्रन्थों में वेदोक्त सृष्टिप्रक्रिया का अनुसरण कर सृष्ट्युत्पत्ति सिद्धान्त बताया गया है। ज्योतिषशास्त्र के आर्ष ग्रन्थ सूर्यसिद्धान्त में हिरयमयाण्ड सिद्धान्त को आधार स्वीकार कर सृष्ट्युत्पत्ति की विस्तृत व्याख्या की है। इसी प्रकार अन्य ग्रन्थों में भी उक्त सिद्धान्त का वर्णन प्राप्त होता है। जिसकी विस्तृत व्याख्या आगे की गई है।

ज्योतिषशास्त्र काल प्रबोधक शास्त्र है। कालगणना इस शास्त्र का प्रमुख विषय है। काल का सूक्ष्मातिसूक्षम काल की गणना की गई है। आधुनिक विज्ञान मानता है कि आज से करीब 13 सौ करोड़ साल पहले यह पूरा ब्रह्मांड एक ही बिंदु में समाहित था। अर्थात सृष्टि की उत्पत्ति आज से करीब 13 सौ करोड़ साल पहले हुई। ज्योतिषशास्त्र के सिद्धान्त ग्रन्थों में कालमानाध्याय में कहा गया है कि सृष्टि की उत्पत्ति ब्रह्मा का दिन प्रारम्भ होने पर हुई। अर्थात ब्रह्मा का कल्प तुल्य दिन पूर्ण होने पर प्रलय होती है। तदनन्तर एक कल्प तुल्य रात्रि में वह विश्राम करते है। इस प्रकार दो कल्प तुल्य ब्रह्मा का एक अहोरात्र होता है। एक कल्प में सन्धि सहित 14 मनु होते है। प्रत्येक मनु में 71 महायुग होते हैं। एक महायुग का मान 12000 दिव्य वर्ष होता है। दिव्य वर्ष देवताओं से सम्बन्धित वर्ष होता है जिसमें 360 देवताओं के दिन होते है। देवताओं के एक दिन में 360 सौरवर्ष होते हैं। सूर्य का एक अंश तुल्य भोगकाल एक सौर दिन कहलाता है। अर्थात -

सूर्य का एक अंश तुल्य भोगकाल = एक सौर दिन

360 सौर दिन = देवताओं का एक दिन (दिव्यदिन)

360 दिव्यदिन = 1 दिव्य वर्ष।

12000 दिव्य वर्ष = 1महायुग

71 महायुग = 1 मनु

ससन्धि 14 मनु = 1 कल्प = ब्रह्मा का दिन

2 कल्प = ब्रह्मा का एक अहोरात्र।

उक्त एक कल्प के मान को यदि हमारे सौरवर्षो में परिवर्तित किया जाए तो 432000000 सौर वर्ष होते है। अर्थात 4320000000 सौरवर्ष पूर्व ब्रह्मा का दिन प्रारम्भ हुआ तथा सृष्टि की उत्पत्ति हुई।

अतिलघूत्तरीय प्रश्न

1- विज्ञान के अनुसार सृष्टि की उत्पत्ति कौन सा सिद्धान्त सर्वप्रसिद्ध है?

2- सृष्टिप्रक्रिया का सर्वप्रथमउल्लेख ऋग्वेद के किस सूक्त में प्राप्त होता है?

3- ऋग्वेद के हिरण्यगर्भ सूक्त के अनुसार सृष्टि की उत्पत्ति से पूर्व सर्वत्र क्या व्याप्त था?

4- ज्योतिषशास्त्र के सिद्धान्त ग्रन्थों में कालमानाध्याय के अनुसार सृष्टि की उत्पत्ति कब हुई?

5- ब्रह्मा के एक अहोरात्र में कितने कल्प होते है।

4.3.2 सूर्यसिद्धान्त के अनुसार सृष्टि प्रक्रिया-

सूर्यसिद्धान्त ज्योतिशास्त्र का महत्वपूर्ण एवं आदि ग्रन्थ है। इसमें प्रतिपादित कालगणना एवं ग्रहों की गति-स्थिति इत्यादि के सिद्धान्तो के आधार पर ही परवर्ति आचार्यों ने अन्य सिद्धान्तग्रन्थों की रचना की है। ग्रन्थ प्रथम अध्याय के अदि 8 श्लोकों अनुसार मय नामक राक्षस ने ग्रहों की गति, स्थिति इत्यादि के विषय में जानने के लिए भगवान् सूर्य की तपस्या की। तपस्य से प्रसन्न होकर भगवान् सूर्यदेव ने मयासुर के समक्ष उपस्थित होकर वर मांगने के लिए कहा। मयासुर ने ग्रहों तथा अन्य आकाशीय पिण्डों के विषय में जिज्ञासा व्यक्त की। इस प्रकार सूर्यसिद्धान्त मय नामक राक्षस तथा सूर्य के अंशरूप पुरुष का संवाद स्वरूप है। आकाशीय घटनाओं से सम्बन्धित अनेक प्रश्नों में मयासुर ने भुगोलाध्याय में सृश्टि की उत्पत्ति के विषय में जिज्ञासा प्रकट की, जिसके उत्तर में सूर्यांशपुरुष ने सृष्ट्युत्पत्ति के विजय में 16 श्लोकों में वर्णन किया।

सूर्यसिद्धान्त मे इस सृष्टि की उत्पत्ति का एकमात्र कारण सूर्य कहा गया है। भगवान भास्कर ने स्वयं ही अनेक रहस्यों का उदघाटन करते हुये ज्योतिजशास्त्र सम्बन्धी अनेक शंकाओं का समाधान किया है। अंशावतार सूर्य और मय के संवाद से स्पष्ट होता है कि समय-समय पर ज्योतिष शास्त्र का उपदेश भगवान् सूर्य द्वारा होता रहा है।

सृष्टि विषयक विस्तृत विवेचन व निर्माण के विषय में कहा गया है कि वासुदेव परब्रह्म है। इनकी मूर्ति परम पुरूष है, जो अव्यक्त निगुर्ण शान्त तथा पच्चीस तत्वों से परे है। बाहर तथा भीतर सर्वत्र व्याप्त वासुदेव ने संकर्षण रूप से प्रकृति के अन्तर्गत प्रविष्ट होकर सर्वप्रथम जल की रचना की, इसके बाद उस जल में वीर्य बीज स्वरूप अपने तेज को स्थापित किया। जो चारों ओर से अन्धकार से घिरा हुआ होकर स्वर्णमय अंडा बन गया। फिर अण्ड के भीतर से सर्वप्रथम सनातन भगवान् अनिरुद्ध प्रकट हुये। इन्हीं को वेदों में हिरण्यगर्भ कहते है। सर्वप्रथम उत्पन्न होने के कारण इन्हें आदित्य तथा अण्ड से प्रसूत होने के कारण सूर्य कहा गया। सूर्य ने ही अहंकार स्वरूप ब्रह्मा को संसार की सृष्टि के लिए उत्पन्न किया। अहंकार मूर्ति रूपी ब्रह्मा ने सृष्टि रचना का मन में विचार किया। ब्रह्मा के मन से चन्द्रमा की उत्पत्ति हुई तथा नेत्रें से प्रकाशात्मा सूर्य की उत्पति हुई। उस ब्रह्मा के मन से आकाश, आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल तथा जल से पृथ्वी की क्रमशः उत्पत्ति हुई। एक-एक गुणों की वृद्धि से ये पांचों पवे महाभूत कहे गये हैं।

आकाश में एक गुण = शब्द ।

वायु में दो गुण = शब्द + स्पर्श

अग्नि में तीन गुण = शब्द + स्पर्श + रूप

जल में चार गुण = शब्द + स्पर्श + रूप + रस

पृथ्वी में पांच गुण = शब्द + स्पर्श + रूप + रस + गन्ध

तत्पश्चात् तेज महाभूत से मंगल, पृथ्वी से बुध, आकाश से बृहस्पति, जल से शुक्र तथा वायु से शनि की उत्पत्ति हुई। इस प्रकार ब्रह्मा, जिनके वशीभूत समस्त सृष्टि है उन्होंने अपने आप (ब्रह्माण्ड) को द्वादश भागों में

विभक्त कर दिया, जो राशि संज्ञक हुए। पुनः उस ब्रह्माण्ड को सत्ताइस भागों में विभक्त किया, तो वे नक्षत्र संज्ञक हुये। तत्पश्चात् ग्रह नक्षत्र आदि की सृष्टि होने के बाद ब्रह्मा ने उत्तम, मध्यम, अधम स्रोतों से सत्व, रज, तम स्वरूप त्रिगुणात्मक प्रकृति की रचना कर देव आदि (देव, मनुष्य, असुर, पशु, पक्षी, वृक्ष, लता आदि) चर-अचर विश्व की रचना की। गुण तथा कर्म के विभागानुसार पूर्वोक्त क्रम से सृष्टि की रचना करके वेदोक्त देशकाल के अनुसार इनके विभाग किए। सर्वप्रथम ब्रह्मा ने ग्रह, नक्षत्र, तारे, पृथ्वी, देवता, असुर, मनुष्यों तथा सिद्धगणों को यथाक्रम स्थापित किया।

लघुत्तरीय प्रश्न

1- सूर्यसिद्धान्त मे इस सृष्टि की उत्पत्ति का एकमात्र कारण क्या है?

2- सूर्य का आदित्य क्यों कहा गया?

3- ब्रह्मा के मन से तथा नेत्रें से किसकी उत्पति हुई?

4- पृथ्वी में कौन-कौन से गुण है?

5- ब्रह्मा ने उत्तम, मध्यम, अधम स्रोतों से किसकी रचना की,

3-1-2 आचार्य भास्कर के अनुसार सृष्टि प्रक्रिया

भास्कराचार्य प्राचीन भारत के एक प्रसिद्ध गणितज्ञ एवं ज्योतिषाचार्य थे। उनका जन्म 1114 ई- वी शताब्दी में विज्जडविड गांव में हुआ था। उन्होने सिद्धान्तशिरोमणि के गोलाध्याय में अपना सम्पूर्ण परिचय दिया है, जो इस प्रकार से है -

आसीत् सह्यकुलाचलाश्रितपुरे त्रैविद्यविद्वज्जने।
नाना जज्जनधाम्नि विज्जडविडे शाण्डिल्यगोत्रेद्विजः
श्रौतस्मार्तविचारसारचतुरो निःशेषविद्यानिधि।
साधुर्नामवधिर्महेश्वरकृती दैवज्ञचूडामणि।।

उनके द्वारा लिखित प्रमुख ग्रन्थ सिद्धान्तशिरोमणि है। इसके अतिरिक्त उन्होंने लीलावति, बीजगणित तथा करणकौतुहल नामक ग्रन्थों की भी रचना की। वे ज्योतिषशास्त्र के एक महान् विद्वान थे उन्होने गुरुत्वाकर्षण जैसे सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया।

आचार्य भास्कर ने सिद्धान्तशिरोमणि के गोलाध्याय में सृट्युत्पत्ति विषयक सिद्धान्त सिद्धान्त सांख्य दर्शन के अनुसार इस प्रकार कहा है -

यस्मात् क्षुब्धप्रकृति पुरूषाभ्यां महानस्य गर्भे-
हंकारोSभुत् खकशिखिजलोर्व्यस्ततः संहतेश्च।
ब्रह्माण्डं यज्जठरगमहीपृष्ठनिष्ठाद्विरञ्चे-
विश्वं शश्वज्जयति परमं ब्रह्म तत् तत्त्वमाद्यम्।।

आचार्य भास्कर के अनुसार परब्रह्म का प्रथम रूप पुरुष है, अव्यक्त (प्रकृति) तथा व्यक्त (महदादि) उसके अन्य रूप हैं। सबको क्षुब्ध करने वाला होने से काल उसका परमरूप है। वही इन सब व्यक्त (कार्य) और अव्यक्त (कारण) जगत के रूप से तथा इसके साक्षी पुरुष और महाकारण काल के रूप में स्थित है। प्रधान पुरुष व्यक्त काल में परब्रह्म के रूप पृथक्-पृथक् संसार की उत्पत्ति, पालन और संहार के प्रकाश तथा उत्पादन में कारण हैं। इनमें से अव्यक्त कारण को जो कारण शत्तिफ़ विशिष्ट और नित्य सदा एकरस है, श्रेष्ठ जन प्रधान तथा सूक्ष्म प्रकृति कहते हैं। वह रज, सत और तम रूप त्रिगुणमय और जगत् का कारण हैं तथा स्वयं अनादि एवं उत्पत्ति और लय से रहित विष्णु परम रूप से प्रधान और पुरुष - ये दो रूप हुए। उसी के जिस अन्य रूप के द्वारा वे दोनों सृष्टि और प्रलय काल में संयुक्त और वियक्त होते हैं, उस रूपान्तर का ही नाम काल है। बीते हुए प्रलयकाल में यह व्यक्त प्रपञ्च प्रकृति में लीन था, इसलिए प्रपञ्च के इस प्रलय को प्राकृत प्रलय कहते हैं। प्रलयकाल में प्रधान (प्रकृति) के साम्यावस्था में स्थित हो जाने पर और पुरुष के प्रकृति से पृथक् स्थित हो जाने पर ब्रह्म का कालरूप इन दोनों को धारण करने के लिए प्रवृत्त होता है। तदन्तर सर्गकाल उपस्थित होने पर उन परब्रह्म ने अपनी इच्छा से विकारी प्रधान और अविकारी पुरुष में प्रविष्ट होकर उनको शोभित किया। परमेश्वर अपनी सन्निधि मात्र से ही प्रधान और पुरुष को प्रेरित करते हैं। सर्गकाल के प्राप्त होने पर गुणों की साम्यावस्थारूप प्रधान, जब ब्रह्म के क्षेत्रज्ञरूप से अधिष्ठित हुआ तो उससे महत्तत्व की उत्पत्ति हुई। उत्पन्न हुए महान को प्रधान तत्त्व ने आवृत्त किया। महत तत्त्व सात्त्विक, राजस और तामस भेद से तीन प्रकार का है। किन्तु यह त्रिविध महत्तत्व प्रधान तत्त्व से सब ओर व्याप्त है। फिर त्रिविध महत्तत्व से ही वैकारिक (सात्त्विक), तैजस (राजस) और तामस भूतादि तीन प्रकार का अहंकार उत्पन्न हुआ। वह त्रिगुणात्मक होने से भूत ओर इन्द्रिय आदि का कारण है। प्रधान से जैसे महत्तत्व व्याप्त है वैसे ही महत्तत्व से वह अंहकार व्याप्त है। भूतादि नामक तामस अहंकार ने विकृत होकर शब्द तन्मात्र और उससे शब्द गुण वाले आकश की रचना की तथा उसे व्याप्त किया। फिर आकाश ने विकृत होकर स्पर्श-तन्मात्र को रचा जिससे बलवान वायु हुआ उसका गुण स्पर्श माना गया है। शब्द रूप आकाश ने वायु को आवृत्त किया है। फिर वायु ने विकृत होकर रूप-तन्मात्र सृष्टि की रचना की। वायु से तेज उत्पन्न हुआ उसका गुण रूप कहा जाता है। वायु ने तेज को आवृत्त किया। फिर (रूप) तेज ने भी विकृत होकर रस-तन्मात्र की रचना की जिससे रस-गुणवाला जल उत्पन्न हुआ। जल को (रूप)तेज ने आवृत किया। जल के विकार से गन्ध-तन्मात्र की रचना की। उससे पृथ्वी उत्पन्न हुई जिसका गुण गन्ध माना गया।

इन-इन आकाशादि भूतों में तन्मात्र अर्थात् केवल उनके गुण शब्द ही हैं। इसलिए वे गुणरूप (तन्मात्र) ही हैं इनमें विशेष भाव नहीं हैं इसलिए उनका अवशेष संज्ञा है। उनका सुख-दुःख या मोहरूप से अनुभव नहीं हो सकता। इस प्रकार तामस अहंकार से यह भूत तन्मात्ररूप सर्ग हुआ है। दस इन्द्रियाँ तैजस अर्थात राजस अहंकार से और उनके अधिष्ठाता देवता वैकारिक अर्थात सात्त्विक अहंकार से उत्पन्न हुआ कहते हैं। इस प्रकार इन्द्रियों के अधिष्ठाता दस देवता और ग्यारहवाँ मन वैकारिक (सात्त्विक) है। ज्ञानेन्द्रियाँ, कर्मेन्द्रियाँ तथा

पांचों भूत इस प्रकार बने हैं। भूतों की पृथक् पृथक् शत्तिफ़याँ अधिष्ठित देवता हैं। इसलिए एक-दूसरे के आश्रय रहने वाले और एक ही संघात की उत्पत्ति के लक्ष्यवाले महत्तत्व से लेकर विशेष पर्यन्त प्रकृति के इन सभी विकारों ने पुरुष से अधिष्ठित होने के कारण परस्पर मिलकर प्रधान तत्त्व के अनुग्रह से अण्ड की उत्पत्ति की। जल के बुल-बुले के समान भूतों से बढ़ा हुआ गोलाकार और जलपर स्थित महान अण्ड (हिरण्यगर्भ) ब्रह्म रूप अति उत्तम प्राकृत आधार हुआ। उसमें वे अव्यक्त स्वरूप जगत्पति विष्णु व्यक्त हिरण्यगर्भ रूप से स्वयं ही विराजमान हुए। उन महात्मा हिरण्यगर्भ का सुमेरु उल्ब, अन्य पर्वत, जरायु, तथा समुद्र गर्भाशयस्थ था। उस अण्ड में ही पर्वत और द्विपादि के सहित समुद्र, ग्रहों के सहित सम्पूर्ण लोक तथा देव, असुर और मनुष्य आदि विविध प्राणिवर्ग प्रकट हुए। यह अण्ड इन पूर्वोक्त सात प्राक आवरणों से घिरा हुआ है। उसमें स्थित हुए स्वयं विश्वेश्वर भगवान विष्णु ब्रह्मा होकर रजोगुण का आश्रय लेकर इस संस्कार की रचना में प्रवृत्त होते हैं।

लघूत्तरीय प्रश्न

1- भास्कराचार्य ने किस ग्रन्थ की रचना की?

2- प्रकृति के तीन गुण कौन कौन से है?

3- महान को किस तत्त्व ने आवृत्त किया?

4- तीन प्रकार के अहंकार कौन-कौन से हैं?

5- भास्कराचार्य के अनुसार अण्ड कितने आवरणों से घिरा हुआ है?

आचार्य पाराशर के अनुसार सृष्टि प्रक्रिया

ऋग्वेद के मंत्रदृष्टा और गायत्री मंत्र के महान साधक सप्त ऋषियों में से एक महर्षि वशिष्ठ के पौत्र महान वेदज्ञ, ज्योतिषाचार्य, स्मृतिकार एवं ब्रह्मज्ञानी ऋषि पराशर के पिता का नाम शक्तिमुनि और माता का नाम अरून्धती था। ऋषि पराशर ने निषादाराज की कन्या सत्यवती के साथ उसकी कुंआरी अवस्था में समागम किया था जिसके चलते महाभारत के लेखक वेदव्यास का जन्म हुआ। सत्यवती ने बाद में राजा शांतनु से विवाह किया था।

पराशर मुनि ने भी बृहत्पाराशरहोराशास्त्र नामक ग्रन्थ में संसार की उत्पत्ति का विस्तृत वर्णन किया है। आचार्य के अनुसार अव्यक्तात्मा विष्णु, जो अनादि, सर्वशक्तिमान्, शुद्धतत्त्व, निर्गुण होते हुए भी सत्व, रज, तम इन तीन गुणों से युक्त संसार के स्वामी हैं। उनका प्रधान (प्रकृति) सहित एक चरण व्यक्ताव्यक्तात्मक विष्णु वासुदेव कहलाते हैं। अव्यक्तात्मा विषणु दो शक्तियों से युक्त है तथा व्यक्तात्मा विष्णु तीन शक्तियों से युक्त है। उक्त शक्तियों में सत्वप्रधाना श्रीशक्ति, रजप्रधाना भूशक्ति एवं तमः प्रधाना तीसरी शक्ति अन्धकारस्वरूपा नील संज्ञक है। श्रीशक्ति से प्रेरित विष्णु चतुर्थ वासुदेव के रूप में उदभूत हुए। विष्णु की ही तीनों शक्तियों में नीलसंज्ञक तमः शक्ति से युक्त विष्णु संकषर्णण, रतः शक्ति से युक्त प्रद्युम्न तथा सत्वशक्ति से युक्त अनिरुद्ध कहे जाते है। संकषर्ण से महत्तत्व, प्रद्युम्न से अहंकार तथा अनिरुद्ध से ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई। अहंकार के तीन भेद - सात्विक, राजस तथा तामस है। सात्विक अहंकार से देवताओं की राजस अहंकार से इन्द्रियों की तथा

तामस अहंकार से आकाशादि पञ्चमहाभूतों की उत्पत्ति हुई। इस प्रकार विषणु जिन्हे वासुदेव भी कहते है, श्रीशक्ति से समन्वित होकर त्रैलोक्य का संरक्षण करते है। ब्रह्मा भूशक्ति के द्वारा सृष्टि का निमार्ण करने हैं तथा रुद्र तमः शक्ति से उसका संहार करते है। आचार्य पाराशर द्वारा प्रतिपादित सृष्टिक्रम सांख्योक्त सृष्टिक्रम से प्रभावित है किन्तु उक्त सृष्टिक्रम पौराणिक सृष्टिक्रम पर आश्रित है। पुराणों में विष्णु को प्रकृति तथा पुरूष दोनों का कारण माना गया है। विष्णुपुराण के अनुसार विष्णु के परम स्वरूप से प्रधान तथा पुरूष दो स्वरूप होते है। उसके अनुसार भगवान् विष्णु ही कालशक्ति के द्वारा विश्व की सृष्टि एवं प्रलय करते है। उन्ही के निर्देशानुसार ब्रह्मा जो उन्ही के नाभिकमल पर विराजमान हैं, सृष्टिकारक होते हैं।

सत्य/असत्य प्रश्न

1- पराशर मुनि ने भी बृहत्पाराशरहोराशास्त्र ग्रन्थ की रचना की। (सत्य/असत्य)

2- विष्णुपुराण के अनुसार विष्णु के परम स्वरूप से प्रधान तथा पुरूष दो स्वरूप होते है। (सत्य/असत्य)

3- अव्यक्तात्मा विषणु चार शक्तियों से युक्त है। (सत्य/असत्य)

4- अहंकार के तीन भेद - सात्विक, राजस तथा तामस है। (सत्य/असत्य)

5- राजस अहंकार से आकाशादि पञ्चमहाभूतों की उत्पत्ति हुई। (सत्य/असत्य)

3-1-5 अन्य ज्योतिषीय ग्रन्थों के अनुसार सृष्टि प्रक्रिया

बृहत्संहिता में सृष्टि विचार -

बृहत्संहिता ज्योतिषशास्त्र के महान् विद्वान् आचार्य वराहमिहिर द्वारा लिखित सुप्रसिद्ध संहिता ग्रन्थ है। अचार्य वरामिहिर का जन्म 427 शक में अवन्ती के पास कापित्थ नामक स्थान पर हुआ था। इनके पिता का नाम आदित्यदास था तथा वे सूर्य के उपासक थे। इन्होंने पञ्चसिद्धान्तिका नामक सिद्धान्त ग्रन्थ, बृहज्जातक नामक होराग्रन्थ एवं बृहत्संहिता नामक संहिता ग्रन्थ की रचना की। इन्होने बृहसंहिता के शास्त्रेपनयनाध्याय में सृष्टि प्रक्रिया का वर्णन किया इस प्रकार किया है -

आसीत्तमः किलेदं तत्रपां तेजसेऽभवद्धैमे।
स्वर्भूशकले ब्रह्मा विश्वकृदण्डेऽर्कशशीनयनः।।

अर्थात यह सम्पूर्ण जगत् पहले अन्धकारमय था तथा जलमय था। अर्थात सर्वत्र केवल अन्धकार था तथा जल व्याप्त था। तत्पश्चात् अन्धकार के विषयभूत जल में तेज से परिपूर्ण एक सुवर्ण का अण्ड उत्पन्न हुआ। कालान्तर में वह स्वर्णमय अण्ड दो भागों में विभक्त हुआ। दो भागों में उपर वाला भाग स्वर्ग तथा अधः भाग पृथ्वी रूप हुआ। इन टुकडों में से सूर्य तथा चन्द्ररूप दो नेत्रें वाले ब्रह्माजी उत्पन्न हुए। इस प्रकार ब्रह्माजी ने समस्त चराचर की सृष्टि की। आचार्य वराहमिहिर का यह सिद्धान्त ट्टग्वेद के हिरण्गर्भ सुक्त मे प्रतिपादित सिद्धान्त के अनुसार है।

आचार्य वराहमिहिर ने बृहज्जातक नामक होराग्रन्थ में सृष्टि का कारण सूर्य को माना है। अचार्य ने बृहज्जातक के मंगलाचण करते हुए कहा है कि लोकों की उत्पत्ति एवं स्थिति के कारण सूर्य है -

लोकानां प्रलयोद्भवस्थितिविभुश्चानेकधा य श्रुतौ।
वाचं स न ददात्वनेककिरणस्त्रैलोक्यदापो रवि।

अर्थात लोकों की प्रलय, उत्पत्ति तथा स्थिति (पालन-पोषण) के कारण है, वेदों में जिन्हे अनेक नामों से सम्बोधित किया गया है। अनेक किरणों से युक्त तीनों लोकों के प्रकाशक वह भगवान् सूर्य हमें वाणी प्रदान करें। यहां पर सूर्य को सृष्टि की उत्पत्ति तथा विनाश का कारण कहा गया है।

सिद्धान्तदर्पण में ब्रह्मा को सृष्टि का कारण माना गया है। इसके अनुसार समस्त प्राणियों की सृष्टि से पूर्व ब्रह्मा ने शरीर के इन्द्रिय तथा विषय रूप सृष्टि के लिए दो प्रकार के बीजों का अन्त बीज तथा बहि बी से पांच मण्डल उत्पन्न किए। बाह्य बीज ही ब्रह्माण्ड भाण्ड का आवरण हुआ अन्तः बीज से पांच मण्डल आकाश, वायुमण्डल, रवितेज मण्डल, चन्द्रगोल मण्डल तथा पृथ्वी मण्डल ब्रह्माण्ड के उदर में उत्पन्न हुए।

कल्याण वर्मा के अनुसार फ्प्रलयकाल में जब सम्पूर्ण संसार अन्धकार से व्याप्त होकर जल ही जल इस पृथ्वी पर था। उस समय अचानक अपने प्रकाश से समस्त संसार को प्रकाशित करते हुए भगवान सूर्य का उदय हुआ। तथा सूर्य से ही समस्त सृष्टि की उत्पत्ति हुई।

1- बृहत्संहिता के लेखक हैं -

(क) भास्कराचार्य (ख) वराहमिहिर

(ग) लगधाचार्य (घ) कल्याण वर्मा

2- बृहज्जातक नामक होराग्रन्थ में सृष्टि का कारण क्या है -

(क) चन्द्र (ख) ब्रह्मा

(ग) सूर्य (घ) शिव

3- बृहत्संहिता के अनुसार यह सम्पूर्ण जगत् पहले था -

(क) अन्धकारमय (ख) जलमय

(ग) अन्धकारमय तथा जलमय (घ) इन में से कोई नहीं

4- स्वर्णमय अण्ड कितने भागों में विभक्त हुआ -

(क) दो (ख) तीन

(ग)चार (घ) पांच

5- कल्याण वर्मा के अनुसार सृष्टि की उत्पत्ति हुई है -

(क) चन्द्र (ख) ब्रह्मा

(ग) सूर्य (घ) शिव

4.10 सारांश

इस इकाई में आपने ज्योतिष शास्त्र के अनुसार सृष्टि का समय तथा सृष्टि की प्रक्रिया के विषय में अध्ययन किया। ज्योतिष शास्त्र के अनुसार 4320000000 सौरवर्ष पूर्व ब्रह्मा का दिन प्रारम्भ हुआ तथा सृष्टि की

उत्पत्ति हुई। ज्योतिष शास्त्र में सृष्टि विषयक वर्णन सर्वप्रथम सूर्यसिद्धान्त में प्राप्त होता है। सूर्यसिद्धान्त में सृष्टि विषयक में कहा गया है कि परब्रह्म वासुदेव ने संकर्षण रूप से प्रकृति के अन्तर्गत प्रविष्ट होकर सर्वप्रथम जल की रचना की, इसके बाद उस जल में वीर्य बीज स्वरूप अपने तेज को स्थापित किया। जो कालान्तर में स्वर्णमय अंडा बन गया। फिर अण्ड के भीतर से सर्वप्रथम भगवान् अनिरुद्ध प्रकट हुये। इन्हीं को वेदों में हिरण्यगर्भ कहते है। सूर्य ने ही अहंकार स्वरूप ब्रह्मा को संसार की सृष्टि के लिए उत्पन्न किया। अहंकार मूर्ति रूपी ब्रह्मा ने सृष्टि रचना का मन में विचार किया। ब्रह्मा के मन से चन्द्रमा की उत्पत्ति हुई तथा नेत्रें से सूर्य की उत्पत्ति हुई। ब्रह्मा के मन से आकाश, आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल तथा जल से पृथ्वी की क्रमशः उत्पत्ति हुई। एक-एक गुणों की वृद्धि से ये पांचों पवे महाभूत कहे गये हैं। पञ्चमहाभूतों से पांच ग्रह उत्पन्न हुए। इस प्रकार ब्रह्मा ने अपने आप (ब्रह्माण्ड) को द्वादश भागों में विभक्त कर दिया, जो राशि संज्ञक हुए। पुनः उस ब्रह्माण्ड को सत्ताइस भागों में विभक्त किया, तो वे नक्षत्र संज्ञक हुये। तत्पश्चात् देव, मनुष्य, असुर, पशु, पक्षी, वृक्ष, लता आदि चर-अचर विश्व की रचना की।

भास्कराचार्य ने सांख्य दर्शन के मत का अनुसरण करते हुए प्रकृति तथा पुरूष से सृष्टि की उत्पत्ति कही है। आचार्य के अनुसार प्रकृति तथा पुरूष के क्षुब्धता से बुद्धि तत्व का समुत्पत्ति होती है। इस महत् तत्व के गर्भ में गुणवश तीन प्रकार का सात्विक राजस एवं तामस रूप अहंकार है। उस अहंकार से आकाश वायु अग्नि जल तथा पृथ्वी अपने गुणपूर्वक उत्पन्न होते है। इस प्रकार इनसे उत्पन्न अनेक तत्वों से ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति होती है।

ज्यो ेतिषशास्त्र में अन्य सिद्धान्त पाराशर कृत बृहत्पाराशरहोराशास्त्र में प्राप्त होता है। इस के अनुसार विष्णु, जो सत्व, रज, तम इन तीन गुणों से युक्त संसार के स्वामी हैं की तीन शक्तियों सत्वप्रधाना श्रीशक्ति, रजप्रधाना भूशक्ति एवं तमः प्रधाना तीसरी शक्ति अन्धकारस्वरूपा नील संज्ञक है से सृष्टि की उत्पत्ति हुई। इसके अतिरिक्त अन्य ज्योतिषीय ग्रन्थ जैसे बृहत्संहिता, सारावली सिद्धान्तशेखर आदि ग्रन्थों में भी सृष्ट्युित्पत्ति के विषय में वर्णन प्राप्त होता है। जिनका विस्तार पूर्वक अध्ययन आपने इस इकाई में किया।

पारिभाषिक शब्दावली

आर्षग्रन्थ	ट्टषियों के द्वारा लिखित ग्रन्थ
प्रलय	विश्व के समाप्त होने का समय
परवर्ति	बाद वाला
जिज्ञासा	जानने की इच्छा
निर्गुण	गुणों से रहित
संकर्षण	प्रत्यारोपित
अव्यक्त	जिसकी व्याख्या न की जा सके
साम्यावस्था	समान अवस्था

सर्गकाल सृष्टि का समय

विकृत विकार

अधिष्ठित स्थापित

विश्वेश्वर विश्व के स्वामी

4.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अतिलघूत्तरीय प्रश्न

1- बिग -बैग 2- नासदीय 3- जल 4- 43200000 5- दो

लघुत्तरीय प्रश्न

1- सृष्ट्युत्पत्ति का कारण सूर्य है।

2- आदि में उत्पन्न होने के कारण

3- मन से चन्द्र तथा नेत्रें से सूर्य।

4- शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गन्ध।

5- सत्व रज तथा तम स्वरूप् त्रिगुणात्मक प्रकृति की।

अतिलघूत्तरीय प्रश्न -

1- सिद्धान्तशिरोमणि 2- सत्व रज तम। 3- प्रधान 4- सत्व, रज तम

5- सात

सत्य/असत्य प्रश्न -

1- सत्य 2- सत्य 3- असत्य 4- सत्य 5- असत्य

बहुविलल्पीय प्रश्न

1- (ख) 2- (ग) 3- (ग) 4- (क) 5- (ग)

1-12 सन्दर्भ ग्रन्थों की सूची

1- ज्योतिषशास्त्रस्येतिहासः - आचार्यलोकमणिदहालः चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी द्वितीय संस्करण- 2003।

2- ज्योतिर्निबन्धादर्शः - डा- शत्रुघ्न त्रिपाठी, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी प्रथम संस्करण-2010।

3- बृहज्जातकम् - वराहमिहिरविरचितः, भट्टोत्पलीटीकासहित पं सीतारामझा सावित्री ठाकुर प्रकाशन रथयात्र चौराहा वाराणसी सन् - 2006।

4- बृहत्पाराशरहोराशास्त्रम् - पाराशर, प- पद्मननाभ शर्मा, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी

5- बृहत्संहिता - आचार्यवराहमिहिरविरचितः, प- अच्युतानन्द झा, चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी संस्करण - 2009।

6- भारतीयज्योतिष - शिवनाथझारखण्डी, उत्तरप्रदेशसंस्थान लखनऊ, तृतीयसंस्करण- 2002।

7- सिद्धान्त दर्पण चन्द्रशेखर सिह सामन्त कृत, अनुवादक, अरूण कुमार उपाध्याय, नाग प्रकाशक दिल्ली।

8- सूर्यसिद्धान्तः - आर्षग्रन्थः, कपिलेश्वरशास्त्री, चौखम्बा संस्कृत संस्थान वाराणसी-2004

9- सिद्धान्तशिरोमणि - भास्कराचार्यः, मुरलीधरचतुर्वेदी, चौखम्बा संस्कृत संस्थान वाराणसी।

10 सिद्धान्तशिरोमणि - भास्कराचार्य, व्याख्याकार पं0 सत्यदेवशर्मा, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी 2007

4.13 साहायक उपयोगी सामग्री

1- ज्योतिषसिद्धान्त मञ्जुषा - प्रो0 विनय कुमार पाण्डेय, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी 2013

2- भुवनकोषविमर्शः प्रो0 देवी प्रसाद त्रिपाठी

3- ब्रह्माण्ड और सौर परिवार प्रो0 देवीप्रसाद त्रिपाठी

4- भारतीय ज्योतिष - नेमिचन्दशास्त्री, भारतीयज्ञानपीठ -18, इंस्टीट्यूशनल एरिया लोदी रोड नई दिल्ली- 03

4. 15 निबन्धात्मक प्रश्न

1- ज्योतिष के आधार पर सृष्टि की उत्पत्ति के काल के वर्णन कीजिए।

2- सूर्यसिद्धान्त के आधार पर सृष्टि प्रक्रिया का वर्णन कीजिए।

3- आचार्य भास्कर के अनुसार सृष्टि प्रक्रिया का वर्णन कीजिए।

4- पाराशर मुनि द्वारा प्रतिपादित सृष्ट्युत्पत्ति सिद्धान्त का विवेचन कीजिए।

5- आचार्य वराहमिहिर द्वारा प्रतिपादित सृष्टि सिद्धान्त का वर्णन कीजिए।